साम्यवाद को चुनौतियाँ - सोवियत प्रयोग

(Challenges to Communism - Soviet Experiment)
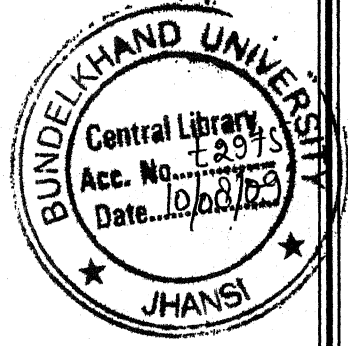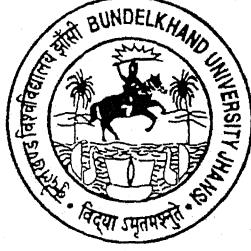
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की डी.लिट.
(राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु प्रस्तुत

2003

शोधकर्त्री :
डॉ. जयश्री
(रीडर एवं अध्यक्ष)
राजनीति विज्ञान विभाग
दयानन्द वैदिक (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय
उरई (उ.प्र.)

DECLARATION

I hereby, solemnly declare that the present thesis entitled "साम्यवाद को चुनौतियाँ – सोवियत प्रयोग" submitted by me for the Degree of D. Litt. in Political Science to Bundelkhand University, Jhansi, is my own original work and has not been submitted earlier for the award of any degree in any University.

Date : 15th August 2003

(Dr. Jayshree)
Reader and Head
Dept. of Political Science
D.V. (Post Graduate) College
Orai (U.P.)

आभार प्रदर्शन

1. सोवियत दूतावास, नई दिल्ली
2. पुस्तकालय व वाचनालय, संसद भवन, नई दिल्ली
3. पुस्तकालय व वाचनालय, जे. एन. यू., नई दिल्ली
4. पुस्तकालय व वाचनालय, सप्रू हाउस, नई दिल्ली
5. पुस्तकालय व वाचनालय, त्रिमूर्ति भवन, नई दिल्ली
6. पुस्तकालय व वाचनालय, जामिया मिलिया, नई दिल्ली
7. पुस्तकालय व वाचनालय, डी. वी. कालेज, उरई
8. पुस्तकालय व वाचनालय, हिन्दी साहित्य परिषद, उरई
9. स्वर्ण कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, उरई

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

समाजवाद अभी युवा है
राह लम्बी है और कुछ अनजानी सी
समाजवाद को लाने के लिये
एक नवीन मानव का सृजन करना होगा
जिसका आधार लौकिक हो।

— चे ग्वेवारा

प्रस्तावना

(Introduction)

साम्यवाद समानता का प्रतिपादक है और समाजवादी व्यवस्था का समर्थक। इस व्यवस्था में आर्थिक समानता को अन्य सभी प्रकार की समानताओं का आधार माना जाता है। इसलिये साम्यवाद उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, जिनके आधार पर समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन किया जायेगा और जनता सम्पत्ति एवं अन्य सुविधाओं का सामूहिक उपभोग करेगी। सर्वप्रथम यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य में आंशिक साम्यवाद का प्रस्ताव रखा था जिसमें दार्शनिक राजा व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं व्यक्तिगत परिवार की व्यवस्था से वंचित रहेगा। इस समाज में शासक के लिये सामूहिक सम्पत्ति एवं सामूहिक परिवार की व्यवस्था होगी।

आधुनिक साम्यवाद मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर आधारित है। उन्नीसवीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स (1818–1883) और फ्रेडरिख एंगिल्स (1820–1895) ने मिलकर इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति और समाज शास्त्र की समस्याओं पर गम्भीर चिन्तन किया और उसी चिन्तन का परिणाम था एक सुनिश्चित विचारधारा का निर्माण जिसे मार्क्सवाद के नाम से जाना जाता है। इस विस्तृत चिन्तन प्रणाली को विकसित करने में मार्क्स एवं एंगिल्स दोनों का ही योगदान रहा। मार्क्स ने पूर्ववर्ती समाजवाद को उसके काल्पनिक रूप से अलग करके अधिक व्यवहारिक, वैज्ञानिक और मानवतावादी रूप देने का प्रयास किया। इसलिये मार्क्सवाद को वैज्ञानिक समाजवाद भी कहा जाता है।

आधुनिक युग में जहाँ स्वतंत्रता और समानता सबसे अधिक लोकप्रिय और चर्चित अवधारणायें हैं उसी प्रकार सभी आधुनिक सिद्धान्तों में व्यक्तिगत सम्पत्ति की धारणा को भी महत्व दिया गया है। साम्यवाद इन्हीं अवधारणाओं पर विचार करता है। अपने सैद्धान्तिक आलेख एवं प्रायोगिक मार्गदर्शन के द्वारा मार्क्स ने समाजवादी पथ प्रदर्शकों में एक अद्वितीय स्थान प्राप्त कर लिया था। उनकी मृत्यु के बाद भी उनका प्रभाव निरन्तर प्रबल बना हुआ है। ''मार्क्सवाद आज भी समस्त विरोधी समाजवादी दलों का मान्य सिद्धान्त है। सभी दल, आधुनिक समाजवादी आन्दोलन के वैचारिक संस्थापक के सिद्धान्तों के प्रति गहरी निष्ठा रखते हैं।''[1]

मार्क्स जैसे महान दार्शनिक अपने पीछे अनुयायियों का एक समूह छोड़ जाता है जो उनकी नायक की तरह पूजा करते हैं। इन परिस्थितियों में उनके दर्शन पर वैज्ञानिक खोज आवश्यक हो जाती है।

---

1. Morris, Hillquit - From Marx to Lenin, P. 39

1847 में मार्क्स एवं एंगिल्स ने निष्कासित कामगारों का संगठन ''साम्यवादी लीग' की स्थापना के द्वारा साम्यवादी आन्दोलन की नींव डाली। इससे पूर्व 1845 में फ्रेडरिक एंगिल्स की पुस्तक, ''इंग्लैण्ड में श्रमिक,,ह्वर्गों की दशा'' काफी प्रसिद्धि पा चुकी थी। 1848 में मार्क्स एवं एंगिल्स के संयुक्त प्रयास से साम्यवादी घोषणा पत्र (Communist Manifesto) जारी किया गया। इसके द्वारा वैज्ञानिक समाजवाद का पहला विस्तृत सैद्धान्तिक दस्तावेज एक क्रान्तिकारी कार्रवाई के कार्यक्रम के रूप में सामने आया। इसने पहली बार श्रमिक क्रान्ति की आधारशिला रखी।

मार्क्स के श्रमिक क्रान्ति सम्बन्धी विचारों ने उस समय पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक यूरोप में हलचल उत्पन्न कर दी। मार्क्स एवं एंगिल्स कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो का प्रारम्भ इस वाक्य से करते हैं कि ''योरोप को एक प्रेत सता रहा है और यह है साम्यवाद का प्रेत। योरोप की समस्त शक्तियाँ इस प्रेत को वश में करने के लिये एक गठबन्धन में संगठित हो चुकी है। इससे दो बातें स्पष्ट होकर सामने आती हैं –

1. समस्त योरोपीय शक्तियों ने साम्यवाद को एक ताकत के रूप में स्वीकार कर लिया है।

2. यह सबसे अच्छा समय है कि साम्यवादी दुनिया के सामने खुलकर अपने दृष्टिकोण, अपने उद्‌देश्य, अपनी प्रवृत्तियों को प्रकाशित करें एवं दल के घोषणापत्र द्वारा साम्यवाद के प्रेत की शिशु कथा को प्रस्तुत करें।''[2]

मार्क्स ने निडर होकर निष्ठापूर्वक तत्कालीन समाज में श्रमिकों की दशा पर सोचा और उनकी मुक्ति के लिये एक दर्शन तैयार किया। आज भी साम्यवादी घोषणा पत्र समस्त साम्यवादियों की मार्गदर्शक पुस्तिका है और इसे समाजवादियों का 'बाइबिल' कहा जाता है। यह मार्क्स के समस्त सिद्धान्तों के विकास का एक सार प्रस्तुत करता है। मार्क्स की दूसरी इतिहास प्रसिद्ध कृति 'पूँजी' (Das Capital) 1867 में प्रकाशित हुयी जो लोकप्रियता के शिखर पर पहुँची।

पुस्तक में मार्क्स का दर्शन व्यवहारिकता एवं अनुभव पर आधारित है। यह पुस्तक वास्तव में 1850 ईसवी में इंग्लैण्ड में प्रचलित फैक्टरी पद्धति के परीक्षण पर आधारित है। पुस्तक में ब्रिटेन के फैक्टरी इन्सपेक्टर एवं चिकित्सकीय अधिकारियों के रिपोर्ट के अनेक अंश उद्धृत हैं। मार्क्स पुस्तक में ब्रिटिश कामगारों की दयनीय दशा का करुण वर्णन करता है। जिसमें स्त्री एवं बाल मजदूर भी शामिल हैं जो अपना पेट भरने के लिये दिन रात कठोर परिश्रम करने के लिये बाध्य थे। मार्क्स ने इस शोषण की कटु आलोचना की और अपने समाजवादी विचारों को विस्तृत एवं क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया। इसमें मार्क्स ने औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न परिस्थितियों में श्रमिक वर्ग में नयी चेतना जागृत करके साम्यवादी समाज की स्थापना की

---

2. Manifesto of the Communist Party, P. 38

योजना रखी है।

विषय वस्तु (Subject Matter)

'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' एवं 'दास कैपिटल' के माध्यम से मार्क्स ने न केवल समाजवाद को एक वैज्ञानिक आधार पर प्रदान किया वरन् उसने सर्वहारा समाजवाद का प्रतिपादन किया। मार्क्स ने मानव समाज की समस्याओं को इतिहास के माध्यम से समझने का प्रयास किया। उसने इतिहास को परस्पर विरोधी शक्तियों और वर्गों के संघर्ष की प्रक्रिया के रूप में देखा। उत्पादन प्रणाली की त्रुटियों के कारण समाज में धनी (Haves) और निर्धन (Haves not) दो वर्ग उत्पन्न हो जाते है। उनके हितों में मौलिक विरोध के कारण सामञ्जस्यता स्थापित करना सम्भव नहीं होता है। अतः निर्धन वर्ग को संगठित होकर धनी वर्ग के विरुद्ध क्रान्ति करनी होगी और समानता के प्रतीक साम्यवादी समाज की स्थापना करनी होगी।

मार्क्स ने आधुनिक औद्योगिक समाज की परिस्थितियों और यान्त्रिक खोज के विकास का और इसके परिणाम से उत्पन्न परिस्थितियों, पूँजीवादी व्यवस्था के विकास का गहन अध्ययन किया। उपभोग की वस्तुओं के मूल्य तथा श्रमिकों के वेतन निर्धारण के नियमों पर विचार किया। आधुनिक औद्योगिक समाज के दो वर्गों उत्पादन के साधनों के स्वामी (धनी) और परिश्रम करने वाले श्रमिक (निर्धन) के मध्य बढ़ती हुयी दूरी, स्वामी वर्ग द्वारा श्रमिकों का शोषण व शोषण से मुक्ति के उपाय आदि का अध्ययन करते हुये समाजवाद का एक नया दर्शन प्रस्तुत किया जो तर्कसम्मत था। मार्क्स का दर्शन केवल एक पद्धति न होकर एक साध्य का अन्वेषक था। साध्य था वर्ग विहीन समाज की स्थापना, जिसमें मानव वास्तविक अर्थ में स्वतन्त्र होगा। मार्क्स की विचारधारा एवं पद्धति दोनों में नवीनता थी।

स्वयं मार्क्स के ही शब्दों में, "मैंने जो नया काम किया, वह यह सिद्ध करना था कि (1) वर्गों का अस्तित्व उत्पादन के विकास में विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्थाओं के साथ जुड़ा हुआ होता है। (2) वर्ग संघर्ष अनिवार्य रूप से सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद स्थापित करता है। (3) यह अधिनायकवाद स्वयं संक्रमण की अवस्था में होता है। अन्त में (4) यह स्वयं समस्त वर्गों का अन्त करती है और वर्गविहीन समाज की स्थापना कर देती है।"[3]

"दार्शनिकों ने विश्व व्याख्या के ही प्रयास किये हैं, परन्तु महत्वपूर्ण तो विश्व परिवर्तन है।" मार्क्स ने इस घोषणा द्वारा तत्कालीन दोषपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिये प्रभावपूर्ण दर्शन एवं योजना प्रस्तुत की। मार्क्स ने अपने दर्शन को निरन्तर विकासशील माना क्योंकि विश्व की परिस्थितियाँ

---

3. Karl Marx, Letter to Weidemayer, 5 March, 1852, Marx Engle's Correspondence, 1846-1895, P. 57

परिवर्तनशील हैं। उन्हें संकटों एवं कठिनाइयों का ज्ञान था फिर भी वे अपने सर्वमान्य और सर्वप्रभावी दर्शन पर चिन्तन करते रहे और उसे आगे बढ़ाते रहे। उन्होंने संशोधन और परिवर्द्धन के लिये सदैव द्वार खुला रखा।

चुनौतियाँ (Challenges)

1917 में रूस में साम्यवाद की स्थापना से लेकर 1991 में उसके पतन तक चौहत्तर वर्ष की लम्बी यह यात्रा निहायत सरल नहीं वरन् कठिनाइयों से परिपूर्ण एवं चुनौतियों से भरी रही इसलिये इसका मूल्यांकन भी सरल नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब मार्क्स और एंगिल्स ने अपने चिन्तन प्रस्तुत किये थे तब से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब रूस में उत्पीड़नकारी जारशाही के विरूद्ध जनता संघर्ष कर रही थी परिस्थितियाँ पूर्णतया बदल चुकी थी। वहाँ पूँजीवाद प्रारम्भिक अवस्था में था। अतः रूस की परिस्थितियाँ साम्यवादी क्रान्ति के अनुकूल नहीं थी।

मार्क्स के सच्चे शिष्य लेनिन ने फिर भी क्रान्ति को सफल बनाने का बीड़ा उठाया। बदली हुयी परिस्थितियों में लेनिन के सामने मार्क्सवाद को उसी रूप में लागू करने की चुनौती थी। उसे मार्क्सवाद की कुछ परिवर्द्धित रूप में क्रियान्विति अधिक समयोचित लगा। उसने समय के गर्त में दबे हुये मार्क्सवाद को बाहर निकाला और जैसा कि स्टालिन ने अपनी पुस्तक 'Foundations of Leninism' में कहा है लेनिन ने मार्क्सवाद का नवीनीकरण किया। उसने लिखा कम, करके अधिक दिखाया। रूस में साम्यवादी क्रान्ति की सफलता के बाद साम्यवादी शासन की बागडोर लेनिन की मृत्यु तक उसके हाथों में रही। साम्यवाद के सम्बर्द्धन एवं परिवर्द्धन के लिये उसे कट्टर मार्क्सवादियों की आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा। परन्तु उसने दार्शनिकता को व्यवहारिकता में नष्ट नहीं किया। पुरानी कमियों को देखते हुये मार्क्सवाद का विकास किया और नवीन ज्ञान से उसे पूर्ण किया।

लेनिन के बाद महत्वाकांक्षी स्टालिन ने साम्यवादी व्यवस्था में अनेक अमानवीय परिवर्द्धन किये। अपने आलोचकों व विरोधियों का निर्दयतापूर्वक दमन किया। समाजवाद को एक अमानवीय रूप देना साम्यवाद के लिये एक बड़ी चुनौती थी। स्टालिन के द्वारा लाये गये परिवर्तन मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्त समानता एवं शोषण से मुक्ति के विरोधी थे। लेनिन के युग में श्रमिकों का शासन दल के शासन में बदल चुका था और स्टालिन के समय में यह व्यक्तिगत तानाशाही में बदल गया। "लेनिन की एक दलीय पद्धति का अनिवार्य और अन्तिम परिणाम था एक व्यक्ति की तानाशाही।" रूसी साम्यवाद की तुलना नाजीवाद और फासीवाद से की जाने लगी। इस चुनौती का सामना करते हुये भी रूस में साम्यवाद जीवित रहा। परन्तु

विचारक यह भी दावा करते हैं कि रूस में साम्यवाद तो उसी समय मर गया था जब स्टालिन ने इस पर अमानवीय मुखौटा चढ़ाया क्योंकि मार्क्सवाद या साम्यवाद एक मानवतावादी दर्शन है।

स्टालिन के लम्बे एवं निर्दयी शासनकाल के बाद खुश्चेव का शासन एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। खुश्चेव ने साम्यवादी व्यवस्था को जिस रूप में पाया था उससे अधिक अच्छा स्वरूप प्रदान किया अपने देश की जनता की निगाह में एवं दुनिया के भी निगाह में। खुश्चेव के सामने चुनौती थी स्टालिन के शासन के दौरान रूसी साम्यवाद में जो विकृतियाँ आ गयी थी उनसे साम्यवाद को मुक्त करना। उसने स्टालिन की गल्तियों को सार्वजनिक किया और घोषणा की कि साम्यवाद की क्रान्ति का स्वप्न अब दूर नहीं है। उसने आन्तरिक क्षेत्र में नये सुधार लागू किये और बाह्य नीति में पूँजीवादी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध का समर्थन किया साम्यवादी विचारधारा को यह एक और नयी चुनौती थी।

खुश्चेव के चुनौतीपूर्ण संशोधन को बाद के शासकों ने भी रूस में जारी रखा। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शीत युद्ध की स्थिति में कमी आयी, पूँजीवादी एवं साम्यवादी ध्रुवों के मध्य तनाव शैथिल्य आया। पर आन्तरिक क्षेत्र में रूस भयंकर आर्थिक संकट का सामना कर रहा था, दल की तानाशाही में नागरिक स्वतत्रतायें विलुप्त हो चुकी थी और एक साम्यवादी समाज की स्थापना का स्वप्न अभी कोसों दूर था।

सबसे बड़ी चुनौती (The Greatest Challenge)

रूसी जनता एवं समाज ने निरन्तर साम्यवाद की चुनौतियों का सामना किया और उन्हें झेला; शक्ति के केन्द्रीयकरण की चुनौती, समानता और स्वतंत्रता के अभाव की चुनौती, प्रजातंत्रीकरण के अभाव की चुनौती, नियंत्रण और दमन की चुनौती। गोर्वाचेव ने प्रथम बार समाज को इस दयनीय स्थिति से निकालने पर विचार किया। उसने गम्भीरतापूर्वक सोवियत संघ को संवैधानिक शासन एवं कानून के शासन के द्वारा एक प्रजातंत्रीय एवं कल्याण राज्य के रूप में स्थापित करने पर विचार ही नहीं किया वरन् विचार को कार्य रूप भी दिया।

वह प्रक्रिया जो खुश्चेव द्वारा स्टालिन के अपराधों को सामने लाने के माध्यम से शुरू हुयी, गोर्वाचेव के प्रयासों द्वारा आगे बढ़ायी गयी, मार्क्सवाद से अलग मानवतावाद एवं प्रजातांत्रिक समाजवाद की ओर बढ़ने के लिये।[4]

इन प्रयासों का परिणाम था रूस में साम्यवाद का पराभव और सोवियत संघ का विघटन जो साम्यवाद के लिये सबसे बड़ी चुनौती सिद्ध हुयी। पेरेस्त्रोइका और 'ग्लासनोस्त' के क्रान्तिकारी तूफान ने

---

4. Subrata Mukherjee, Marxism in Cotemporary World : An Over view : Essays in Marxist Theory and Practice, P. 24

सोवियत संघ के विशाल वट वृक्ष को गिरा दिया, साथ ही साम्यवाद के साया का अन्त कर दिया। वास्तव में स्वयं गोर्बाचेव के मस्तिष्क में इस बात की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी कि पेरेस्रोइका (पुनर्निर्माण) और ग्लासनोस्त (खुलापन) की कैसे क्रियान्विति हो कि उन्हें साम्यवाद के विरूद्ध भी न जाना पड़े। दल में संगठनात्मक परिवर्तन लाने के स्थान पर उन्होंने दल को ही विघटित कर दिया। गोर्वाचेव चाहते रहे कि साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। पर वह ऐसा करने में असफल रहे। "यह कहने के अलावा कि नये चिन्तन की आवश्यकता है तथा उससे सम्बन्धित प्रश्नों को प्रस्तुत कर देने से आगे, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व ने भी इस क्षेत्र में बहुत योगदान नहीं किया है।"[5]

मूल्यांकन (Appraisal)

किसी चिन्तक ने रूस की क्रान्ति के विषय में कहा था कि सोवियत क्रान्ति एक अपूर्ण क्रान्ति है। क्रान्ति की अपूर्णता का मुख्य कारण है लेनिन द्वारा स्थापित संगठन का अपूर्ण सिद्धान्त जिसमें शक्ति के केन्द्रीयकरण पर सदैव बल दिया गया। लेनिन ने स्वयं मार्क्सवाद का परीक्षण करके दल के संगठन में एवं शासन में भी शक्ति के केन्द्रीयकरण को उचित एवं आवश्यक समझा। श्रमिक आन्दोलन के प्रति गम्भीर समझ और अनुभव से लेनिन के बाद के शासकों ने भी इसे पोषित किया। पर रूस में सत्तर वर्ष के अधिक समय के साम्यवादी शासन के सकारात्मक परिणाम बहुत कम ही सामने आये हैं। रूसी जनता के एक विशाल वर्ग का कहना है कि 'साम्यवाद की सत्तर साल की यात्रा कहीं की नहीं रही।' बहुत पहले 1930 में रूस की समाजवादी व्यवस्था के बारे में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था, कि बोलशेविकवाद एक बीमार समाज के लिये केवल एक चिकित्सकीय उपचार है, इसे एक सुसंस्कृत समाज के लिये स्थायी समाधान नहीं माना जा सकता है क्योंकि एक सुसंस्कृत समाज की सबसे पहली आवश्यकता है स्वतंत्रता एवं समानता।

युगोस्लाविया के नेता एवं चिन्तक एन्टे मार्कोविक का कहना है कि सामयिक समाजवाद कुशलता या राजनैतिक प्रजातंत्र की समस्याओं के समाधान में असफल रही है। उसके अनुसार एक नवीन समाजवाद की आवश्यकता है। जो प्रजातंत्र, स्वतंत्रता एवं राजनैतिक बहुलवाद के प्रति वचनवद्ध हो। इसके लिये समाज का पुनर्निमाण करना होगा। ग्राम्शी ने 1971 में रूसी समाज के बारे में कहा था कि 'सोवियत संघ में शासन ही सब कुछ है और नागरिक समाज कुछ भी नहीं है।' इस प्रकार वहाँ शासन नाम के लिये समाजवादी था। समाज के ऊपर दल व सत्ता का प्रभुत्व था। सम्पत्ति के समाजीकरण के नाम पर सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण किया गया अर्थात् सम्पत्ति पर भी राज्य का अधिकार था न कि समाज का।

सोवियत संघ के विघटन ने निश्चित रूप ने दुनिया में एक विशाल जनसंख्या की साम्यवाद के

---

5. मोहित सेन, पेरेस्रोइका तथा विश्व कम्यूनिस्ट आन्दोलन, विदेशिका, जून, 1989, पृ. 43

प्रति आस्था को खंडित कर दिया। जिस तरह साम्यवादियों ने समाजवाद को अधिनायकवाद के साथ जोड़ रखा था उससे लोगों में साम्यवादी व्यवस्था के प्रति वितृष्णा उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। रूस की जनता अपने स्वप्न के आदर्श राज्य (Utopia) को नहीं पा सकी तो क्या वे प्रति आदर्श को पाने की ओर अग्रसारित है ? क्या वहाँ की जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति उस मार्ग द्वारा हो पायेगी जिसे आज उसने अपनाया है।

आज लोग साम्यवाद की कल्पना को यूटोपियाई कह रहे है, उसे एक असंभव स्वप्न बता रहे हैं। कहा जा रहा है कि इसके सिद्धान्त कागज पर सुखद एवं सन्तोषजनक है परन्तु एक पद्धति के रूप में क्या यह शासक वर्ग की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रख सकता है ? रूस का प्रयोग यही सिद्ध करता है कि साम्यवाद को लागू करने के लिये दमन, शक्ति और नियंत्रण आवश्यक है जो व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को प्रतिबन्धित करता है। अतः यह उचित नहीं है। रूस का शासन दमनकारी और शोषक था जिसने समाजवादी या साम्यवादी होने का दिखावा किया।

इन्हीं विचारों का स्वाभाविक निष्कर्ष निकाला गया कि साम्यवाद एवं मार्क्सवाद पूर्णतया अवैज्ञानिक है और आज की परिस्थितियों में अप्रासंगिक हो चुका है। रूस में नये मानव और नये समाज की रचना के स्वप्न को लेकर जो व्यवस्था स्थापित हुयी वह अन्ततः एक बन्द व्यवस्था बन गयी। दलितों एवं शोषितों का संघर्ष कुण्ठित हुआ और उनके सुखद भविष्य की कल्पना बन्द व्यवस्था में कैद हो गयी। यह एक विडम्बना ही कही जायेगी कि साम्यता के प्रतीक साम्यवाद का स्वरूप विश्व के सामने निरंकुशतन्त्रवाद के रूप में आया।

सोवियत संघ में प्रारम्भिक काल में जनता का जीवन स्तर अति सामान्य स्तर का और सादगीपूर्ण रहा और दूसरी ओर उस समय योरोप के देशों में सामान्यजन का जीवन स्तर अधिक अच्छा था। योरोपीय समाज के धनी वर्ग के पास तो अनन्त आधुनिक सुविधायें थी। इसी कारण इंग्लैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमंत्री विन्सटन चर्चिल ने साम्यवाद के बारे में व्यंग्यपूर्वक कहा था कि "पूँजीवाद का विरासती दोष है सुविधाओं का असमान वितरण, समाजवाद का विरासती गुण है तकलीफों की समान भागीदारी।" मार्क्स ने यह कभी नहीं कहा कि साम्यवाद का अर्थ आम जनता को उच्च्व जीवन स्तर की सुविधाओं से वंचित रखना। पर रूस में कुछ सीमा तक ऐसा ही किया गया।

रूसी क्रान्ति के समय रूस की परिस्थिति फ्राँसीसी क्रान्ति के समान थी। जारशाही की निरंकुश, उत्पीड़क एवं अमानवीय नीति तथा जनहित की उपेक्षा के कारण देश में गृहयुद्ध की सी स्थिति पैदा हो चुकी थी। जिसमें विद्रोह का घटित होना अवश्यम्भावी था। लेनिन ने निष्ठापूर्ण प्रयास द्वारा आम जनता (जिसमें श्रमिक एवं कृषकों की बहुलता थी) को संगठित किया और लेनिन के कुशल एवं ओजस्वी नेतृत्व ने क्रान्ति

को सफल बनाया जिस क्रान्ति को लेनिन ने साम्यवादी क्रान्ति के नाम से प्रचारित किया। विचारकों का कहना है कि इस प्रकार की क्रान्ति किसी भी देश में सम्भव हो सकती है जब शासन की निरंकुशता चरम सीमा पर पहुँच जाती है।

महत्व (Importance)

इसके विपरीत साम्यवादी विचारक कहते हैं कि "मार्क्सवाद या वैज्ञानिक समाजवाद कोई दिवास्वप्न पेश नहीं करता है। यह एक विज्ञान है .... भिन्न–भिन्न ठोस परिस्थितियों में मार्क्सवाद का व्यवहार ही उसका सबसे कठिन हिस्सा है। सिद्धान्त को सदैव व्यवहार की कसौटी पर परखना होता है।"[6] इसी प्रकार साम्यवादी घोषणा पत्र आज कहीं ज्यादा प्रासंगिक और वास्तविक है। क्योंकि वह 1848 की परिस्थितियों की तुलना में समकालीन परिस्थितियों को अधिक सही रूप में प्रतिबिम्बित करती है।

लोगों के विचार यह भी हैं कि साम्यवाद में व्यक्तिगत हित के स्थान पर सामान्य हित को प्रमुखता दी गयी है। अतः सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अति प्रभावशाली, लोकहितकारी व सनातन महत्व का है। सम्पत्ति के समान वितरण एवं एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का आदर्श आज भी दुनिया में स्थायी महत्व रखता है। पूँजीवाद मानव जाति का विध्वसंक है क्योंकि इसमें असमानता है, असहनशीलता है, व्यक्तिगत लाभ जनहित से ऊपर है, और प्रजातंत्र केवल धनियों के लिये है। साम्यवाद द्वारा ही स्वतंत्रता, समानता, मानवता और विश्व शान्ति की स्थापना संभव है। यह एक तर्कपूर्ण पद्धति है और भविष्य में इसे अनेक देशों द्वारा अपनाया जायेगा।

पश्चिमी विचारक कार्ल पॉपर की 'मुक्त समाज' की धारणा चाहे कितनी ही आकर्षक हो इसमें शोषण की समाप्ति पर या निर्धन तथा धनवान के मध्य अन्तर को समाप्त करने पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यद्यपि मार्क्स ने 'क्रान्ति और अधिनायकवाद' को समर्थन दिया है। पर मार्क्सवाद के अनुसार ये साध्य नहीं हैं, संक्रमणकालीन हैं और सच्चे साम्यवाद की स्थापना के साधन मात्र हैं। पूँजीपतियों के शोषण का अन्त करने के लिये उन पर श्रमशक्ति का दबाव आवश्यक है।

"मार्क्सवाद एक सामाजिक विज्ञान है, कुलीन वर्ग या नीति निर्माताओं के लिये नहीं, यह सामान्यजन, शोषित एवं पीड़ितों की सेवा का सामाजिक विज्ञान है।"[7] यह एक मानवतावादी एवं भौतिकवादी तथा प्रगतिवादी एवं सृजनात्मक विज्ञान है। यह सामाजिक एवं राजनैतिक पुनर्निर्माण का मार्ग

---

6. ज्योति बसु, मार्क्सवाद पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, लोकलहर, 9 मई, 1993
7. Randhir Singh, Five Lectures in Marxist Mode, P. 5

दिखाता है। एक ऐसे विश्व के निर्माण का वचन देता है जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता ही नहीं आर्थिक शोषण से स्वतंत्रता सुनिश्चित की जा सके।

लक्ष्य (Aim)

कुछ भी हो यह आज विचारणीय है कि मार्क्सवाद की जिस क्रान्तिकारी विचारधारा ने बीसवीं शती के प्रारम्भ में विश्व राजनीति को एक नया मोड़ दिया उसी शताब्दी के अन्त में उसी विचारधारा पर आधारित व्यवस्था को हमने विघटित होते देखा। सोवियत रूस की राजनीति एवं विश्व राजनीति के बदलते हुये समीकरण ने हमारे सामने अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किये हैं। इन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिये तथा विविध शंकाओं के समाधान के लिये मार्क्सवाद एवं साम्यवाद का मूल्यांकन सामयिक है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है साम्यवाद के भविष्य पर लगाये जा रहे विभिन्न प्रश्नों के विश्लेषण करने का प्रयास करना है कि साम्यवादी व्यवस्था में क्या कमियाँ थी जो इस विघटन के कारण बने। क्या साम्यवाद अवैज्ञानिक एवं असफल सिद्ध हुआ है ? क्या साम्यवाद को अधिनायकवाद के साथ जोड़ा जाना जरूरी है ? सोवियत रूस में जो कुछ भी हुआ वह क्रान्ति है या प्रति क्रान्ति ? क्या रूस की जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति उस मार्ग पर हो पायेगी जिसे वहाँ के देशों ने अपनाया है ? समाजवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में इन समस्त दृष्टिकोणों का विवेचन ही हमारे शोध का लक्ष्य है।

प्रारम्भिक कार्य (Primary Work)

मार्क्सवादी एवं साम्यवादी अवधारणाओं पर यद्यपि बीसवीं शताब्दी के दौरान बहुत कुछ लिखा जा चुका है। परन्तु इसी शताब्दी के अन्तिम दशक में साम्यवादी व्यवस्था के समक्ष आयी हुयी चुनौतियों एवं उसके भविष्य पर हिन्दी भाषा में काम बहुत कम हुआ है। सोवियत रूस में घटित घटनाओं एवं साम्यवादी व्यवस्था के समक्ष आयी चुनौतियों के सन्दर्भ में साम्यवादी विचारधारा एवं व्यवस्था के बिखराव एवं इसके भवितव्य पर गम्भीर अध्ययन आज के समय की एक अनिवार्य आवश्यकता है। क्योंकि साम्यवाद का आकर्षण आज भी दुनिया में कम नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध इसी गम्भीर अध्ययन की ओर एक विनम्र प्रयास है।

उपकरण (Sources)

प्रस्तुत शोधकार्य में मार्क्सवाद, समाजवाद, साम्यवाद एवं इन विचारधाराओं पर आधारित राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याओं पर प्रकाशित पुस्तकों एवं विषय वस्तु के चिन्तकों एवं विशेषज्ञों द्वारा लिखित लेख, विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्ध आदि से मुख्य रूप से सहायता ली गयी है। इसके

अतिरिक्त विषय पर आयोजित भाषण माला, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों पर प्रकाशित दस्तावेज, विभिन्न अकादमियों द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट तथा सम्बन्धित दूतावासों से उपलब्ध जानकारियों से निकाले गये निष्कर्ष आदि भी प्रस्तुत शोध कार्य के उपकरण हैं।

विधि (Method)

इन उपकरणों के विशद् अध्ययन के माध्यम से मार्क्सवादी एवं साम्यवादी विचारधारा के आधारभूत सिद्धान्तों एवं उनके व्यवहार में निहित त्रुटियों का विश्लेषणात्मक पद्धति से अध्ययन किया गया है। सोवियत साम्यवादी व्यवस्था के समक्ष आयी हुयी विविध वैचारिक एवं व्यवहारिक चुनौतियों का तथा उसके पतन के कारणों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक विधि से अध्ययन करने एवं निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया हैं सोवियत संघ के विखंडन का राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा शीतयुद्ध पर पड़े प्रभावों व राजनैतिक संभावनाओं का भी विभिन्न विशेषज्ञों के विचारों के विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक विधि से विस्तृत, निष्पक्ष एवं पूर्वाग्रहों से मुक्त अध्ययन करने का ही यथा संभव प्रयास किया गया है।

परिकल्पना (Hypothesis)

सोवियत संघ का विघटन एवं साम्यवादी व्यवस्था का पतन उसके सिद्धान्तों एवं व्यवहारों में निहित दोषों के कारण हुआ। यह घटना विश्व के भारत जैसे विकासशील देशों के लिये एक सबक है कि उसकी राजनैतिक एवं आर्थिक आकांक्षाओं की पूर्ति सोवियत साम्यवादी मॉडल से सम्भव है या पश्चिमी पूँजीवादी व्यवस्था से। या फिर हमें कोई मध्यमार्गी विकल्प खोजना होगा जो भारत जैसे विकासशील या रूस जैसे विविधताओं से पूर्ण देश की आकांक्षाओं के अनुरूप हो। आज पूँजीवाद को साम्यवाद का एकमात्र विकल्प मान लेने का अर्थ होगा पूँजीवाद के दोषों पर स्वीकृति देना।

साम्यवादी व्यवस्था के सोवियत प्रयोग एवं उसके सामने आयी हुयी चुनौतियों के संदर्भ में इस पर गम्भीर विचार करना अत्यन्त सामयिक है कि यदि साम्यवाद आर्थिक और राजनैतिक धारणा के रूप में असफल और अवैज्ञानिक है तो निश्चित रूप से कोई विकल्प समय की आवश्यकता है। यदि कोई विकल्प है तो वह क्या है ? सोवियत संघ का विघटन क्या सम्पूर्ण साम्यवादी विचारधारा का विघटन है या फिर केवल एक ढाँचे का ? क्या साम्यवादी चिन्तन का आदर्श फिर कभी पहले जैसा महत्व प्राप्त करेगा ? साम्यवाद पूर्णरूपेण एक नवीन राज्य की कल्पना है और यह आर्थिक प्रगति के लिये भी नवीन मार्ग प्रदर्शित करता है। एक ऐसा राज्य जो कभी कहीं भी अस्तित्व में नहीं था। रूस में भी शायद एक ऐसे राज्य की स्थापना नहीं हो पायी।

आज विश्व में केवल चीन, वियतनाम और क्यूबा में साम्यवादी व्यवस्था प्रचलित है। योरोप में साम्यवाद जड़ से समाप्त हो चुका है। यहाँ साम्यवाद को एक नये रूप में विकसित किया गया है जिसे यूरो साम्यवाद (Euro-Communism) कहा जा रहा है। इसमें शोषण विहीन समाज की स्थापना के मार्क्सवादी लक्ष्य को स्वीकारा गया है पर उसकी प्राप्ति के लिये प्रजातंत्रीय साधनों एवं संस्थाओं का समर्थन किया गया है। क्या यूरो साम्यवाद आज की परिस्थिति में कोई विकल्प प्रस्तुत कर सकता है ?

साम्यवाद की प्रासंगिकता क्या फिर दुनिया महत्व प्राप्त करेगी क्योंकि समाज में समानता की स्थापना और शोषण से मुक्ति के आदर्श के शाश्वत मूल्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता जो मार्क्सवाद के मूल में है। अतः साम्यवाद असफल होते हुये भी प्रासंगिक है और यह प्रासंगिकता वैज्ञानिक शोध को बल देती है। प्रस्तुत शोध इन्हीं प्रश्नों एवं बिन्दुओं को समर्पित है।

हमारा प्रयास साम्यवादी व्यवस्था के चुनौतियों के अध्ययन के बहाने सम्पूर्ण मार्क्सवादी विचारधारा साम्यवादी आन्दोलन व एक प्रतिष्ठित साम्यवादी व्यवस्था के विखण्डन के कारक तत्वों की खोज करना, उसके प्रभावों का विश्लेषण करना तथा वर्तमान में राजनैतिक विचारधाराओं के अप्रासंगिक हो जाने के तथ्यों का गहन व सूक्ष्म अध्ययन करना है। इस गम्भीर विषय के विद्यार्थियों तथा प्रबुद्धजनों के मध्य तीव्र बहस का केन्द्र बिन्दु बन जाने के कारण इसे सरल व सहज शब्दों में प्रस्तुत करना और विषय को एक तार्किक एवं सार्थक स्पर्श भी देना हमारा लक्ष्य है क्योंकि मार्क्सवाद का द्वन्द्व समसामयिक भी है। अतः राजनीति शास्त्र के अध्येता के लिये विषय सामग्री पुस्तकीय स्वरूप के साथ ही बौद्धिक संवाद की वृहद सामग्री भी प्रस्तुत करती है।

शोध कार्य प्रकृति एवं स्वरूप में शास्त्रीय है। विषय का सतत् चिन्तन हमारा अभीष्ट है। इस पर पूर्ण विराम लगाना नहीं, यद्यपि इस सर्वाधिक चर्चित विषय को एक शोध प्रबन्ध के कलेवर में समेटना कठिन कार्य है फिर भी हमारा प्रयास विषय से सम्बन्धित ज्वलंत प्रश्नों को उत्तरित एवं रेखांकित करने का रहा है।

प्रथम अध्याय

साम्यवाद का अभ्युदय एवं इसकी प्रारम्भिक चुनौतियाँ

वैचारिक आधार

- ✦ मार्क्सवाद
- ✦ लेनिनवाद
- ✦ साम्यवाद

साम्यवाद का क्रियान्वयन एवं प्रारम्भिक चुनौतियाँ

- ✦ पेरिस कम्यून
- ✦ 1905 की रूसी क्रान्ति
- ✦ 1917 की मार्च क्रान्ति
- ✦ 1917 की अक्टूबर क्रान्ति

साम्यवाद का अभ्युदय एवं प्रारम्भिक चुनौतियाँ

(Rise of Communism and Early Challenges to it)

वैचारिक आधार

(Conceptual Basis)

साम्यवादी विचारधारा का मूल आधार है मार्क्स और एंगिल्स के समाजवादी विचार जिसे उन्होंने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में निहित बुराइयों आर्थिक असमानता और शोषण का अन्त करने और सामन्तवादी व्यवस्था को जड़ से समाप्त करने के लिये प्रस्तुत किया था। अतः साम्यवाद को सामन्तवाद और पूँजीवाद का विरोधी माना गया है।

19वीं शताब्दी में ही समाजवादी विचारों का प्रतिपादन किया गया था और मार्क्स सर्वप्रथम समाजवादी चिन्तक नहीं थे। उनसे पूर्व सेन्ट साइमन ने वर्ग संघर्ष का प्रतिपादन किया। चार्ल्स फ्यूरिए ने मानवता की मुक्ति के नये सामाजिक संगठन की रूपरेखा प्रस्तुत की, प्रोधाँ ने सम्पत्ति के संचय को चोरी बताया, राबर्ट ओवन ने भविष्य के सहयोग के युग के बारे में कल्पना प्रस्तुत की। परन्तु मार्क्स की दृष्टि से ये सभी काल्पनिक समाजवादी थे क्योंकि उन्होंने यह कभी नहीं बताया कि उनके काल्पनिक आदर्श (Utopian) समाज को कैसे प्राप्त किया जायेगा। उन्होंने उस समय की महत्वपूर्ण आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं का कोई उचित समाधान नहीं प्रस्तुत किया। "उन्होंने मनोहर गुलाबों के स्वप्न तो देखे, परन्तु गुलाब के पौधों के लिये जमीन तैयार नहीं की, उन्हें केवल सुन्दरता के बल पर पनपने के लिये छोड़ दिया।"[1] यद्यपि इन्हीं विचारकों ने समाजवादी विचारधारा को मान्यता दिलवायी और समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पर इन्हें प्रायः कल्पना लोक में विचरण करने वाला समाजवादी माना जाता है। मार्क्स एवं एंगिल्स ने उन्हें अधिक महत्व नहीं दिया।

मार्क्स ने एक राजनैतिक और अर्थशास्त्रीय चिन्तक के रूप में सामाजिक विकास का एक वैज्ञानिक दर्शन प्रस्तुत किया। उसने सामाजिक प्रक्रिया का विश्लेषण किया, ऐतिहासिक विकास के नियम प्रतिपादित किये, ऐतिहासिक विकास को आर्थिक तत्व से जोड़ा तथा विश्व में विषमता एवं शोषण जैसी बुराइयों से सामाजिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया जो उस समय की महती आवश्यकता थी इसीलिये वह

---

1. C. L. Wayper, Political Thought, P. 196

अपने समाजवादी सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अधिक सफल हुआ। मार्क्स एवं एंगिल्स का दावा था कि वे सभी तरह के पूर्वाग्रहों से मुक्त रहकर निष्पक्ष दृष्टि से तथ्यों के आधार पर सृष्टि के विकासक्रम का एक तर्कपूर्ण विश्लेषण विश्व के सामने रख रहे हैं।

अपने पूर्ववर्ती जर्मन विचारक हीगल से प्रभावित होकर मार्क्स ने इतिहास के निरन्तर और तर्क युक्त विकास का पक्ष लिया परन्तु हीगल द्वारा इतिहास की व्याख्या जहाँ आदर्शवादी है, मार्क्स द्वारा की गयी व्याख्या मानवतावादी है अतः अधिक व्यवहारिक है। मार्क्स ने राष्ट्रों के संघर्ष की धारणा के स्थान पर वर्गों के संघर्ष की धारणा को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार मार्क्स ने हीगल के दर्शन को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया। यद्यपि दोनों का ही दर्शन इतिहास का दर्शन है एवं दोनों ने ही द्वन्द्वात्मक पद्धति को स्वीकृति दी है। परन्तु हीगल के बिखरे हुये विचारों को मार्क्स ने एक क्रमबद्धता प्रदान की। हीगल ने आत्मा या विचार तत्व की प्रभुता स्वीकार की पर मार्क्स ने भौतिक पदार्थ की प्रभुता को माना। मार्क्स ने हीगल के द्वन्द्ववाद को द्वन्द्वात्मक भौतिकतावाद में परिवर्तित कर दिया।

"हीगल के चिन्तन में 'द्वन्द्वात्मक पद्धति' अपने सर के बल खड़ी थी। मार्क्स ने उसमें से आदर्शवाद के रहस्यात्मक तत्व को हटाकर और उनक स्थान पर औद्योगिक पद्धति की सारभूत तथा ठोस वास्तविकताओं को प्रतिष्ठित करके उसे सीधा खड़ा कर दिया।"(2)

मार्क्स ने फ्रेन्स विचारक सेंट साइमन के श्रम के महत्व सम्बन्धी विचारों से प्रभावित होकर ही उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों के नियंत्रण एवं वर्गहीन समाज की स्थापना के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसी प्रकार रिकार्डो के श्रम मूल्य सिद्धान्त के आधार पर ही इसमें अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और उसे समाजवाद की ओर मोड़ा। "मार्क्स ने साम्यवाद को एक अस्त व्यस्त स्थिति में पाया और उसे एक आन्दोलन बना दिया। उसके द्वारा उसे एक दर्शन मिला और एक दिशा मिली।"(3)

मार्क्सवाद

(Marxism)

मार्क्स ने अपने विशाल एवं क्रमबद्ध दर्शन को जिन चार आधारभूत सिद्धान्तों के माध्यम से रखा है वे सभी परस्पर सम्बद्ध है। मार्क्स एक ओर 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' द्वारा 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' का प्रतिपादन करता है और दूसरी ओर मानव इतिहास के एक शाश्वत नियम एवं अनिवार्य परिणाम के रूप

---

2. जी. एच. सेबाइन, राजनैतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 714
3. Herald, J. Laski, Karl Marx, An Essay, P.

में 'वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त' की स्थापना करता है। शोषण रहित समाज के अपने आदर्श तक पहुँचने के लिये वह 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त' द्वारा पूँजीवाद की कटुतम आलोचना प्रस्तुत करते हुये श्रमिकों को उनके वास्तविक अधिकारों के प्रति जागरूक बनाता है। मार्क्स के सामने इसके बाद का लक्ष्य होता है 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र' की स्थापना जिसमें उत्पादन के समस्त स्रोतों पर श्रमिकों का ही नियंत्रण होगा। यह व्यवस्था श्रमिकों को शोषण से मुक्ति देगी। किन्तु मार्क्स का अन्तिम लक्ष्य तो है राज्य के अस्तित्व की ही समाप्ति या राज्य नामक संस्था का विलीनीकरण।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism)

सर्वप्रथम मार्क्स का सिद्धान्त है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जो उनके वैज्ञानिक समाजवाद का आधार है। सभी साम्यवादियों ने उनके इस सिद्धान्त को अपने दर्शन का आधार माना है। मार्क्स द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रतिपादन में यद्यपि हीगल से ही पूर्णतया प्रभावित हैं परन्तु हीगल से अधिक परिष्कृत एवं सुसम्बद्ध हैं।

हीगल के अनुसार समाज परिवर्तनशील है और उसकी परिवर्तनशीलता का कारक है विश्वात्मा। बुद्धिवादी हीगल का आदर्श अध्यात्मवादी था। हीगल के विपरीत मार्क्स भौतिक पदार्थों को सृष्टि का आधार मानता है और उसका द्वन्द्व भौतिकवादी है। मार्क्स के अनुसार भौतिक जगत की घटनायें एवं वस्तुयें परस्पर अवलम्बित है। भौतिक जगत में परिवर्तन के माध्यम से कुछ प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं, कुछ नष्ट होती हैं, और कुछ की पुनरावृत्ति होती है।

इस विकास के क्रम में मार्क्स के अनुसार तीन अवस्थायें होती हैं। वाद (Thesis), प्रतिवाद (Anti Thesis) एवं संवाद (Synthesis) इस प्रकार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त विकासवाद का सिद्धान्त है। उदाहरण के लिये गेहूँ का दाना विकास के क्रम में परिवर्तित होकर अंकुर में विकसित होता है। अंकुर एक हरे–भरे पौधे के रूप में। पुनः पौधा स्वयं नष्ट होकर अनेक नये दानों को जन्म देता है। मार्क्स विकास के इसी द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहता है। यहाँ गेहूँ का दाना 'वाद' है, तो पौधा उसका 'प्रतिवाद' और पौधे का स्वरूप नष्ट करके नये दानों को जन्म देना 'संवाद' है।

प्रकृति की भाँति मानव समाज में भी प्रत्येक युग में दो या अधिक आर्थिक शक्तियों का अस्तित्व होता है जिनमें संघर्ष चलता रहता है और संघर्ष का परिणाम होता है एक तीसरी आर्थिक शक्ति का विकास। जैसे वर्तमान युग में पूँजीवाद एवं श्रमिक वर्ग में संघर्ष के परिणामस्वरूप पूँजीवाद का अन्त होना और साम्यवाद की स्थापना होगी। अर्थात् वर्ग विचार (Thesis) और वर्ग विरोधी विचार (Anti Thesis) में सघर्ष के परिणामस्वरूप वर्ग विहीन समाज (Synthesis) की स्थापना होगी।

मार्क्सवाद के अनुसार यह परिवर्तन विरोध के द्वारा धीरे–धीरे होता है एवं एक बिन्दु पर

पहुँचकर यह आकस्मिक हो जाता है जब अचानक संवाद अस्तित्व में आता है। "जिस प्रकार पानी बर्फ बन जाता है, उसी प्रकार आकस्मिक गुणात्मक परिवर्तन के कारण सामन्तवाद पूँजीवाद तथा पूँजीवाद समाजवाद बन जाता है।"[4] मार्क्स आर्थिक तत्व को ही सामाजिक परिवर्तन का मूल कारक मानता है। मार्क्स के मतानुसार मानवीय विकास की दिशा को भौतिक शास्त्रियों ने सुनिश्चित कर रखा है। अतः मार्क्स विकास की इस प्रक्रिया में बुद्धि के तत्व की भूमिका को कोई स्थान नहीं देता है। वह कहता है "सम्पूर्ण मानव जाति अटल और शाश्वत नियमों के अधीन एक अपरिहार्य या अवश्यंभावी लक्ष्य की ओर अनिवार्य आवश्यकता के रूप में बढ़ती चली जा रही है।"

मार्क्स सामाजिक विकास की प्रक्रिया में द्वन्द्व को अवश्यम्भावी मानता है। आन्तरिक विरोध ही द्वन्द्व का मूल कारण होता है। अतः पूँजीवाद में अन्तर्निहित विरोध ही श्रमिक वर्ग को पूँजीपति वर्ग के साथ संघर्षरत रखता है। मार्क्स का परिवर्तन आमूल है। अतः यह एक क्रांति है पूँजीवाद की बुराइयों से मुक्ति पाने और शोषित वर्ग की प्रगति के लिये क्रांति अनिवार्य है। वह श्रमजीवी वर्ग का सीधे क्रान्ति के लिये आह्वान करता है।

मार्क्स मानता है कि समाज के विकास में एक निश्चित अवस्था ऐसी आती है जब उत्पादन के तत्व पूर्णतया विकसित हो जाते है और तभी क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न होती है। क्रान्ति राजनैतिक और सामाजिक दोनों स्तर पर होती है। "पूँजीपतियों के विकास के प्रत्येक चरण का अनुगमन उस वर्ग की राजनैतिक प्रगति द्वारा होता है।"[5] राजनैतिक क्रांति शक्ति को एक वर्ग के हाथों से लेकर दूसरे वर्ग के हाथों में दे देती हैं सामाजिक क्रांति वर्गों का समूल नाश कर देगी। मार्क्स का कहना है कि 'क्रांति ही वर्ग संघर्ष का सर्वोच्च रूप है।' मार्क्स के द्वन्द्वात्मक पद्धति का लक्ष्य है एक ऐसे समाज की स्थापना जहाँ न कोई वर्गभेद होगा न कोई शोषण।

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की धारणा को महत्व तो काफी दिया है। परन्तु उसकी बहुत स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं की है। वह विकास में द्वन्द्व को एकमात्र परिचालक तत्व (शक्ति) मानता है। जबकि पदार्थ का विकास केवल आन्तरिक तत्वों के कारण नहीं होता है। इस पर बाह्य तत्वों का पर्याप्त प्रभाव रहता है। जैसे कि गेहूँ के दाने का पौधे के रूप में विकास में बाह्य तत्व जल, प्रकाश आदि का भी प्रभाव रहता है।

मार्क्स भौतिकवाद या आर्थिक तत्व को अतिरिक्त महत्व देता है जबकि मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है। जिसके जीवन का लक्ष्य केवल जैसे भी हो जीवित रहना नहीं है। एंगिल्स ने इस सच्चाई को स्वीकार

---

4. C. L. Wayper, Political Thought, P. 200
5. Manifesto of the Communist Party, P. 42

करते हुये कहा भी है कि मानवीय विकास की प्रक्रिया में आर्थिक तत्व के योगदान को स्वीकार न करने वाले अपने विरोधियों के दुराग्रह के कारण हमें इसके महत्व पर आवश्यकता से अधिक बल देने के लिये विवश होना पड़ा। विकास के लिये मार्क्स क्रांति को अनिवार्य मानता है। परन्तु आधुनिक समाज में क्रांति तथा हिंसा या शक्ति का प्रयोग अनिवार्य नहीं माना गया है। बुद्धिवादी एवं सुसंस्कृति मानव के लिये हिंसक क्रांति ही विकास का एक मात्र मार्ग नहीं हो सकता।

मार्क्स का यह विचार भी यथार्थवादी नहीं प्रतीत होता कि एक उच्चतर अवस्था पर पहुँचकर ही क्रांति होगी और "जिससे सारी संस्थायें धराशायी होकर लुप्त हो जायेगी। ग्राम्सी का दावा है कि उन्नत पूँजीवादी समाज में ऐसा नहीं होता है।"[6] पश्चिमी योरोप में वर्तमान पूँजीवादी समाज यद्यपि एक उच्चतर अवस्था तक पहुँच चुका है। पर उसने क्रान्ति की कोई स्थिति दिखाई नहीं पड़ रही है।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialistic Interpretation of History)

'दास कैपिटल' में मार्क्स का मुख्य लक्ष्य था समाज में विकास की गति के स्वभाविक नियमों का पता लगाना। मार्क्स के शब्दों में "इस रचना का अन्तिम उद्देश्य आधुनिक समाज की गति के आर्थिक नियमों को खोलकर रख देना है।"[7] मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त के आधार पर मानव समाज के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की। "ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज के विकास के लिये द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्तों का ही सम्प्रयोग है।"[8] मार्क्स का कहना है इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर मानव समाज प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने का प्रयोग कर सकता है।

वेपर के अनुसार चूँकि मार्क्स सामाजिक परिवर्तन का आधार आर्थिक कारणों को मानता है उसके अनुसार इतिहास का निर्माण आर्थिक परिस्थितियों द्वारा होता है। अतः मार्क्स के सिद्धान्त को 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' कहना अधिक उचित होगा। चूँकि विश्व के इतिहास की समस्त घटनाओं की भौतिक अवस्थाओं की दृष्टि से व्याख्या की जा सकती है इसलिये यह इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या भी है। दास कैपिटल में मार्क्स कहता है "मेरे दृष्टिकोण के अनुसार समाज की आर्थिक व्यवस्था का विकास प्राकृतिक इतिहास की एक प्रक्रिया है।"[9]

मार्क्स कहता है मनुष्य के भौतिक जीवन में उत्पादन की विधि ही वह प्रमुख कारक है जो उसके जीवन की सामाजिक, राजनैतिक और अध्यात्मिक विधियों को निर्धारित करती है। अतः किसी देश की

---

6. ओ. पी. गावा, राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा, पृ. 263
7. दास कैपिटल (पूँजी), खण्ड 1, पृ. 19
8. C. L. Wayper, Political Thought, P. 202-03
9. पूँजी, खण्ड 1, पृ. 19

राजनैतिक व्यवस्था, सामाजिक प्रणाली उसके व्यापारिक संगठन, उद्योग, कला, साहित्य, रीति रिवाज, धर्म, नैतिकता सभी कुछ उस देश की आर्थिक प्रणाली द्वारा प्रभावित होतीी है। आर्थिक प्रणाली से तात्पर्य है उत्पादन, वितरण एवं विनिमय की प्रणाली। इस प्रकार किसी देश में सामाजिक और राजनैतिक क्रांतियाँ उस देश में उत्पादन एवं वितरण की प्रणाली में परिवर्तन के कारण होती है।

इस सिद्धान्त का प्रारम्भ इस सामान्य सत्य से होता है—''मनुष्य जीवित रहने के लिये भोजन करता है।'' इस सामान्य सत्य के आधार पर मार्क्स कहता है कि मनुष्य अपने भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये किस प्रकार वस्तुओं का उत्पादन करें इस तथ्य पर उसका जीवन आधारित है। ''अतः मनुष्य जीवन की समस्त गतिविधियों में सबसे महत्वपूर्ण है उत्पादन प्रणाली।''

मार्क्स उत्पादन की शक्तियों या आर्थिक शक्तियों को महत्व देता है जो किसी युग में राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं को जन्म देती है। इतना ही नहीं वरन् ''ऐतिहासिक भौतिकवाद में यह निहित है कि हमारे दिन—प्रतिदिन के कार्य ही हमारे विचारों का निर्माण करते है एवं उत्पादन की शक्तियों में हमारी स्थिति, हमारे दृष्टिकोण का निर्धारण करते हैं।''[10] मार्क्स के अनुसार ''सभी सैद्धान्तिक दृष्टिकोण जीवन की भौतिक परिस्थितियों के निष्कर्ष हैं।''

इन्हीं सामाजिक और राजनैतिक संगठनों द्वारा मनुष्यों का पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित होता है। अतः इनका भी आधार है उत्पादन की शक्तियाँ। मार्क्स इसे 'उत्पादन का सम्बन्ध' कहता है। उत्पादन के सम्बन्धों के अनुसार ही सामाजिक एवं राजनैतिक संगठनों में भी परिवर्तन होते हैं। राजनैतिक सत्ता का अधिकारी वर्ग इस परिवर्तन का विरोध करता है जिससे क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

मार्क्स उत्पादन की श्रेष्ठ अवस्था का भी उल्लेख करता है। उत्पादन एवं उत्पादन की शक्तियों में विकास तब तक चलता रहता है। जब तक कि एक श्रेष्ठ स्थिति नहीं आ जाती है। मार्क्स के अनुसार यह श्रेष्ठ अवस्था समाजवाद है। यह पूर्ण उत्पादन की अवस्था है। इतिहास के विकास की दशा निश्चयात्मक रूप से समाजवाद की ओर ही है।

मार्क्स मानता है कि इतिहास का निर्माण मनुष्यों के प्रयत्नों से सर्वथा स्वतंत्र रूप से होता है। यह उत्पादन की शक्तियों के आधार पर होता है और कुछ निश्चित नियमों के आधार पर ही होता है। मनुष्य उन्हें लाने में अपने प्रयासों द्वारा कुछ विलम्ब कर सकता है या शीघ्रता भी कर सकता है परन्तु रोक नहीं सकता है। ''वास्तविक व्यवहार में .... मार्क्स ने अपने सिद्धान्त की तार्किक कठोरता को कम कर दिया है। उत्पादन की शक्तियाँ एक ही समय में विभिन्न देशों में विभिन्न रीति से कार्य करती है।''[11] अतः इसके

---

10. C. L. Wayper, Political Thought, P. 204

11. जी. एच. सेबाइन, राजनीति दर्शन का इतिहास, पृ. 721

परिणाम भी विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न हो सकते हैं।

इतिहास का काल विभाजन (Historical Division of Period)

इतिहास की समस्त घटनायें आर्थिक शक्तियों का परिणाम हैं। अतः आर्थिक शक्तियों एवं दशाओं के आधार पर मार्क्स इतिहास को कुछ निश्चित भागों में विभाजित करता है –

प्राचीन साम्यवादी काल (Period of Premitive Communism)

इस प्राचीन समाज में वर्ग चेतना नहीं थी। वर्ग का सर्वथा अभाव था। यह वर्ग संघर्ष से रहित था क्योंकि इसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं उत्पादन और स्वयं उपभोग करता था। इस स्थिति को मार्क्स 'आदिम साम्यवाद' कहता है। इस अवस्था में मानव समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति का कोई अस्तित्व न था।

दासत्व काल (Period of Slavery)

मनुष्य जब कृषि, पशुपालन से परिचित हुआ तो व्यक्तिगत सम्पत्ति की धारणा सामने आयी। अतः भू स्वामित्व की धारणा से समाज में वर्ग अस्तित्व में आये। एक वर्ग जो भूमि का स्वामी बन गया और दूसरा वर्ग जिसे उसने अपना दास बना लिया। दास वर्ग कृषि कार्य का परिश्रम करता था जिसका लाभ भूस्वामी को प्राप्त होता था। स्वामी वर्ग दास वर्ग का शोषण करने लगा और वर्ग संघर्ष आरम्भ हुआ।

सामन्तवादी काल (Feudual Period)

स्वामी वर्ग और दास वर्ग के मध्य के वर्ग संघर्ष ने सामन्तवादी व्यवस्था को जन्म दिया है। राज्य ने अपने अधीनस्थ सामन्तों को भूमि प्रदान की, बदले में सामन्त राज्य को आर्थिक व सैनिक सहायता देने लगे। सामन्तों से भूमि लेकर किसान खेती करने लगे और सामन्तों को लगान देने लगे। किसानों की दशा दास के समान ही थी। सामन्तों द्वारा किसानों का शोषण होता था।

पूँजीवादी काल (Capitalist Period)

कृषि युग के बाद औद्योगिक युग आया। बड़े–बड़े उद्योगों का संचालन बड़े पूँजीपतियों द्वारा किया जाने लगा। उत्पादन के साधन उद्योग धन्धे धनवान पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित होते गये। समाज में दो वर्ग अस्तित्व में आ गये। सम्पत्तिशाली पूँजीपति वर्ग द्वारा निर्धन श्रमिक वर्ग का शोषण किया जाने लगा। पूँजीपति वर्ग अधिक से अधिक धनवान बनता चला गया और श्रमिक वर्ग निर्धन होता गया। अतः दोनों के बीच वर्ग संघर्ष की स्थिति आयी।

समाजवादी काल (Socialist Period)

मार्क्स का विचार है कि पूँजीपति एवं श्रमिक वर्ग के मध्य वर्ग संघर्ष के कारण एक क्रांति का जन्म होता है। जिसके परिणामस्वरूप पूँजीपति वर्ग की समाप्ति होती है और एक वर्गविहीन समाज की स्थापना होती है जो साम्यवादी समाज होता है। इस प्रकार अन्तिम युग जिसकी मार्क्स कल्पना करता है।

वह है समाजवादी युग। "............... इन सभी युगों में वह वर्ग जिसके पास उत्पादन की शक्तियों का नियंत्रण है शेष वर्गों पर अधिकार रखता है। .... मानव जीवन के सभी चरणों में उत्पादन की स्थितियाँ ही समाज के संगठन को निर्धारित करती है।"(12)

मार्क्स ने इतिहास के विकास में आर्थिक तत्व को भी एकमात्र निर्णायक तत्व माना। जबकि जहाँ विचारधाराओं का जनक अर्थप्रणाली हो सकती है। वहीं अर्थप्रणाली की उत्पत्ति का कारण भी विचारधारा हो सकती है। इतिहास की आर्थिक व्याख्या में मार्क्स एक ओर कहता है कि श्रमजीवी वर्ग क्रांति द्वारा साम्यवाद की स्थापना करेगा दूसरी ओर वह इतिहास के निर्माण में मानव प्रयासों को कोई महत्त्व नहीं देता है। इतिहास के निर्माण में योग देने वाली मानवीय भावनाओं, धर्म, परम्परा, व्यक्तित्व, राष्ट्रवाद की भावना आदि के प्रभाव की पूर्ण उपेक्षा करता है। फिर भी यह मानना होगा कि मार्क्स ने सामाजिक संस्थाओं में आर्थिक कारणों को बल देकर समाज शास्त्र की महान सेवा की है। वास्तव में उसने समाज के विकास में आर्थिक शक्तियों के प्रबल प्रभाव पर प्रकाश डाला है।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value)

दास कैपिटल का एक मुख्य विषय वस्तु (Theme) है अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त। मार्क्स इस सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादन करता है कि पूँजीपति वर्ग श्रमिक वर्ग का किस तरह से शोषण करता है। इसका मुख्य लक्ष्य यह प्रदर्शित करना है कि श्रमिक वर्ग को पूँजीपति वर्ग उचित मजदूरी या पारिश्रमिक नहीं देता है। "मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त निश्चित रूप से जीविका के लिये आवश्यक वेतन की अवधारणा से सम्बन्धित है ....।"(13) इस सिद्धान्त के अनुसार एक पूँजीपति एक श्रमिक को उसके कार्य समय के केवल एक अंश का भुगतान करके अपना लाभ प्राप्त करता है। यदि श्रमिक दस घण्टे काम करता है तो वह केवल आठ घण्टे के कार्य की मजदूरी प्राप्त करता है। शेष बचे हुये दो घण्टे के उत्पादन को पूँजीपति हड़प लेता है।

मार्क्स का कहना है कि किसी वस्तु के उत्पादन में लगाये गये श्रम की मात्रा के आधार पर ही वस्तु का विनिमय मूल्य तय होना चाहिये। मूल्य श्रम के सिद्धान्त का आधार था वह आर्थिक सिद्धान्त जिस पर एडम स्मिथ और डेविट रिकार्डो ने जोर दिया। वेपर का कहना है कि "मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्त का ही व्यापक रूप है। जिसके अनुसार किसी भी वस्तु के मूल्य का निर्धारण उसमें निहित श्रम की मात्रा के अनुपात में होता है।"(14)

मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त वस्तु के प्रयोग मूल्य (Use Value) एवं विनिमय मूल्य

---

12. C. L. Wayper, Political Thought, P. 203
13. F. W. Coker, Recent Political Thought, P. 44
14. C. L. Wayper, Political Thought, P. 209

(Exchange Value) के सम्बन्ध के आधार पर तय किया। प्रयोग मूल्य का निर्धारण वस्तु की उपयोगिता के आधार पर होता है। जबकि विनिमय मूल्य का निर्धारण वस्तु के निर्माण में लगे हुये मानवीय श्रम के मूल्य के आधार पर होता है। मार्क्स का मूल्य सिद्धान्त इस तर्क पर आधारित है कि श्रम ही वस्तुओं के वास्तविक मूल्य का निर्धारक होता है।

मार्क्स कहता है कि यद्यपि प्रत्येक वस्तु के मूल्य का निर्धारक तत्व श्रमिक का श्रम एवं उसके श्रम का मूल्य है किन्तु वह वस्तु बाजार में अधिक मूल्य में बिकता है। श्रम के मूल्य एवं बाजार मूल्य के इस अन्तर को ही मार्क्स अतिरिक्त मूल्य कहता है। इस अतिरिक्त मूल्य को पूँजीपति बिना श्रम के ही प्राप्त कर लेता है। अर्थात् "श्रमिक को जो वेतन दिया जाता है, उसके अतिरिक्त जो अधिक मूल्य लिया जाता है, उसे मार्क्स 'अतिरिक्त मूल्य' के नाम से पुकारता है और वह इसे सभी लाभों का स्रोत मानता है।"[15] मार्क्स के अनुसार "यह उन दो मूल्यों का अन्तर है जिन्हें एक मजदूर पैदा करता है तथा पाता है।" मार्क्स ने इस सिद्धान्त द्वारा यह स्पष्ट किया कि पूँजीवादी व्यवस्था में कच्चे माल और पूँजी पर पूँजीपति का नियंत्रण होता है। श्रमिकों के पास एक मात्र पूँजी उसका श्रम है। जिसे वह पूँजीपति के हाथों बेचने के लिये विवश है। पूँजीपति उसके श्रम से तैयार माल को बाजार में अधिक मूल्य पर बेचता है और अतिरिक्त मूल्य पर अधिकार कर लेता है।

मार्क्स के विचारानुसार श्रमिक वर्ग और पूँजीपति वर्ग में जो निरन्तर संघर्ष चलता है उसका मूल कारण है अतिरिक्त मूल्य। पूँजीपति एवं मिल मालिक अतिरिक्त मूल्य पर आधारित करके श्रमिकों का शोषण करते हैं। मालिक अतिरिक्त मूल्य पर अधिकार प्राप्त करके धनी होता जाता है और मजदूर वर्ग निर्धन होता जाता है। मार्क्स इस विषय पर अन्तिम निष्कर्ष यह निकालता है कि श्रमिकों के इस शोषण का अन्त समजावादी व्यवस्था की स्थापना द्वारा सम्भव है जिसमें व्यक्तिगत स्वामित्व, उत्पादन एवं मुनाफाखोरी का अन्त होगा और श्रमिकों को अपने श्रम का उचित मूल्य मिलेगा। इस प्रकार "उसका अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त मूल्य–सिद्धान्त न होकर उचित मूल्य का सिद्धान्त है।"[16]

कुछ अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण से मार्क्स के यह विचार पूँजीपतियों के प्रति घृणा से भरे हैं। उत्पादन में श्रम ही एकमात्र सक्रिय और आवश्यक तत्व नहीं है। श्रम को मूल्य निर्धारण का एकमात्र तत्व समझना गलत है। माँग पूर्ति और उपयोगिता आज भी वस्तु के मूल्य को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मार्क्स श्रमिकों के शारीरिक श्रम को महत्व देता है। प्रतियोगिता को अनुचित मानता है। जबकि प्रतियोगिता अधिक उत्पादन के लिये प्रेरित करती है। इस सम्बन्ध में बर्टेण्ड रसेल का कहना है कि मार्क्स

---

15. वही, पृ. 110

16. वही, पृ. 110

के विचारों के अनुसार अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का अनुवाद शुद्ध सिद्धान्त के लिये देन की अपेक्षा घृणा की परिभाषा के सारांश के रूप में किया जाये तो अधिक युक्तिसंगत होगा।

फिर भी यह सिद्धान्त पूँजीवादी व्यवस्था के भयंकर दोष को उद्घाटित करता है जो एक नग्न सत्य है। यह सिद्धान्त इतना तर्कपूर्ण और ठोस है कि इसे चुनौती देना असंभव है। यह सच ही है कि पूँजीपति श्रमिकों के परिश्रम के बल पर धनवान बनते है और उनको मिलने वाले लाभ का बहुत बड़ा भाग अतिरिक्त मूल्य ही है। पूँजीपतियों द्वारा शोषण अविराम गति से चलता है। श्रमिक एक उपभोक्ता के रूप में भी शोषित होता है इस मानवीय शोषण का अन्त जरूरी है।

वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (Theory of Class Struggle)

मार्क्स के अनुसार समाज में सदैव ही विरोधी आर्थिक वर्गों का अस्तित्व रहा है। "मार्क्स दो विरोधी आर्थिक वर्गों के निरन्तर अस्तित्व में बने रहने को आर्थिक नियतिवाद की सबसे महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति मानता है।" एक वर्ग जो उत्पादन के साधनों का स्वामी है एवं शक्तिशाली है और दूसरा वर्ग जो केवल शारीरिक श्रम करता है इसलिये कमजोर है। प्रथम वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण होता है। अतः दोनों सदैव संघर्षरत रहते है। "सम्पूर्ण मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।"[17] यह संघर्ष क्रांति को जन्म देता है। वर्ग विभेद का केवल एकमात्र आधार है आर्थिक तत्व।

आधुनिक काल में ये दोनों वर्ग है पूँजीपति वर्ग (Bourgeois) और श्रमजीवी वर्ग (Proletarians)। मार्क्स के अनुसार बुर्जुआ आधुनिक पूँजीपति वर्ग है। जो समाज के उत्पादन के साधनों का स्वामी है और वैतनिक श्रमिक (Wage Labour) का स्वामी है। सर्वहारा वर्ग आधुनिक वैतनिक श्रमिक वर्ग है जिनके पास अपने उत्पादन के कोई साधन नहीं हैं एवं जो जीवित रहने के लिये अपनी श्रमशक्ति को बेचने के लिये विवश है। पूँजीपति वर्ग अतिरिक्त मूल्य पर अधिकार करके श्रमिक वर्ग का शोषण करता है। दोनों वर्गों के मध्य 'संघर्ष का अनिवार्य परिणाम है पूँजीवाद का विनाश और श्रमिक वर्ग की विजय। मार्क्स के अनुसार – वर्ग संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक श्रमिक विजयी नहीं होता।

"1848 में उसने और एंगिल्स ने कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टों में, जो समस्त युगों की एक बड़ी क्रान्तिकारी पुस्तिका बन गयी, वर्ग संघर्ष को अब तक के समस्त समाजों का मूलतंत्र माना।"[18]

मार्क्स ने फ्रांसीसी क्रान्ति के आधार पर मान लिया था कि जो स्थिति फ्रेन्च समाज की है, वही स्थिति लगभग पूँजीवादी समाजों की होगी। अतः उसने आधुनिक समाज में सक्रिय दो राजनैतिक शक्ति के रूप में मध्यम वर्ग या व्यापारी वर्ग तथा औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के अस्तित्व को माना। जो सत्ता तक पहुँचने

---

17. Manifesto of the Communist Party, P. 39
18. जी. एच. सेबाइन, राजनीति दर्शन का इतिहास, पृ. 717

के लिये संघर्ष करते हैं।

मार्क्स का कहना है हर युग में दो परस्पर विरोधी हित रखने वाले वर्गों के संघर्ष के द्वारा ही उस युग के इतिहास का निर्माण हुआ है। इस वर्ग संघर्ष को मार्क्स इतिहास का प्रेरक शक्ति मानता है। पूँजीवाद वाद (Thesis) है। जो संगठित श्रम के रूप में प्रतिवाद (Anti Thesis) को अस्तित्व में लाता है और निर्णायक संघर्ष के माध्यम से अंतिम संवाद (Symthesis) के रूप में वर्ग विहीन समाज अस्तित्व में आयेगा। ''जहाँ पूर्व इतिहास समाप्त होगा और नवीन इतिहास प्रारम्भ होगा।''(19)

सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तंत्र (Dictatorship of Proletariat)

नवीन इतिहास के प्रारम्भ होने से पूर्व और वर्ग विहीन समाज की स्थापना से पूर्व संक्रमण काल का भी मार्क्स वर्णन करता है जिसमें 'सर्वहारा वर्ग' के अधिनायकतंत्र' की स्थापना होगी। मार्क्स तत्कालीन भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के बारे में कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में कहता है ''सही अर्थ में राजनैतिक शक्ति केवल एक वर्ग की संगठित शक्ति है, अन्य वर्ग के दमन के लिये। जब सर्वहारा क्रान्ति द्वारा पूँजीपति वर्ग नष्ट हो जायेगा, समाज में किसी एक वर्ग का प्रभुत्व नहीं होगा।''(20) उद्योगों का संचालन, उत्पादन एवं वितरण सभी का समाजीकरण होगा। पूँजीपति वर्ग के पूर्ण विनाश होने तक श्रमजीवियों का अधिनायकंतत्र बना रहेगा। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति सर्वहारा वर्ग के हाथ में होगी। पूँजीवाद के अन्त के लिये वह शक्ति का प्रयोग निरंकुश रूप से करेगा। मार्क्स इस निरंकुश तन्त्र को पूँजीपतियों की सत्ता को समाप्त करने के लिये आवश्यक मानता है। इतना ही नहीं उसने सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र को वास्तविक लोकतंत्र माना क्योंकि इसका लक्ष्य बहुसंख्यकों का हित होगा।

पूँजीपति वर्ग के नष्ट होने के साथ ही वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी एवं राज्य संस्था का स्वयं ही धीरे–धीरे अस्तित्व भी समाप्त हो जायेगा। इस समाज में, ''प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कार्य करेगा और अपनी आवश्यकतानुसार प्राप्त करेगा।'' मार्क्स कहता है पुरातन पूँजीवादी समाज के स्थान पर ''हमारा एक नया समाज होगा जिसमें प्रत्येक का स्वतंत्र विकास एक शर्त होगा, सबके स्वतंत्र विकास के लिये।''(21)

मार्क्स समाज की प्रगति में धर्म को एक प्रतिक्रियावादी तत्व मानता है। मार्क्स के अनुसार धर्म अफीम के नशे के समान है और 'दोषपूर्ण आर्थिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब है। जिस अर्थव्यवस्था में मनुष्यों की आर्थिक आवश्यकतायें पूरी नहीं होती। वहाँ मनुष्य धर्म का आश्रय लेता है। अतः मार्क्स उत्पादन पर अधिक बल देता है। मार्क्स कहता है धर्म वह अफीम है जिसकी जरूरत जनता को अपने आपको भुलाने के लिये

19. C.L. Wayper, Political Thought, P. 206
20. Manifesto of the Communist Party, P. 74
21. वही, पेज 75

पड़ती है। अतः "जनता के मिथ्या सुख के रूप में धर्म का उन्मूलन करना उसके वास्तविक सुख के लिये आवश्यक है।"[22]

क्रान्ति का कार्यक्रम (Programme of Revolution)

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक पद्धति को ठोस परिस्थितियों में लागू करने और श्रमजीवी वर्ग के लिये कोई कार्यक्रम तैयार करने में अधिक रूचि दिखायी। लास्की के अनुसार मार्क्स के कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो में "समाजवादी सिद्धान्तों का एक आलोचनात्मक विश्लेषण होने के अतिरिक्त क्रान्तिवादी कार्यक्रम के लिये उत्तेजनापूर्ण आह्वान भी है।" मैनिफेस्टों के द्वितीय भाग में समाजवाद की स्थापना के लिये मार्क्स ने एक निश्चित कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। इसने श्रमिकों के लिये किसी संवैधानिक सुधार में रुचि न दिखाकर क्रान्ति का समर्थन किया है।

कार्यक्रम का पहला लक्ष्य था–"श्रमजीवी वर्ग का शासक वर्ग के पद पर आसीन करना"। श्रमिक वर्ग सत्ता तक पहुँचने के लिये सबसे पहले अपने को एक राजनैतिक दल के रूप में संगठित करेंगे और सामान्य निर्वाचन पद्धति द्वारा राष्ट्रीय संसद में बहुमत प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। श्रमिक अपने लक्ष्य सिद्धि के लिये जरूरत पड़ने पर संगठित बल का भी प्रयोग करेंगे। शासन पर अधिकार स्थापित करने के बाद वे अपनी सर्वोच्चता को सुरक्षित रखने की व्यवस्था करें। ये सभी कार्य वे यथासम्भव प्रजातंत्रीय उपायों द्वारा करेंगे। "श्रमजीवी वर्ग की क्रान्ति में प्रथम कदम है सर्वहारा वर्ग को शासक की स्थिति तक ऊपर उठाना और प्रजातंत्र की लड़ाई को जीतना।"[23]

श्रमिकों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य होगा पूँजी का समाजीकरण। यह कार्य क्रमिक प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होगा। क्योंकि पूँजीवादी स्थिति पर धीरे–धीरे आक्रमण करना होगा। इसके लिये सबसे पहले भूमि पर व्यक्तित्व स्वामित्व का अन्त किया जायेगा एवं उत्तराधिकार का भी अन्त होगा। उत्पादन के साधनों के विस्तार के साथ ही बैंक प्रणाली पर राज्य का अधिकार होगा। सबके लिये काम करना अनिवार्य होगा। बाल श्रम की समाप्ति होगी एवं निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा लागू की जायेगी।

मजदूरों को उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिये दीर्घकालीन संघर्षों एवं अनेक ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से गुजरना होगा क्योंकि सत्ता पाने का साधन विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न होगा। कहीं देश व काल के अनुसार प्रत्यक्ष आर्थिक कार्यवाही, कहीं धीरे–धीरे राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति एवं कहीं क्रांति। यद्यपि मार्क्स शक्ति के प्रयोग या हिंसात्मक क्रांति का समर्थन करता है परन्तु केवल सत्ता पाने के लिये। प्रचलित सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन लाने के लिये तो वैधानिक व राजनैतिक साधनों का ही प्रयोग

---

22. मार्क्स और एंगिल्स, हीगल के अधिकार सम्बन्धी दर्शन में योगदान. धर्म. पृ. 51
23. Manifesto of the Communist Party, P.58

होगा। मार्क्स ने एक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिये उसके अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा की भी बात की। मार्क्स लक्ष्य प्राप्ति हेतु अनेक समझौते करने के लिये तैयार था।

इस प्रकार मार्क्स ने सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों ही पक्षों को मजबूती दी। उसका कार्यक्रम कुल मिलाकर क्रान्तिकारी भी था और विकासवादी भी। मार्क्स का कहना था कि हम अपने प्रयासों द्वारा क्रान्ति के कार्यक्रम की गति को तेज कर सकते हैं। उन्होंने अपने समकालीन विचारक लासाले को लिखा था कि जहाँ भी सम्भव हो हम श्रमिकों में असन्तोष रूपी जहर घोलते जायें।

मार्क्स द्वारा राजनैतिक शक्ति की प्राप्ति हेतु वर्ग संघर्ष को महत्व किया जाना प्रामाणिक है। इतिहास में सम्भवतः ऐसे उदाहरण बहुत कम है जब समाज के शोषित वर्ग की ओर से संघर्ष हुये बिना ही शासक वर्ग ने अपने अधिकारों का परित्याग कर दिया हो। इस सत्य के बावजूद मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर अनेक आक्षेप लगाये गये है। "मार्क्स ने वर्ग संघर्ष में दो विरोधी वर्गों का अस्तित्व अनिवार्य मान लिया था उसका विचार था कि इन दो विरोधी वर्गों में सदैव संघर्ष होता रहता है। इस दृष्टि से मार्क्स ने अपने वर्ग संघर्ष को बहुत आसान कर दिया था।"[24]

जबकि वास्तविकता में किसी भी समाज में वर्ग संगठन जटिल ही होता है। औद्योगिक समाज में इसकी जटिलता और बढ़ जाती है। अतः केवल आर्थिक तथ्यों के आधार पर वर्ग संगठन और वर्ग संघर्ष की व्याख्या नहीं की जा सकती समाज का विकास सामंजस्य एवं एकता की भावना के कारण ही होता है न कि केवल वर्ग संघर्ष के कारण। यह इतिहास द्वारा प्रमाणित है कि विभिन्न देशों में एक साथ अनेक वर्गों का अस्तित्व रहा है और वे शान्ति से रहते रहे हैं।

मार्क्स की पूँजीवादी देशों में क्रांति होने की भविष्यवाणी भी गलत साबित हुयी। पाश्चात्य देशों में औद्योगिक विकास के बावजूद कोई श्रमिक क्रांति नहीं हुयी। साथ ही श्रमिक वर्ग के जीवन स्तर में भी सुधार आया। पूँजीपति वर्ग में सम्पत्ति केन्द्रित होते हुये भी छोटे पूँजीपतियों का अस्तित्व बना हुआ है। "वर्ग संघर्ष का अन्त निश्चित रूप से पूँजीवाद का विनाश और समाजवाद की स्थापना में होगा।" यह हर परिस्थति में आवश्यक नहीं है। समस्त देशों में वर्ग युद्ध का एक समान परिणाम होना भी जरूरी नहीं है। इसी प्रकार श्रमिकों में एकता का विचार भी द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान वास्तविक नहीं पाया गया।

मार्क्स एवं पूँजीवाद (Marx and Capitalism)

"मार्क्स का विचार था कि औद्योगिक श्रमिक वर्ग का निर्माण आधुनिक योरोपीय समाज की एक मुख्य घटना है।"[25] मार्क्स ने 'दास कैपिटल' में पूँजीवादी व्यवस्था पर गहराई से विचार किया है। उसने

---

24. जी. एच. सेबाइन, राजनीति दर्शन का इतिहास, पृ. 119

25. वही, पृ. 735

यह प्रतिपादित किया कि औद्योगिक व्यवस्था के दोषों ने श्रमिकों की स्थिति को इतने निम्न स्तर तक पहुँचा दिया है कि यह साम्यवादी लोकतन्त्रात्मक संगठन के स्वतंत्रता एवं समानता सम्बन्धी विचारों के बिल्कुल विपरीत है। पूँजीवादी शोषण के कारण श्रमिकों की स्थिति अत्यन्त कष्टदायक एवं दयनीय हो चुकी है। कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में मार्क्स ने इस शोषण को नग्न, निर्लज्ज, प्रत्यक्ष एवं घृणित शोषण कहा है।[26]

अतः मार्क्स के दर्शन का मुख्य उद्‌देश्य है श्रमिकों को पूँजीवादी शोषण से बचाना। मार्क्स के अनुसार यद्यपि पूँजीवादी व्यवस्था में मानव सभ्यता का विकास हुआ है, मनुष्य ने प्रकृति पर विजय पायी है; उत्पादन की महान शक्तियों को जन्म दिया है तथापि उसकी उपयोगिता अब नष्ट हो चुकी है। पूँजीवादी समाज अब पतन की ओर अग्रसारित है। मार्क्स पूँजीवाद की घोर आलोचना करता है।

सर्वप्रथम मार्क्स पूँजीवाद में पूँजी के केन्द्रीयकरण की आलोचना करता है। विशाल उद्योगों में विशाल स्तर पर उत्पादन एवं एकाधिकार की प्रवृत्ति के कारण श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती है। परन्तु पूँजी थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित होती है। मार्क्स पूँजीपतियों को सम्पूर्ण औद्योगिक सेना का नेता कहता है जो सामाजिक सम्पत्ति पर अधिकार कर लेते हैं और श्रमिकों का शोषण बढ़ता जाता है।

मार्क्स के अनुसार "पूँजी एक सामूहिक उत्पादन है अनेक लोगों की सामूहिक क्रिया है।" "अतः पूँजी एक व्यक्तिगत नहीं वरन् सामाजिक शक्ति है।"[27] पूँजीपति केवल अपने लाभ को ही दृष्टि में रखता है। श्रमिक एवं समाज के हित के प्रति उसमें उदासीनता होती है। श्रम के अतिरिक्त मूल्य को वे अपने पास रख लेते हैं। तीव्र प्रतियोगिता पूँजीपतियों के मध्य लाभ की भावना को बढ़ाती है और यन्त्रों की वृद्धि श्रमिकों की माँग को कम कर देती है। इस प्रकार "पूँजीवाद वास्तव में एक निकृष्ट व्यवस्था है वह समाज को मानवीय तत्व से वंचित कर देता है।"

जब कभी उत्पादन माँग से अधिक हो जाता है। पूँजीपति कृत्रिम अभाव उत्पन्न करते हैं जो आर्थिक संकट को जन्म देता है। इससे श्रमिक एवं जनता का असन्तोष बढ़ता है। मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद का यह आंतरिक संकट ही उसके विनाश का कारण बनता है। "पूंजीवाद स्वयं अपने लिये विनाशकारी है, अपने ही विरोधाभासों के कारण तथा मनुष्य के लिये सर्वथा निरर्थक है।" मार्क्स कहता है कि पूँजीपति स्वयं ही अपने कब्र खोदने वाले को तैयार करते हैं। पूँजीपति स्वयं ही उन मनुष्यों को जन्म देते हैं जो उनके खिलाफ हथियार उठाते हैं, यह मानव है आधुनिक श्रमिक वर्ग।[28]

मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिक अपनी व्यक्तिगत अस्मिता को भूलकर एक यन्त्र

---

26. Manifesto of the Communist Party, P. 43
27. वही, पृ. 62–63
28. Manifesto of the Communist Party, P. 59

मात्र बनकर रह जाता है। उसका मानवीय चरित्र खो जाता है। उसकी आत्म विच्छिन्नता से कार्यक्षमता को क्षति पहुँचती है। श्रमिकों का असन्तोष उन्हें एकताबद्ध बनाता है। उनमें वही चेतना बढ़ती है और श्रमिक संगठन अस्तित्व में आते हैं। उनके संगठन विस्तृत रूप लेते हैं आधुनिक उद्योग के संचार साधन उन्हें निकट लाते हैं, जब तब उनका असन्तोष विद्रोह बनकर फूटता है। शोषण और निर्धनता, पराधीनता और असमानता, निराशा तथा दासता श्रमिक वर्ग को क्रान्तिकारी बना देते है। श्रमिकों का आन्दोलन प्रारम्भ होता है। अन्य देशों के श्रमिक एक दूसरे के समीप आते है और सर्वहारा वर्ग की राष्ट्रीय क्रांति अन्तर्राष्ट्रीय बन जाती है।

"इस तरह पूँजीवादी व्यवस्था श्रमिकों की संख्या में वृद्धि करती है, उन्हें संगठित समूह में एक साथ लाती है, उनमें वर्गीय चेतना भरती है, उन्हें विश्वव्यापी स्तर पर सहयोग करने तथा परस्पर मिलने जुलने के साधन प्रदान करती है, उनकी कार्यशक्ति को कम करती है, उनका अधिकाधिक शोषण करके उन्हें संगठित विरोध के लिये उत्प्रेरित करती है।"

मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवादी दर्शन को व्यवहारिक धरातल पर प्रमाणित करते के लिये अपनी काल्पनिक योजना में श्रमिकों को पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध क्रान्ति की ओर बढ़ने के लिये प्रेरित किया। मार्क्स का मानना था कि "आज समाज के समस्त वर्गों में जितने भी वर्ग पूँजीपतियों के आमने सामने खड़े हैं उनमें श्रमजीवी ही केवल वास्तविक क्रान्तिकारी वर्ग हैं।"[29] अन्य वर्गों की अपेक्षा श्रमजीवी वर्ग ही पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था के विशेष महत्वपूर्ण उपज हैं। जिनके पास अपना कुछ नहीं है और जिनका लक्ष्य है पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करना।

विच्छिन्नता का सिद्धान्त (Theory of Alienation)

मार्क्स ने व्यक्ति की विच्छिन्नता का मुख्य कारण पूँजीवादी व्यवस्था को माना। मानव की विच्छिन्नता का सिद्धान्त एक मानवतावादी दर्शन है। मार्क्स द्वारा अपने प्रारम्भिक जीवन में लिखी गयी पुस्तक 'इकोनॉमिक एण्ड फिलॉसोफिकल मैनुस्क्रिप्ट्स ऑफ 1844' में इस मानवतावादी दर्शन का वर्णन है। तरुण मार्क्स के सामने मुख्य समस्या किसी आर्थिक या राजनैतिक क्रान्ति के सम्पन्न करने की नहीं थी वरन् यह थी कि आज का व्यक्ति अपने को जो समाज से विच्छिन्न या पूर्णतया कटा हुआ पाता है उसे समाज में कैसे फिर से समायोजित किया जाये। क्योंकि मार्क्स के अनुसार किसी व्यक्ति में "चेतनता जीवन को निर्धारित नहीं करती वरन् जीवन चेतनता को निर्धारित करता है।"[30]

मार्क्स कहता है कि पूँजीवादी व्यवस्था में "व्यक्ति अपने काम से अपने को विच्छिन्न पाता है .... जीवन की अन्य गतिविधियों से अपने को विच्छिन्न पाता है, अपने बनाये गये पदार्थों से अपने को

---

29. वही, पृ. 55

30. Marx, The Germen Ideology, P. 164

विच्छिन्न पाता है, ... समस्त पार्थिव दुनिया से अपने को विच्छिन्न पाता है और यहाँ तक कि अपने निकट के साथियों से भी वह अपने को कटा हुआ पाता है।'' क्योंकि ''पूँजीपतियों ने परिवार के भावनात्मक आवरण को नष्ट कर दिया है और पारिवारिक सम्बन्ध को केवल आर्थिक सम्बन्ध में परिणत कर दिया है।''(31) मनुष्य की इस विच्छिन्नता की समाप्ति के लिये पूँजीवाद का अन्त करना और उसके स्थान पर साम्यवाद की स्थापना करना आवश्यक है।

मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था में मनुष्य की विच्छिन्नता के सिद्धान्त का चार रूपों में विश्लेषण किया है –

प्रथम, पूँजीवादी समाज में व्यक्ति उत्पादन की प्रक्रिया एवं अपने उत्पादन से विच्छिन्न हो जाता है। क्योंकि उसका काम उसे इस बात का सन्तोष नहीं दे पाता है कि वह किसी के लिये कोई रचनात्मक कार्य कर रहा है। अपने उत्पादन से उसकी कोई व्यक्तिगत आत्मीयता नहीं रह जाती है।

द्वितीय, इस व्यवस्था में मनुष्य प्रकृति से भी विच्छिन्न हो जाता है। मशीनों पर काम करने में जो एकरसता उत्पन्न होती है। उसके कारण श्रमिक में कार्य करने का आनन्द नहीं रह जाता है और वह प्राकृतिक वातावरण का पवित्र आनन्द वह नहीं उठा पाता है।

तृतीय, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मानवीय प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक होती है कि श्रमिकों का पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। मानव अपने को अपने समाज से एवं अपने सहयोगियों से भी कटा हुआ पाता है।

चतुर्थ, मनुष्य स्वयं अपने से एवं अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व से भी विच्छिन्न हो जाता है। उत्पादन प्रक्रिया का स्वामित्व एवं नियंत्रण पूँजीपति में निहित होने के कारण मनुष्य की गतिविधियाँ नियंत्रित हो जाती है। पूँजी के व्यक्तिगत स्वामित्व से उत्पन्न परिस्थितियों का श्रमिक दास बन जाता है। स्वयं पूँजीपति भी सम्पत्ति के निरंकुश तन्त्र का दास बन जाता है।

मार्क्स इन परिस्थितियों का विश्लेषण करता हुआ कहता है कि, ''............... समाज के इन सभी उपकरणों से विच्छिन्न होकर व्यक्ति एक शरीर मात्र रह जाता है, और उसके वे सब गुण नष्ट हो जाते है। जिनके आधार पर उसे मानव के रूप में पहचाना जा सकता था।''(32)

इस प्रकार मार्क्स ने उस समय के पूँजीवादी समाज में मनुष्य की जो चिन्तनीय स्थिति थी उसके प्रति अत्यधिक रूचि प्रदर्शित की है। मार्क्स को विश्वास था कि साम्यवादी समाज में ही मनुष्य अपने सामाजिक और मानवीय जीवन को फिर से प्राप्त कर सकेगा और एक मानव के रूप में अपने फिर से

---

31. Menifesto of the Communist Party, P. 44

32. Bertel Oleman, Alienation, Marx's Conception of man in Capitalist Society, P. 131

स्थापित कर सकेगा। क्योंकि पूर्ण साम्यवाद में सामाजिक वर्गों की समाप्ति होगी, एकीकरण की स्थापना होगी और 'विच्छिन्न व्यक्तित्व वाले मानव' के स्थान पर 'स्वतंत्र मानव' होगा।

लेनिनवाद

(Leninism)

कार्लमार्क्स एक दार्शनिक था और साम्यवादी विचारों का जनक, लेनिन एक नेता था और साम्यवादी दल का प्रवर्तक। लेनिन ने मूलतः किसी नये दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया वरन् मार्क्स के साम्यवादी विचारों को भूतल पर व्यवहारिक रूप दिया। उसने रूस में साम्यवादी क्रान्ति का नेतृत्व किया एवं सोवियत समाजवादी गणराज्यों के संघ की स्थापना की। उसने मार्क्सवाद को एक निरन्तर विकासशील विचार के रूप में माना और उसमें परिवर्द्धन किया। यद्यपि उसने सिद्धान्त को ही कार्य का पथ प्रदर्शक माना पर परिस्थितियों का मूल्यांकन करके व्यवहार में आवश्यकतानुसार संशोधन भी किया।

लेनिन को मार्क्स के विचारों में रूसी क्रान्ति का आधार प्राप्त हुआ। उसने मार्क्स और एंगिल्स के विचारों को यद्यपि प्रामाणिक और वैज्ञानिक रूप में स्वीकार कर लिया और रूस में समाजवादी क्रांति लाने के लिये और साम्यवाद की स्थापना के लिये इन्हें दिशा निदेशक सिद्धान्त माना। किन्तु 1883 में मार्क्स की मृत्यु के बाद परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही थी। इन बदली हुयी परिस्थितियों में लेनिन ने मार्क्सवाद को नयी दृष्टि से देखा, उसकी नये रूप में व्याख्या की एवं उसमें अपने नये विचार एवं दृष्टिकोण जोड़े जिन्हें हम आज लेनिनवाद कहते हैं।

मार्क्स के कुछ सिद्धान्त भ्रमपूर्ण सिद्ध हुये और कुछ भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध हुयी। "लेनिन ने मार्क्सवाद को पूँजीवाद की आधुनिकतम अवस्था के अनुसार ढालकर, साम्राज्यवाद के सिद्धान्त का प्रयोगकर और उन विकासों की व्याख्या करके जो मार्क्स की भविष्यवाणियों के पूर्णतया विरुद्ध थी, मार्क्सवाद की रक्षा के लिये तत्पर कदम उठाया।"[33]

स्टेलिन के अनुसार लेनिनवाद सर्वहारा वर्ग की क्रांति के युग का मार्क्सवाद है। "अधिक सही अर्थ में लेनिनवाद सामान्य रूप में सर्वहारा क्रान्ति का सिद्धान्त और पद्धति तथा विशिष्ट रूप में सर्वहारा के अधिनायकतंत्र का सिद्धान्त और प्रक्रिया है।"[34]

लेनिन का मार्क्सवाद में योगदान (Contribution of Lenin in Marxism)

सर्वहारा क्रान्ति (Proletariat Revolution)

रूस की सर्वहारा क्रान्ति ने मार्क्सवाद के इस सिद्धान्त को असत्य सिद्ध किया कि क्रान्ति पहले

33. C. L. Wayper, Political Thought, P. 218
34. J. V. Stalin, Foundations of Leninism, P. 10

उन्हीं देशों में होगी जहाँ औद्योगिक विकास पूर्णता पर हो। अतः लेनिन ने सर्वहारा क्रान्ति में इस नवीन सिद्धान्त की स्थापना की कि यह क्रान्ति किसी एक विशेष देश के आर्थिक विकास की परिणति नहीं वरन् विश्व के समस्त या अधिसंख्यक देशों के आर्थिक विकास की परिणति होती है।

रूसी क्रान्ति ने मार्क्स के इस सिद्धान्त को भी झुठलाया कि पहले पूँजीवाद की स्थापना होगी एवं पूँजीवाद के चरम विकास की परिणति पर ही साम्यवादी क्रान्ति होगी। मार्क्स का कहना था "हमें न सिर्फ पूँजीवादी उत्पादन के विकास से ही बल्कि इस विकास की अपूर्णता से भी कष्ट भोगना पड़ रहा।"[35] पर लेनिन के अनुसार यह जरूरी नहीं है कि पूँजीवादी क्रान्ति की चरम सीमा पर पहुँचने पर ही साम्यवादी क्रान्ति होगी। वरन् पूँजीवादी क्रान्ति के कुछ समय या तुरन्त बाद सर्वहारा क्रान्ति का घटित होना सम्भव है। इसी सन्दर्भ में लेनिन का यह कहना था कि सर्वहारा क्रान्ति केवल विकसित देशों में ही नहीं वरन् भारत चीन जैसे अविकसित देशों में भी हो सकती है। रूसी क्रांति भी सामन्तवादी शोषण का परिणाम है न कि पूँजीवादी क्रान्ति का।

लेनिन ने रूसी क्रान्ति को सफल बनाने के लिये केवल श्रमिक वर्ग से ही नहीं वरन् कृषक वर्ग एवं सैनिकों भी से सहयोग लिया। अतः मार्क्स के विपरीत उसने केवल श्रमिकों को ही नहीं वरन् कृषकों को एवं सैनिकों को भी क्रान्तिकारी वर्ग में शामिल किया। लेनिन यह भी प्रतिपादित किया क्रान्ति देश, जनता और परिस्थितियों की उपज होती है। "क्रान्तिकारी के रूप में लेनिन की सफलता का एक प्रधान कारण यह था कि उसने किसानों को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा हालांकि अधिकांश रूसी मार्क्सवादी उन्हें उपेक्षणीय समझते थे।"

सर्वहारा का दल (Party of Proletariat)

मार्क्स का विचार था कि मजदूर वर्ग में स्वयं ही अपने अनुभव के आधार पर चेतना उत्पन्न होगी और समाजवादी आदर्श से वे प्रेरित होंगे। किन्तु लेनिन ने अपने अनुभव के आधार पर सिद्ध किया कि श्रमिक वर्ग में चेतना लाने के लिये बाह्य शक्ति की आवश्यकता होगी।

श्रमिक केवल सभाई बन सकते हैं। न तो उनमें जागरूकता होती है न ही वे क्रान्ति का स्वयं संचालन कर सकते। "श्रमिक स्वयं समाजवादी नहीं हो सकते उनमें व्यापारिक संघवाद तथा क्रान्तिकारी विचार मध्यम वर्ग के बौद्धिक लोगों द्वारा ही लाये जा सकते हैं।"[36] "लेनिनवाद की मुख्य विशेषता यह थी कि उसने साम्यवादी दल को विशेष महत्व दिया।"[37] इसके लिये बुद्धिजीवी नेता एवं दल की आवश्यकता

---

35. मार्क्स, पूँजी, प्रथम खण्ड, पृ. 16
36. C. L. Wayper, Political Thought, P. 130
37. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 796

होगी जो श्रमिकों में क्रान्तिकारी चेतना जागृत करेगा एवं क्रान्ति का नेतृत्व करेगा। उसने यह भी स्पष्ट किया कि "साम्यवादी दल मजदूर वर्ग का ही एक भाग है।"[38] इस प्रकार लेनिन का दल सम्बन्धी सिद्धान्त मार्क्सवादी विचारधारा को उसका सबसे महत्वपूर्ण देन है। "वह ऐसे दल की स्थापना करना चाहता था जो समाजवादी क्रान्ति पैदा कर सके।"

सर्वहारा का अधिनायकतंत्र (Dictatorship of Proletariat)

मार्क्स के अनुसार क्रान्ति के द्वारा सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र की स्थापना होगी। साम्यवादी घोषणा पत्र में कहा गया कि सर्वहारा का अधिनायकतंत्र श्रमिक वर्ग का शासन होगा। अतः यह सच्चा लोकतंत्र भी होगा। "क्रान्ति का पहला कदम श्रमिक वर्ग द्वारा शासक वर्ग की स्थिति पाकर प्रजातंत्र की स्थापना करना होगा।"[39] यद्यपि लेनिन ने भी यह स्वीकार किया कि "आज विश्व की राजनैतिक परिस्थितियाँ ऐसी हो रहीं हैं जिसमें सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तंत्र अनिवार्य हो उठा है।"[40] परन्तु लेनिन का कहना था कि जिस प्रकार श्रमिक न तो स्वयं समाजवादी क्रान्ति का नेतृत्व या संचालन कर सकते है उसी प्रकार सर्वहारा के अधिनायकतंत्र की स्थापना भी नहीं कर सकते। यह कार्य भी साम्यवादी दल के नेतृत्व एवं नियंत्रण में होगा। क्रान्ति का नेतृत्व दल के अत्यन्त कुशल, प्रतिभावान, सुयोग्य एवं निष्ठावान बुद्धिजीवी वर्ग करेगा।

इस प्रकार लेनिन ने सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र के स्थान पर साम्यवादी दल के अधिनायकतंत्र की अवधारणा का प्रतिपादन किया। "अतः सुशिक्षित एवं सुनियन्त्रित क्रान्तिकारियों का एक छोटा सा दल शक्ति प्राप्त कर क्रान्तिकारी चेतना के लिये उसका सदुपयोग करेगा। श्रमिक वर्ग का अधिनायकतंत्र व्यवहार में श्रमिक वर्ग के ऊपर अधिनायकतंत्र होगा।"

वास्तव में रूस में 1917 की अक्टूबर क्रान्ति के द्वारा स्थापित शासन सही अर्थ में साम्यवादी दल का अधिनायकतंत्र ही था जिसे लेनिन ने मार्क्स के सच्चे शिष्य के रूप में पूर्ण लोकतांत्रिक शासन ही कहा वह श्रमिक निरंकुशता को प्रजातंत्र ही मानता है। जबकि रेडक ने इसके बारे में कहा कि "सोवियत सरकार प्रजातंत्र सरकार नहीं है, वह श्रमिकों की सरकार का ही एक रूप है।"[41] परन्तु लेनिन 'State and Revolution' में लिखता है कि "हम जानते हैं कि क्रान्ति के बाद राज्य का राजनीतिक रूप पूर्ण प्रजातंत्रीय ही होता है। किन्तु इसमें राजनैतिक स्वतंत्रता को तब तक के लिये स्थगित किया जा सकता है जब तक की संघर्ष समाप्त न हो जाये और पूर्ण साम्यवाद की स्थापना न हो जाये।"

---

38. Lenin, Selected Works, Vol. II, P. 53
39. Manifesto of the Communist Party, P. 73
40. लेनिन की संकलित रचनायें, खण्ड 3, भाग 2, पृ. 15
41. C.L. Wayper, Political Thought, P. 228

राज्य के अस्तित्व की समाप्ति (Withering away of State)

- 'सर्वहारा क्रान्ति के द्वारा पूँजीवाद की समाप्ति के बाद वर्गहीन समाज की स्थापना होगी एवं राज्य के अस्तित्व की समाप्ति होगी।' मार्क्स के इस विचार में लेनिन ने संशोधन करते हुये कहा कि जब तक सम्पूर्णतया पूँजीवादी व्यवस्था समाप्त नहीं होती एवं साम्यवादी व्यवस्था उसका स्थान नहीं लेती तब तक राज्य के अस्तित्व की समाप्ति भी सम्भव नहीं है। लेनिन ने स्वयं स्वीकार किया कि समाज में अपराधी और दुष्ट लोग हमेशा मौजूद रहेंगे और उनको नियंत्रित करने के लिये राज्य की आवश्यकता हमेशा बनी रहेगी पर पूँजीवादी व्यवस्था के पूरी तरह विनाश के बाद राज्य का स्वरूप बदल जायेगा और वह किसी वर्ग विशेष की शोषक संस्था न रहकर समाज की प्रतिनिधि संस्था बन जायेगी। लेनिन के अनुसार "श्रमिक वर्ग क्रान्ति के द्वारा पूँजीवादी राज्य को उखाड़ देगा। इसके बाद संक्रमणकालीन राज्य की स्थापना करेगा। यह राज्य सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद होगा। धीरे–धीरे ज्यों–ज्यों श्रमिक वर्ग सच्चे साम्यवाद की परिस्थितियाँ पैदा करता जायेगा, त्यों–त्यों यह राज्य अथवा अर्द्धराज्य लुप्त होता जायेगा।"[42] परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में उसने रूस में राज्य के अस्तित्व को बनाये रखना जरूरी समझा।

साम्राज्यवाद की नवीन व्याख्या (New Interpretation of Imperialism)

मार्क्स ने यह भविष्यवाणी की थी पूँजीवाद के विकास के साथ ही साथ समाज में केवल दो वर्ग पूँजीपति वर्ग एवं सर्वहारा वर्ग ही शेष रह जायेंगे जिनके बीच की खाई दिन पर दिन बढ़ती चली जायेगी, वर्ग संघर्ष तेज होता चला जायेगा। परन्तु व्यवहार में औद्योगिक क्रान्ति वाले देशों में यह वर्ग संघर्ष तेज नहीं हुआ न ही इन देशों में सर्वहारा क्रान्ति सम्पन्न हुयी। इन देशों में पूँजीपति और श्रमिकों का सम्बन्ध भी अधिक ठीक हुआ व श्रमिकों की दशा में सुधार आया।

फिर भी लेनिन मार्क्स के विचारों का समर्थन करते हुये कहता है कि पूँजीवाद ने विकसित होकर साम्राज्यवाद का रूप ले लिया है और बदली हुयी परिस्थितियों में पूँजीपति अपने साम्राज्य के देशों के श्रमिकों का शोषण कर रहे हैं। लेनिन ने अपने साम्राज्यवाद की व्याख्या में कहा कि "साम्राज्यवाद पूँजीवाद का अन्तिम चरण है और साम्राज्यवाद की परिणति युद्ध में होती है।" वह साम्राज्यवाद के आर्थिक रूप की व्याख्या करते हुये कहता है कि पूँजी के केन्द्रीयकरण के साथ ही राष्ट्रों में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ती है। विकसित राष्ट्र अविकसित राष्ट्रों से सस्ते मूल्य में कच्चा माल प्राप्त करने के लिये अपना एक निश्चित प्रभाव क्षेत्र बना लेते हैं। इस क्षेत्र पर व्यापारिक अधिकार का अगला परिणाम होती है साम्राज्य की स्थापना जो युद्ध के द्वारा होती है। इस प्रकार "राजनीतिक साम्राज्यवाद एकाधिकार पूँजीवाद का स्वाभाविक परिणाम है और युद्ध पूँजीवाद का स्वाभाविक परिणाम।"[43]

---

42. जी. एच. सेबाइन, राजनीति दर्शन का इतिहास, पृ. 784

43. वही, पृ. 770

मार्क्स ने साम्राज्यवाद को पूँजीवाद का विकसित रूप माना। अतः साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध नहीं किया। उसने पूँजीवाद के अन्त के लिये युद्ध को अनिवार्य माना। अतः लेनिन ने एशिया एवं अफ्रीका के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का न केवल समर्थन किया वरन् उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष का एक अंग माना। उसने इन राष्ट्रों के स्वतंत्रता व आत्मनिर्णय के अधिकारों का भी समर्थन किया क्योंकि लेनिन चाहता था कि अल्प विकसित देश सर्वहारा की भूमिका संभालकर साम्राज्यवादी देशों के विरोध में क्रान्ति करें।

इस प्रकार लेनिन ने मार्क्सवादी विचारधारा को न केवल व्यावहारिकता की कसौटी पर कसा वरन् परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल उसमें संशोधन एवं सम्बर्द्धन भी किये। लेनिन ने स्वयं रूस की साम्यवादी क्रान्ति का नेतृत्व किया एवं उसके स्वयं के अनुभव ही उसके सामने मार्क्सवाद की नयी दिशा के लिये द्वार खोलते गये। लेनिन ने मार्क्सवाद को पूर्ण किया और उसे नवीनतम रूप दिया।

लेनिन न तो कोई सिद्धान्तवादी था और न कोई सामान्य विचारक था। अतः उसने स्वयं रूस में समाजवादी क्रांति को सफल बनाया, साम्यवादी दल के अधिनायकतंत्र द्वारा सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र को स्थानापन्न किया और सोवियत समाजवादी व्यवस्था की नये रूप में स्थापना की। सेबाइन ने ठीक ही कहा है – "लेनिन मार्क्सवाद की रूढ़ियों को निष्ठा से स्वीकार करता था। लेकिन जब इन रूढ़ियों का व्यवहारिकता से संघर्ष हुआ तो लेनिन ने उन्हें त्याग दिया।"[44] इस प्रकार लेनिन ने मार्क्सवाद को एक व्यवहारिक और यथार्थपरक रूप प्रदान किया। "यद्यपि लेनिन एक वर्ण संकर मार्क्सवादी है फिर भी रूस को एवं विश्व को उसका जो योगदान है उसे महत्वहीन नहीं कहा जा सकता।"[45]

साम्यवाद
(Communism)

मार्क्स एवं लेनिन का अन्तिम लक्ष्य समाजवादी आदर्श के अनुरूप स्थापित साम्यवादी समाज है। मार्क्सवादी एवं लेनिनवादी दर्शन का आधार जो समाजवाद है वह साम्यवाद की स्थापना की दिशा में एक चरण है। सर्वहारा क्रान्ति, जो श्रमिक वर्ग की क्रान्ति है एवं जिस क्रान्ति में हिंसा का प्रयोग भी मान्य है, के द्वारा सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की स्थापना ही साम्यवाद का लक्ष्य है। इसका अन्तिम लक्ष्य है वर्गविहीन समाज की स्थापना। हीगल के दर्शन को अधिक स्पष्ट बनाकर मार्क्स ने "हीगलवाद को क्रान्तिकारी उग्रवाद का एक नया दर्शन बना दिया। मार्क्सवाद कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों सहित आधुनिक साम्यवाद का प्रवर्त्तक बन गया।"[46]

---

44. जी. एच. सेबाइन, राजनीति दर्शन का इतिहास, पृ. 790
45. C. L. Wayper, Political Thought, P. 230
46. जी. एच. सेबाइन, राजनैतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 703

मार्क्सवाद में लेनिन द्वारा एवं उसके बाद स्टालिन द्वारा संशोधित एवं परिवर्धित विचारधारा ही वास्तव में साम्यवाद है। साम्यवाद का लक्ष्य साम्यतापूर्ण समाज की स्थापना करना है। जो वर्ग विहीन होगा; जिस समाज में शोषण या उत्पीड़न के स्थान पर पारस्परिक सहयोग एवं सबके हितों के संरक्षण की स्थापना होगी।

साम्यवाद मूलतः पूँजीवाद का घोर प्रतिरोधी है। मार्क्स कहता है कि वर्तमान पूँजीवादी समाज ने "नये वर्गों को, शोषण की नई स्थितियों को और पुराने के स्थान पर नवीन प्रकार के संघर्षों को जन्म दिया है।"[47] समाज परस्पर विरोधी हित वाले दो खेमे में बंट गया है पूँजीपति जो धनी हैं और श्रमजीवी जो निर्धन हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में निहित असमानता का साम्यवाद जोरदार विरोध करता है। एक ऐसी सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था का समर्थन करता है जिसमें सामान्य जनता के अवसरों की समानता उपलब्ध हो। पूँजीवादी व्यवस्था में सम्पत्ति के असमान वितरण एवं पूँजीपतियों द्वारा श्रमजीवी वर्ग के शोषण के प्रति यह तीव्र घृणा प्रकट करता है। साम्यवाद का मुख्य लक्ष्य इस शोषण और असमानता को समाप्त करना है। इसके लिये मार्क्स व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त करने का समर्थन करता है।

वास्तव में मार्क्स ने व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति को ही साम्यवाद का सर्वप्रथम लक्ष्य माना है। कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में मार्क्स कहता है "साम्यवाद की प्रमुख विशेषता सामान्य रूप में सम्पत्ति का उन्मूलन नहीं है वरन् पूँजीपति वर्ग की सम्पत्ति का उन्मूलन है।" पूँजीपतियों की व्यक्तिगत सम्पत्ति ही सब प्रकार के शोषण का आधार है। अतः साम्यवादियों के सिद्धान्त को केवल एक वाक्य में सारांशित किया जा सकता है "व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन"।

द्वन्द्वात्मक पद्धति (Dialectic System)

मार्क्स के पद चिन्हों पर चलते हुये साम्यवाद द्वन्द्वात्मक पद्धति के प्रति विश्वास प्रकट करता है। द्वन्द्वात्मक पद्धति का अर्थ है कि निम्न स्तर से उच्च्व स्तर तक का विकास किसी समरसता पूर्ण पद्धति के द्वारा नहीं होता है। वरन् यह विकास "वस्तुओं तथा संघटना में निहित अन्तर्विरोधों के उद्घाटन के रूप में होता है, वह विरोधी प्रवृत्तियों के संघर्ष के रूप में होता है। ये विरोधी प्रवृत्तियाँ इन अन्तर्विरोधों के रूप में कार्य करती है।" अतः समाज का साम्यवाद के प्रति विकास किसी समझौते की नीति के द्वारा नहीं वरन् दो परस्पर विरोधी वर्गों के मध्य संघर्ष द्वारा ही होगा। प्रत्येक समाज में यह संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। "स्वतंत्र मानव एवं दास, कुलीन वर्ग एवं निम्न वर्ग, जमींदार एवं कृषक वर्ग, मालिक एवं कारीगर, एक शब्द में शोषक एवं शोषित एक दूसरे के निरन्तर विरोध में खड़े रहे हैं।"[48] समाज की जटिल व्यवस्था ने परस्पर विरोधी वर्गों को एवं उनके मध्य संघर्ष को जन्म दिया है।

---

47. Manifesto of the Communist Party, P. 40
48. Manifesto of the Communist Party, P. 40

वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (Theory of Class Struggle)

मार्क्सवाद द्वारा प्रस्तुत वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर साम्यवादियों की गहरी आस्था है। वर्ग संघर्ष को साम्यवादी सामाजिक विकास का आधार मानते है। पूँजीपति वर्ग एवं श्रमिक वर्ग के मध्य संघर्ष के परिणामस्वरूप सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति सफल होगी एवं एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी जिसमें उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त होगा, इन पर सामाजिक स्वामित्व की स्थापना होगी। वितरण प्रणाली पर सार्वजनिक नियंत्रण होगा।

एक साम्यवादी समाज में वितरण की प्रणाली होगी–"प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।" इसके लिये उत्पादन की शक्तियों का यथासम्भव पूर्णता की सीमा तक उपयोग होगा। सबके लाभ के लिये सहयोगी एवं सुनियोजित उत्पादन होगा। "साम्यवाद में व्यक्तित्व विशिष्ट के हित एवं समाज के सामान्य हित में अन्तर को समाप्त किया जायेगा।"(49) इस अन्तर को समाप्त करने के लिये निश्चित रूप से सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व का उन्मूलन आवश्यक होगा जिसके परिणामस्वरूप समाज में वर्ग विभाजन भी समाप्त होगा।

हिंसात्मक क्रांति (Violent Revolution)

साम्यवादियों के अनुसार वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने के लिये जो क्रान्ति होगी वह हिंसात्मक होगी क्योंकि शान्तिपूर्ण एवं वैधानिक साधनों द्वारा पूँजीवाद से समाजवाद की ओर अग्रसर होना एवं साम्यवाद की स्थापना सम्भव नहीं होगा। साम्यवादी पद्धति अपने आप में एक क्रान्तिकारी पद्धति है। जिसमें अव्यवस्था, तोड़फोड़, षडयंत्र, छल प्रपंच व हिंसा आदि के प्रयोग का समर्थन किया जाता है। यह हिंसात्मक क्रान्ति समाज में परिस्थिति के परिपक्व होने पर ही होगी जब श्रमिकों में क्रान्तिकारी चेतना जागृत होगी और समाज आर्थिक विकास के एक निश्चित बिन्दु तक पहुँच चुकेगा। मार्क्स के अनुसार "औद्योगिक दृष्टि से सर्वाधिक उन्नत समाजों में पहले साम्यवाद आयेगा और यह प्रकृति में अन्तर्राष्ट्रीय होगा।"(50)

अतः साम्यवाद केवल एक देश में क्रान्ति को सफल बनाने को ही अपना लक्ष्य नहीं मानता वरन् उसका लक्ष्य तो विश्वव्यापी क्रान्ति है। साम्यवादियों का तर्क है कि समाजवादी क्रान्ति की सफलता के लिये जो परिस्थितियाँ आवश्यक हैं वे विश्वव्यापी है। अतः साम्यवादी क्रान्ति भी विश्वव्यापी क्रान्ति का रूप लेगी। साम्यवाद का यथासम्भव बहुउद्देशीय प्रसार होगा।

धर्म का विरोध (Renunciation of Religion)

साम्यवाद एक धर्म विरोधी विचारधारा है। मार्क्स के अनुसार धर्म मानव सभ्यता एवं इतिहास के

---

49. Peter Singer, Marx, P. 60

50. Peter Singer, Marx, P. 60

प्राकृतिक विकास में बाधक है। मार्क्स का तर्क है कि सभी देश एवं समाज में शोषक वर्ग ने अपनी तानाशाही को बनाये रखने के लिये धर्म का प्रयोग किया है, धर्म का सहारा लेकर जनता को भ्रमित किया है। जनता ने जो धर्म पर अन्धविश्वास रखती आयी है, भाग्यवाद के नाम पर शोषण और उत्पीड़न को चुपचाप सहा है। इसलिये मार्क्स कहता है "धर्म जनता की अफीम है जिसको खाकर जनता ऊँघती रहती है।" अतः साम्यवाद धर्म निरपेक्ष नहीं वरन् धर्म विरोधी है।

प्रो. कोकर के अनुसार साम्यवादियों की यह नास्तिकता असंगत नहीं है क्योंकि वे सदैव ऐसे गौरव के लिये काम करते हैं। जो इस जगत में सम्भव है और ऐसा करने के लिये वे किसी परलौकिक सहायता पर निर्भर नहीं है। "अलौकिकता की इस पूर्ण अस्वीकृति के कारण ही साम्यवादियों को धर्म विरोधी कहा जा सकता है।[51]

दल का अधिनायकतंत्र (Dictatorship of Party)

साम्यवादी व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता है – दलगत कठोर अनुशासन एवं साम्यवादी दल का अधिनायकतंत्र। दल के समस्त सदस्य एवं कार्यकर्ता दल द्वारा निश्चित कार्यक्रम के अधीन होते है। वे दल के नेताओं के आदेशों का दृढ़ता से पालन करते हैं। दल के सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमों की आलोचना का भी कोई अधिकार उन्हें नहीं होता है। दल में उच्चकोटि के सैनिक अनुशासन का पालन होता है। यह दलगत कठोर अनुशासन शासन में भी पालित होता है। दल, सदस्य, दल के प्रतिनिधि, शासन के अधिकारी आदि सभी दल नेताओं आदेश के पूर्णतया अधीन होते हैं।

साम्यवादी शासन का संचालन शक्ति एवं बल के आधार पर करने में विश्वास है। इतना ही नहीं साम्यवादी शक्ति को सरकार का मुख्य लक्ष्य मानते हुये बल द्वारा दल की राजनैतिक सर्वोच्यता को कायम रखते है। इस रूप में साम्यवादी रूस के शासन को पश्चिमी देशों ने अप्रजातांत्रिक केन्द्रीभूत स्वेच्छाचारी शासन कहा। जहाँ साम्यवाद विरोधी विचारधारा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि का दमन किया जाता रहा एवं जनता के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर शासन एवं दल का कठोर नियंत्रण रहा।

साम्यवादी चिन्तन में ही जन्म एवं परिपालन (Birth and Bringing up in Communist Ideology)

साम्यवादी व्यवस्था में यद्यपि नागरिक के सर्वतोमुखी विकास का लक्ष्य सामने रहता है परन्तु इस बात को भी ध्यान में रखा जाता है कि लोगों के दिमाग में जन्म से ही साम्यवादी विचारधारा की जड़ें गहराई से जमा दी जाये एवं उनमें साम्यवादी सिद्धान्तों तथा व्यवहार के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न की जाये। "वे स्कूल में भी साम्यवाद की शिक्षा देते हैं .... वर्तमान एवं आने वाली पीढ़ी को रूस में साम्यवादी

---

51. Coker, Recent Political Thought, P. 110

सामाजिक व्यवस्था के आदर्श में प्रशिक्षित करने के लिये।"[52] नागरिकों की स्वतंत्रता, स्वच्छन्दता एवं उन्मुक्तता पर एक निश्चित सीमा रेखा खींच दी जाती है जिससे नागरिकों की समस्त प्रकार की गतिविधियाँ साम्यवादी चिन्तन की परिधि में ही सिमटी रहे एवं वे सदैव साम्यवाद के प्रशंसक बने रहे न कि विरोधी। यह भी दल के अधिनायकतंत्र से उत्पन्न स्थिति है।

पूँजीवाद का अन्त (End of Capitalism)

साम्यवाद का स्पष्ट अर्थ है पूँजीवाद का अन्त और समाजवाद की विजय। विजय को स्थायी बनाने के लिये सर्वहारा वर्ग का मुख्य दायित्व है शोषक पूँजीपति वर्ग को समाप्त करना और उनको फिर कभी सिर उठाने न देना। इस विषय में एंगिल्स का कथन है, "सबसे बढ़कर मार्क्स एक क्रान्तिकारी भी था। उसके जीवन का वास्तविक मिशन था पूँजीवादी समाज को उखाड़ फेंकने में और राज्य की उन संस्थाओं को समाप्त करने में जैसे भी हो अपना योगदान देना जिनकी वजह से यह (पूँजीवाद) अस्तित्व में आया, साथ ही आज के श्रमिकों को मुक्ति प्रदान करने में सहायता देना।"[53]

यह भी सर्वहारा या श्रमिकों का दायित्व है कि सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग में समाजवादी चेतना जागृत करना कि पूँजीवाद किस प्रकार उनका शोषण कर रहा है। उन्हें संगठित करना एवं साम्यवादी दल के नेतृत्व के अधीन साम्यवाद की स्थापना के लिये परिचालित करना। संक्रमण काल में उन्हें एकताबद्ध रखना एवं परिस्थितियों को श्रमजीवी वर्ग के हितों के अनुरूप बनाये रखना और इसके लिये उत्पादन के पूँजीवादी स्वरूप को जड़ से समाप्त करना।

राज्य का अन्त (Withering away of State)

साम्यवाद का अन्तिम लक्ष्य केवल सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की स्थापना करना नहीं है वरन् अन्तिम एवं वास्तविक लक्ष्य है साम्यवादी समाज की स्थापना द्वारा राज्य के अस्तित्व का अन्त किन्तु जैसा कि एंगिल्स ने कहा है–राज्य समाप्त नहीं किया जायेगा, वरन् स्वयं समाप्त हो जायेगा। यह प्रक्रिया धीमी होगी। उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति के स्थान पर समाजवादी पद्धति की स्थापना के परिणामस्वरूप समाज में वर्ग विभाजन समाप्त हो जायेगा और व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितों में संघर्ष भी समाप्त हो जायेगा। ऐसे में राज्य जैसी संस्था के बाह्य नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं होगी। अतः राज्य स्वयं ही विलुप्त हो जायेगा।

---

52. Coker, Recent Political Thought, P. 160
53. एंगिल्स, पीटर सिंगर की पुस्तक मार्क्स से उद्धृत, पृ. 59

साम्यवाद का क्रियान्वयन

(Implementation of Communism)

रूस विश्व का प्रथम देश था जहाँ साम्यवाद का अभ्युदय हुआ एवं उसका क्रियान्वयन। रूस के साम्यवादी दल के प्रमुख नेता लेनिन ने मार्क्सवाद के क्रियान्वयन के लिये मार्क्सवाद के मौलिक सिद्धान्तों में कुछ आवश्यक परिवर्तन किये; लेनिन के नेतृत्व में मार्क्स के पद चिन्हों पर चलते हुये रूस में समाजवादी आन्दोलन का विकास हुआ और साम्यवादी समाज अस्तित्व में आया। परन्तु 1917 में रूस में साम्यवाद की स्थापना से बहुत पहले 1871 में फ्रांस की राजधानी पेरिस में समाजवाद का पहला प्रयोग हुआ था और यह प्रयोग एवं विचारधारा को पहली चुनौती थी। यह 'पेरिस कम्यून' के नाम से जाना जाता है।

पेरिस कम्यून

(Paris Commune)

यहाँ पेरिस कम्यून का उल्लेख प्रासंगिक एवं वाछंनीय है। समाजवाद के सन्दर्भ में पेरिस कम्यून का विशेष महत्व है। क्योंकि पेरिस कम्यून दुनिया में समाजवाद का पहला प्रयोग था, जो 1871 में 18 मार्च से 30 मई तक पेरिस में कायम रहा। प्रशा के हाथों फ्रांस की पराजय के बाद वहाँ के श्रमिकों में जो चेतना एवं जागरूकता आयी उसके परिणामस्वरूप उन्होंने पेरिस शहर के प्रशासन को दो महीने के लिये अपने हाथों में ग्रहण कर लिया था। इसे पेरिस का विद्रोह भी कहा जाता है। पेरिस का विद्रोह वहाँ के मजदूरों का विद्रोह था।

1871 में फ्रांस और प्रशा के युद्ध की समाप्ति की शर्त के अनुसार पेरिस पर जर्मनी के अधिकार का पेरिस के श्रमिकों ने विरोध किया और जर्मन सैनिकों के साथ सहयोग करने से इन्कार कर दिया। 18 मार्च को फ्रांस की नयी सरकार ने जर्मनी की अनुमति से सेना के अस्त्र शस्त्रों पर अधिकार करना चाहा जिससे श्रमिकों को शस्त्र न मिल पायें। पेरिस के श्रमिकों ने सेना को शस्त्रों पर कब्जा करने से रोका परिणामस्वरूप पेरिस की सरकार ने युद्ध की घोषणा कर दी।[54] श्रमिक एवं विद्रोही सैनिक संगठित होने लगे।

26 मार्च, 1971 को श्रमिकों एवं विद्रोही सैनिकों द्वारा निर्मित म्यूनिसिपल काउन्सिल पेरिस कम्यून का निर्वाचन सम्पन्न हुआ जिसे जनता का भी समर्थन प्राप्त था। पेरिस के श्रमिकों को सम्पूर्ण फ्रांस का समर्थन मिला। इस प्रकार पेरिस में कामगारों की प्रथम सरकार की स्थापना हुयी। 26 मार्च के निर्वाचन

---

54. Fredrick Angels, www.marxisto.org/glossary/orgs/p/a.htm

के बाद 28 मार्च को पेरिस कम्यून की घोषणा हुयी।[55]

26 मार्च से 30 मई, 1871 की अवधि के शासन के दौरान पेरिस कम्यून ने अनेक प्रगतिशील एवं सुधारात्मक कदम उठाये। पेरिस के सक्षम नागरिकों को लेकर 'नेशनल गार्ड' के नाम से सशस्त्र सेना का गठन किया गया। कम्यून के सदस्यों के वेतन को निश्चित एवं सीमित किया गया। कम्यून ने एक आदेश द्वारा चर्च को राज्य से पृथक कर दिया एवं धार्मिक कार्यों में राज्य के अनुदान को समाप्त किया गया। 'नेशनल गार्ड' ने पेरिस सरकार की नृशंस दण्ड के प्रतीक गिलोटिन को सार्वजनिक रूप से जनता के सामने जला दिया। बन्द कारखानों को पहले के श्रमिकों द्वारा फिर से चालू कर दिया गया, श्रमिकों की रात्रिकालीन ड्यूटी खत्म कर दी गयी। कम्यून ने गिरवी की दुकानों को भी समाप्त कर दिया क्योंकि इन्हें श्रम के शोषण का स्वरूप माना गया।

इस प्रकार दो महीने की अल्पावधि में कम्यून ने अभूतपूर्व सफलतायें प्राप्त की। एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि पेरिस कम्यून में विदेशी भी सदस्य बनाये गये क्योंकि ''कम्यून का झंडा विश्व गणराज्य का झण्डा है।''[56] यह श्रमिक एकता का प्रतीक व्यवस्था थी।

परन्तु दो महीने का समय पूरा होने से पहले ही फ्रांसीसी सरकार की शक्तिशाली सेना ने पेरिस पर आक्रमण कर दिया लगभग 30,000 श्रमिकों की हत्या की गयी; हजारों कैद कर लिये गये और हजारों को देश निकाले की सजा दी गयी। पेरिस पर लगातार बमबारी की जाती रही, सेना पेरिस में प्रवेश कर गयी। ''नेशनल गार्ड'' उसका सामना नहीं कर पायी। केवल श्रमिक ही नहीं, स्त्रियों एवं बच्चों की भी आत्म हत्यायें हुयी। हजारों लोगों के सामूहिक एवं पाशविक दमन एवं हत्याओं के द्वारा लगभग सवा दो महीने की अल्पावधि के भीतर पेरिस कम्यून का अन्त हो गया।[57] शक्ति द्वारा श्रमिक आन्दोलन का दमन साम्यवाद को प्रारम्भिक चुनौती थी।

पेरिस कम्यून का महत्व बताते हुये मार्क्स ने 23 मई, 1871 को पहली इण्टरनेशनल में कहा था, ''कम्यून के सिद्धान्त अमिट थे..... ऐसे सिद्धान्त तब तक बार–बार उभरकर आते रहेंगे, जब तक श्रमिक वर्ग की मुक्ति नहीं हो जाती।'' कम्यून को उनकी सलाह थी कि उन्हें प्रान्तों एवं कृषक वर्ग का भी समर्थन प्राप्त करना चाहिये। उसने सामाजिक क्रान्ति की सफलता के लिये दो शर्तें रखीं – प्रथम, उत्पादक शक्तियाँ बहुत विकसित हों, द्वितीय, सर्वहारा वर्ग पर्याप्त रूप से तैयार हो। इन दोनों बातों के अभाव ने पेरिस कम्यून को असफल बनाया।

---

55. वही
56. वही
57. वही

विश्व इतिहास के इस प्रथम समाजवादी आन्दोलन पेरिस विद्रोह या पेरिस कम्यून का सम्बन्ध साम्यवादी इंटरनेशनल से जोड़ा जाता है। विचारकों का मत है कि कम्यून की कई समितियों में साम्यवादी इन्टरनेशनल के अनेक सदस्य सक्रिय थे। पेरिस विद्रोह में साम्यवादी इण्टरनेशनल का भी हाथ है।(58) परन्तु मार्क्स का कथन था ''उन मजदूरों में जो सबसे अधिक योग्य थे वे मजदूर इण्टरनेशनल के भी सदस्य थे। इसके बावजूद हमारा संगठन उस विद्रोह के लिये सीधे जिम्मेदार नहीं माना जायेगा।''(59)

भले ही पेरिस विद्रोह से इण्टरनेशनल का सीधा सम्पर्क न रहा हो फिर भी उस समय दुनिया को ऐसा ही प्रतीत हुआ कि पेरिस विद्रोह में कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल का हाथ है। लंदन से गुप्त आदेश पेरिस में भेजे गये और यहाँ तक कि धन भी भेजा गया। परन्तु मार्क्स का कथन है कि पेरिस में जो विद्रोह या षडयंत्र हुआ इण्टरनेशनल की उसमें कोई सक्रिय भूमिका नहीं रही। इंटरनेशनल की सहायता उसे जरूर मिली। मार्क्स के अनुसार–''इसका वास्तविक स्वरूप ऐसा है जिसमें स्थानीय क्रियाशीलता और स्वतंत्रता को सबसे अधिक महत्व मिलता है। वास्तव में इण्टरनेशनल मजदूर वर्ग की कोई सरकार है ही नहीं। यह नियंत्रण की शक्ति नहीं; एकता पैदा करने वाली संस्था मात्र है'' और इस एकता का उद्देश्य है ''राजनैतिक शक्ति पर विजय प्राप्त करके मजदूर वर्ग की आर्थिक मुक्ति लाना। उस राजनीतिक शक्ति का सामाजिक उद्देश्यों के लिये प्रयोग करना।''(60)

1871 में मार्क्स ने "The Civil War in France" लिखकर अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की जितनी लोकप्रियता उसने ''दास कैपिटल'' लिखकर भी नहीं प्राप्त की। मार्क्स की यह पुस्तक वास्तव में पेरिस कम्यून पर ही आधारित था और यह साम्यवादी इण्टरनेशनल के लिये लिखित उद्बोधन था। अतः यद्यपि साम्यवादी इण्टरनेशनल का पेरिस कम्यून से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था परन्तु सामान्य जन के मन में इसका जुड़ाव पेरिस कम्यून के साथ था।

मार्क्स के उद्बोधन में एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी क्रान्ति के बारे में संभावना प्रकट की गयी। श्रमिकों में इसके प्रति उत्साह जागृत हुआ परन्तु केवल लगभग दो महीने की सफलता के बाद जब पेरिस कम्यून का निर्दयता पूर्वक दमन कर दिया गया इण्टरनेशनल को भी इस घटना ने दुर्बल बनाया। तथापि इण्टरनेशनल को दिये गये उद्बोधन एवं उपरोक्त पुस्तक के कारण मार्क्स के विचार 1872 तक रूसी क्रांतिकारियों में काफी लोकप्रिय हो चुके थे। ''रूसी साम्यवादी 1871 के पेरिस कम्यून को समाजवाद के पक्ष में महान ऐतिहासिक महत्व देते हैं जिसे वे मार्क्स के राजनैतिक क्रान्ति के सिद्धान्त की एक जीवन्त

---

58. आर लेण्डर का कार्ल मार्क्स से साक्षात्कार, संकट के बावजूद, पृ. 36

59. वही, पृ. 36–37

60. वही, पृ. 37

अभिव्यक्ति मानते है।''[61]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मार्क्स ने पेरिस कम्यून से अपने दर्शन की क्रियान्विति में एक विस्तृत सीमा तक प्रेरणा ग्रहण की। लेनिन ने पेरिस कम्यून को सोवियत राज्य के लिये आदर्श माना। स्वयं मार्क्स के जीवनकाल में साम्यवाद का प्रयोग संभव नहीं हो सका। बाद में उसके शिष्य लेनिन ने सोवियत रूस में साम्यवाद के प्रथम प्रयोग को संभव बनाया। यह विश्व इतिहास की एक युगान्तकारी घटना थी।

साम्यवादी क्रान्ति की पृष्ठभूमि (The Background of Communist Revolution)

इस समय रूस में औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भिक स्तर पर थी और बुद्धिजीवी मध्यम वर्ग के नेतृत्व में जारशाही की निरंकुशता के विरूद्ध आन्दोलन का पौधा अंकुरित हो चुका था। सामान्य जनता जारशाही के अमानवीय अत्याचार और उत्पीड़न को अब सहते रहना नहीं चाह रही थी। 1887 में लेनिन के भाई अलेक्जाण्डर को जार की हत्या के प्रयास में शामिल होने के कारण प्राणदण्ड दिया गया। तभी लेनिन ने क्रान्तिकारी मार्क्सवाद का पथ चुना। उस समय के ''सर्वाधिक प्रभावशाली नेतागण अच्छी तरह समझते थे कि कोई समाजवादी रूस पर तब तक शासन नहीं कर सकते जब तक कि वे कृषकों को (जो रूस की जनसंख्या के 4/5 भाग थे) अपना साथी न बनाये।''[62]

अतः उन्होंने श्रमिको के साथ कृषक वर्ग को भी संगठित किया। जनवाद और समाजवाद के लिये संघर्ष का नेतृत्व करने वाली एक नवीन मार्क्सवादी समाजवादी दल का निर्माण किया। 1895 में रूस की तत्कालीन राजधानी सेन्ट पीट्स वर्ग में लेनिन के ही प्रयास में ''श्रमिक वर्ग की मुक्ति के लिये संघर्ष लीग'' की स्थापना की गयी। इस लीग की स्थापना के साथ ही रूस में सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन की शुरूआत हो गयी।

उस समय रूस में जार की सर्वोच्च शक्ति के अधीन शासन में अव्यवस्था और भ्रष्टाचार था। श्रमिक और किसानों की स्थिति दास के समान थी। सार्वजनिक शिक्षा या चिकित्सा आदि का अभाव था। दमित जनता का शोषण सीमा से परे था। जनता व श्रमिकों में असन्तोष की भावना विस्तृत पैमाने पर थी।

लेनिन ने मार्क्स एवं एंगिल्स द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्त को मजदूरों के संघर्ष के साथ और आर्थिक माँगों के लिये श्रमिकों के संघर्ष को जारशाही और पूँजीवादी शोषण के विरूद्ध संचालित राजनैतिक संघर्ष के साथ जोड़ना शुरू कर दिया।''[63] लेनिन ने इस लीग को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया। उसकी इच्छा थी इसे श्रमिक आन्दोलन का सशक्त माध्यम बनाया जाये। रूस के अन्य

---

61. Coker, Recent Political Thought, P. 165
62. वही, पृ. 147
63. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी : इतिहास के चरण; सोवियत भूमि पुस्तिका, पृ. 8

शहरों व जिलों में भी इसी प्रकार के लीग की स्थापना हुयी और हड़तालों एवं रैलियों के माध्यम से समाजवादी जनवादी आन्दोलन का रूस में विस्तार होता गया। "सेन्ट पीट्सवर्ग संघर्ष लीग का महत्व इस बात में निहित है कि वह ऐसी सच्चे अर्थों में क्रान्तिकारी पार्टी का भ्रूण रूप में थी जो मजदूर वर्ग आन्दोलन का अवलंब लेने वाली और उसका निर्देशन करने वाली हो।"[64]

इन्हीं दिनों लेनिन को जारशाही द्वारा उसकी क्रान्तिकारी गतिविधियों को कारण देश निकाले की सजा दे दी गयी और साइबेरिया भेज दिया गया। वहीं निर्वासन काल में लेनिन ने अपने जीवन के लक्ष्य को गम्भीर चिन्तन द्वारा स्पष्ट किया एवं विचारों को क्रमबद्ध रूप दिया। उसने "रूसी समाजवादी जनवादियों के कर्त्तव्य" नाम से पुस्तक लिखी जिसमें संघर्ष लीग के अनुभवों का सारांश था तथा रूसी सामाजिक जनवादियों के कार्यक्रम की रूपरेखा भी थी।

मार्च 1898 में रूस के मिंस्क नगर में एक गुप्त बैठक आयोजित हुयी जिसमें जी प्लेखानाव के नेतृत्व में विधिवत रूसी समाजवादी जनतांत्रिक (श्रमिक) दल की स्थापना हुयी एवं लेनिन की रचनाओं के आधार पर दल का कार्यक्रम एवं उसकी वैचारिक दिशा तय हुयी। दल के गठन की घोषणा जारी की गयी।

"इसने वर्ग संघर्ष, संगठित श्रमिकों द्वारा सत्ता पर विजय एवं राष्ट्रव्यापी राजनैतिक गतिविधि द्वारा समाजीकरण के परिचित कार्यक्रम को अपनाया।"[65] यह दल की प्रथम कांग्रेस थी जिसके द्वारा जारी घोषणा पत्र में कहा गया—"रूसी सर्वहारा स्वेच्छाचारी तन्त्र के जुए को उखाड़ फेंकेगा जिससे वह पूँजीवाद के खिलाफ और अधिक उत्साह से तब तक संघर्ष जारी रख सके जब तक कि समाजवाद की पूर्ण विजय न हो जाये।"[66]

प्रथम कांग्रेस के बाद भी दल एक अखिल रूसी संगठन के रूप में कार्य न कर सकी। उनके पास केन्द्रीकृत नेतृत्व और दृढ़ संगठन का अभाव था। जारशाही पुलिस ने दल के खिलाफ कार्यवाही करने में सफलता प्राप्त की और दल के अनेक प्रमुख कार्यकर्त्ताओं एवं केन्द्रीय समिति के दो सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया।

दल की दूसरी कांग्रेस के पूर्व ही दल में मतभेद भी उभरकर सामने आया। समाजवादी जनवादियों के मध्य एक अन्य विचारधारा सामने आयी जिसने श्रमिक आन्दोलन की नेतृत्वकारी शक्ति के रूप में एक मार्क्सवादी दल की आवश्यकता से इन्कार किया। लेनिन द्वारा स्थापित राजनैतिक समाचार पत्र "इस्क्रा" के द्वारा वैचारिक धरातल पर इस विचारधारा पर विजय प्राप्त करने में पूरे तीन वर्ष लग गये।

---

64. वही, पृ. 9
65. Coker, Recent Political Thought, P. 151
66. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी : इतिहास के चरण, पृ. 11

जुलाई–अगस्त 1903 में लेनिन ने दल की दूसरी कांग्रेस बुलाने में निर्णायक भूमिका निभायी। "लेनिन इसकी मार्गदर्शक आत्मा के समान थे।"[67]

कांग्रेस पहले ब्रुसेल्स और फिर लन्दन में सम्पन्न हुयी। दूसरी कांग्रेस की पूरी कार्यवाही के दौरान दल के संगठन, कार्यक्रम एवं नीति के बारे में गम्भीर विवाद सामने आये। एक गुट ने समाजवादी दल की व्यापक सदस्यता का पक्ष लिया और दलीय संगठन को कठोर बनाने का विरोध किया। अन्य गुट जो बहुसंख्यक था दल की सदस्यता को क्रान्तिकारी बनाना चाहता था तथा दलीय संगठन को कठोर एवं केन्द्रीभूत। लेनिन के नेतृत्व वाले दूसरे दल में अधिसंख्यक मार्क्सवादी थे। इतिहास में यह दल बोल्शेविक (बोलशिंस्त्वो या बहुमत) के नाम से और प्रथम दल मेंशेविक (मेशिंस्त्वो या अल्पमत) के नाम से अभिहित हुये।[68]

बोलशेविक एवं मेंशेविक के लक्ष्य समान थे क्योंकि दोनों ही जार वंश के निरंकुश शासन को समाप्त करना चाहते थे क़िन्तु दोनों में क्रांति के साधन, स्वरूप एवं पद्धति के विषय में गहन मतभेद थे। प्रथम, मार्तोव के नेतृत्व में मेंशेविक समाजवादी आन्दोलन को मार्क्स के विचारों के अनुसार चलाना चाहते थे। उन्हें क्रान्ति के विकास के मार्क्सवादी क्रम पर विश्वास था कि अन्तिम क्रान्तिकारी प्रहार से पूर्व सर्वहारा वर्ग के बहुमत का संगठन हो। जबकि लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक का विश्वास था कि श्रमिकों में समाजवादी चेतना उत्पन्न करने के लिये तथा सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के लिये एक अखिल रूसी दल का संगठन करना पहले अधिक जरूरी है।

द्वितीय : मेन्शेविक उस समय के रूस की परिस्थितियों को समाजवादी क्रान्ति के लिये परिपक्व नहीं मानते थे। उनका कहना था रूस में पूँजीवाद को और अधिक विकसित होने दिया जाये, जब तक एक मध्यमवर्गीय क्रान्ति हो और लोकतंत्रीय पूँजीवादी शासन की स्थापना हो। जबकि बोल्शेविक का मानना था कि समाजवाद की स्थापना के लिये यह जरूरी नहीं कि हर देश में एक विशेष प्रकार के क्रम की पुनरावृत्ति हो या पूँजीवादी शासन की स्थापना हो। उनका मध्यमवर्गीय क्रान्ति को भी समर्थन नहीं था।

तृतीय : मेन्शेविक किसानों को क्रान्ति में शामिल करने के पक्ष में नहीं थे। परन्तु बोल्शेविक श्रमिकों के साथ निर्धन कृषकों को भी शामिल करके क्रान्ति की प्रस्तुती करने के पक्ष में थे। जबकि मेन्शेविक भूमि के राष्ट्रीयकरण के पक्षपाती थे और कृषकों के स्वामित्व के विरोधी थे। बोल्शेविक बड़े–बड़े जमीदारों की जमीन लेकर कृषकों में उन्हें बाँट देने की नीति के समर्थक थे।

लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों ने मेन्शेविकों की विचारधारा के विरूद्ध दृढ़निष्ठ संघर्ष चलाया।

---

67. Coker, Recent Political Thought, P. 13

68. वही, पृ. 15

यहीं से मार्क्सवादी राजनैतिक चिन्तन की एक (नयी) धारा के रूप में बोल्शेविकवाद का जन्म हुआ। "बोल्शेविकों ने मुख्य रूप से औद्योगिक मजदूरों का सहयोग लेकर साथ ही गरीब किसानों के समर्थन से जल्दी ही एक क्रान्ति के लिये तुरन्त तैयारी करने का आह्वान किया।"[69]

बोल्शेविकवाद के अनुसार क्रान्ति को सफल बनाने के लिये आवश्यक है कि एक छोटा, सुसंगठित और प्रभावशाली संगठन बनाया जाये जो श्रमिकों और कृषकों को संगठित करें, उनके संगठनों के साथ मिलकर कार्य करें, कठोर एवं गोपनीय नियमों का पालन करें साथ ही विपुल जन समूह को साथ लेकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़े। व्यवहार में लेनिन ने इन्हीं सूत्रों के आधार पर क्रान्ति को आगे बढ़ाया। रूसी समाजवादी प्रजातांत्रिक (श्रमिक) दल की स्थापना की घोषणा के साथ दल के संगठन, स्वरूप एवं कार्यक्रम के नियम भी स्वीकृत किये गये।

1905 की रूसी क्रान्ति

(Russian Revolution of 1905)

जारशाही की स्वेच्छाचारिता एवं दमनकारी नीतियों पर 1904 से खुला प्रहार प्रारम्भ हुआ। लेनिन के नेतृत्व में रूस में प्रथम समाजवादी क्रान्ति विकसित हो रही थी। साथ में पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति भी विकास पर था। 1905 में यह चरम उत्कर्ष पर थी। स्थान–स्थान पर श्रमिकों की सभा एवं जुलूस आयोजित होने लगी। श्रमिक वर्ग की अभूतपूर्व पैमाने पर हड़तालें होने लगी; कृषक वर्ग ने जमींदारों की अतिरिक्त भूमि पर कब्जा करने के लिये सक्रिय संघर्ष छेड़ दिया।

युवाओं को क्रान्ति की पद्धति में प्रशिक्षित करने के लिये तथा श्रमिकों एवं कृषकों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिये गुप्त समितियों का गठन किया गया। 1904–05 के जापान के साथ युद्ध में रूस की पराजय से भी जारशाही की दुर्बलता सामने आयी। सभी वर्ग के लोग उसके खिलाफ आगे आ चुके थे। कारखानों व रेलवे में हड़ताल, विशाल प्रदर्शन, कृषकों के विद्रोह, सेना में असन्तोष एवं राजनैतिक हत्या की घटनाओं से स्थिति बिगड़ती गयी। एक ओर क्रान्तिकारी संघर्ष देश में प्रबल होता जा रहा था और दूसरी ओर जारशाही द्वारा दमन भी।

रविवार, 9 जनवरी का दिन 1905 की क्रान्ति के लिये एक महत्वपूर्ण दिन था। इस दिन सेंट पीट्सबर्ग में एक विशाल शान्तिपूर्ण जुलूस आयोजित हुआ। जुलूस पर गोलाबारी करके जारशाही के सैनिकों ने उसका कत्लेआम कर डाला।[70] जिसकी गूँजें पूरे देश में फैल गयी। जनता ने इस दिन को "खूनी रविवार" कहा। इसी प्रकार कई रैलियों को पुलिस ने कोड़ों के प्रहार एवं गोलियों की बौछार से तितर–बितर

---

69. Coker, Recent Political Thought, P. 151
70. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी : इतिहास के चरण; सोवियत भूमि पुस्तिका, पृ. 14

किया जिनमें मॉस्को की अकवेरियम गार्गेन्स की रैली शामिल थी। जारशाही के कठोर दमन के बावजूद श्रमिक वर्ग ने 1905 में निरन्तर सशस्त्र संघर्ष को जारी रखा और क्रान्ति की राह पर डटे रहे। कुछ स्थानों पर सैनिक एवं नाविकों ने भी विद्रोह में साथ दिया। क्रान्तिकारी संघर्ष में भाग लेने वालों में जीवित लोगों एवं सैनिकों को देश निकाले की सजा दी गयी।

मेंशेविक जो अभी भी औपचारिक रूप से दल के भीतर थे, श्रमिक वर्ग पर आत्म समर्पण कर देने के लिये दबाव डाल रहे थे। जबकि शासन के कुछ उदारपंथी कुछ औपचारिक सुधार लाने के नाम से क्रान्ति को समाप्त करने की कोशिश कर रहे थे। दल के तृतीय कांग्रेस (लंदन) में अप्रैल 1905 में मेंशेविकों ने भाग नहीं लिया एवं बोल्शेविकों ने जार के स्वेच्छाचारी तन्त्र को उखाड़ फेंकने के लिये सम्पूर्ण जनता को सशस्त्र संघर्ष के लिये संगठित करने एवं संघर्ष को सफल बनाने का फैसला किया। संघर्ष का लक्ष्य सर्वहारा वर्ग एवं कृषकों के क्रान्तिकारी जनवादी अधिनायकतंत्र की स्थापना करना था। ये ही तृतीय कांग्रेस के फैसलों के आधार थे।(71) 1905 की यह असफल क्रान्ति साम्यवाद की दूसरी चुनौती थी।

यद्यपि 1905 की क्रान्ति पूर्णतया सफल नहीं हुयी। 1905 की क्रान्ति के विकसित होने के दौरान कुछ बुनकरों ने श्रमिकों के प्रतिनिधियों की एक सोवियत का चुनाव कर लिया। यह श्रमिकों के प्रतिनिधियों की प्रथम सोवियत थी और भावी सोवियतों की बीज रूप में थी। यह 1905 की क्रान्ति की एक प्रमुख उपलब्धि थी।

1905 की क्रान्ति की दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी जारशाही द्वारा जारी घोषणा पत्र। 1905 की क्रान्ति के दौरान देश में संवैधानिक शासन की माँग प्रबल हुयी। परिणामस्वरूप तत्कालीन शासक निकोलस द्वितीय ने एक घोषणापत्र जारी की जिसके द्वारा एक व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी। जिसे ड्यूमा कहा गया। ड्यूमा का निर्वाचन व्यापक मताधिकार के आधार पर होना था। आशिंक सुधारों की योजना में जनता की भाषा, धर्म एवं अन्य स्वतंत्रताओं की भी घोषणा की गयी। परन्तु व्यवहार में जार की शक्ति को कम करने के स्थान पर ड्यूमा जार की कठपुतली बनकर रह गयी।

फिर भी प्रथम ड्यूमा में उदारवादियों को बहुमत मिला था एवं ड्यूमा ने अनेक ऐसे काम किये जो जार समर्थक प्रशासक को पसन्द न था जैसे बड़े जमीदारों की भूमि का विभाजन, मताधिकार का विस्तार, राजनैतिक कैदियों का क्षमादान आदि। सरकार ने प्रथम ड्यूमा का विघटन करके द्वितीय ड्यूमा के चुनाव की घोषणा की। वामपंथी विचारधारा के दलों को अवैध घोषित कर दिया गया। द्वितीय ड्यूमा के कार्यों को भी प्रशासन ने पसन्द नहीं किया। 1907 के जून से मार्च तक वह अप्रभावी ही रहा। जार ने इसे भी विघटित कर दिया। 1907 से 1912 के मध्य तृतीय ड्यूमा ने अपने समय में कुछ कार्य करने में सफलता

---

71. वही, पृ. 17

प्राप्त की।

अप्रैल 1906 में जब दल के चौथे कांग्रेस का आयोजन हुआ रूस में 1905 की क्रान्ति अपने उतार पर आ चुकी थी। इस समय तक लेनिन बोल्शविकों का सबसे प्रमुख नेता का स्थान ले चुका था। उनकी गतिविधियों का निर्देशन एवं नीतियों का निर्माण लेनिन के नेतृत्व में ही होता रहा। चतुर्थ कांग्रेस में लेनिन ने यह निर्णय लिया कि क्रान्ति में जनता की विजय तभी हो सकती है जब श्रमिकों एवं कृषकों के मध्य मैत्री हो क्योंकि उस समय रूस की 80 प्रतिशत आबादी कृषकों की थी।

चतुर्थ कांग्रेस में लेनिन द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम का लक्ष्य था सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था का गहराई से प्रजातंत्रीकरण किया जाये। सम्पूर्ण भू–सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करके क्रान्तिकारी ढंग से सामन्तवादी भू–स्वामित्व की व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाये। लेनिन चाहता था कि पहले पूँजीवादी क्रान्ति सम्पन्न हो और उसके तुरन्त बाद यह विकसित होकर समाजवादी क्रान्ति का रूप ले लें।[72] कांग्रेस मेंशेविकों ने इस पर प्रतिक्रियावादी रवैया अपनाया।

मई, 1907 का कांग्रेस अन्तिम था जिसमें मेंशेविकों ने भाग लिया। इसके बाद मेंशेविकों ने अन्ततोगत्वा क्रान्तिवाद से खिसक कर सुधारवाद का रास्ता अपनाया। क्योंकि इस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि क्रान्ति में 1905 से लेकर 1907 तक की घटनाओं में मुख्य प्रेरक शक्ति बोल्शेविक की रही है और आगे भी क्रान्ति पर उनका ही वर्चस्व होना चाहिये। इस बात पर जोर दिया गया कि प्रति क्रान्तिकारी उदारवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाया जाये एवं निम्न पूँजीवादी दलों को सर्वहारा वर्ग के भिन्न वर्ग के रूप में जारशाही के विरुद्ध संघर्ष में यथासम्भव शामिल किया जाये। इस अवधि में लेनिन अधिकांशतया रूस के बाहर ही रहा और बोल्शेविकों को ड्यूमा के कार्यों के अनुभव की दिशा में ढालने का प्रयास करता रहा।

1917 की मार्च क्रान्ति

(March Revolution of 1917)

1907 से 1910 के मध्य क्रान्तिकारी शक्तियाँ प्रबल हो रही थी। रूसी समाजवादी जनतांत्रिक दल के पाँचवे कांग्रेस में जारशाही के विरुद्ध घनघोर प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर हुयी। 1910 से 1914 के मध्य दल के छठे कांग्रेस के समय तक देश की परिस्थितियाँ ऐसी बन चुकी थी जिसमें सशस्त्र संघर्ष के द्वारा ही केवल सत्ता पर अधिकार प्राप्त करना सम्भव था। इस कांग्रेस में अवसरवादियों की पूर्ण उपेक्षा करके समाजवादी क्रान्ति को सफल बनाने के लक्ष्य को ही पुनः निश्चित किया गया।

इस समय रूस में उसी प्रकार की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति थी जैसी फ्रांस में 1789 में सम्पन्न फ्रांसीसी क्रान्ति के समय थी। जनता का जीवन स्तर इतना अधिक निम्न था कि स्वास्थ्य,

72. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी : इतिहास के चरण; सोवियत भूमि पुस्तिका, पृ. 14

स्वच्छता या शिक्षा की तो कोई व्यवस्था ही नहीं थी और जनता भुखमरी के कगार पर थी। रूस की आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ योरोप के अन्य देशों की तुलना में काफी पिछड़ी हुयी थी। जहाँ योरोप के अधिकांश देशों में प्रजातंत्रीय संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी। रूस में जार वंश का निरंकुशतंत्र अभी भी विद्यमान था। "बीसवीं शताब्दी में रूस .... तुलनात्मक रूप से अपनी राजनैतिक एवं सामाजिक नीतियों में गैर जागरूक और अमानवीय ही बना रहा।"(73)

1910 से रूस में क्रान्तिकारी घटनायें बहुत तीव्र गति से घटती गयी। यद्यपि इस दौरान आन्दोलन पूर्णतया असंगठित ही रहा। 1914 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो चुका था और रूस की जनता की गिरी हुई दशा एवं देश की आन्तरिक स्थिति की यही माँग थी कि रूस युद्ध से अलग रहे। किन्तु रूस ने ब्रिटेन और फ्रांस की ओर से युद्ध में प्रवेश कर लिया। युद्ध के दौरान देश की स्थिति और तेजी से बिगड़ती चली गयी। जार शाही के महत्वपूर्ण अधिकारी युद्ध में व्यस्त हो गये और रूस में शासन की बागडोर रानी जारीना के हाथों आ गयी। जारीना का मुख्य सलाहकार था रासपुटीन जिसके गलत सलाह में आकर रानी ने अपने निकट के कुछ विश्वासी मंत्रियों को पद से हटा दिया। इसके परिणामस्वरूप जार शासन के पुराने समर्थक भी रानी का विरोध करने लगे। इस प्रकार जारी शाही युद्ध के दौरान एक ओर अत्यन्त निर्बल हो गयी दूसरी और युद्ध में जर्मनी की सेनाओं ने रूस को पराजित कर दिया।

रूस की आन्तरिक स्थिति दिन पर दिन अव्यवस्थित होती जा रही थी। देश में श्रमिकों द्वारा हड़ताले और क्रान्तिकारियों द्वारा लूटमार, तोडफोड़ एवं हत्यायें रोज़मर्रा की घटनायें होती जा रही थी। क्रान्तिकारियों की गतिविधियों को रोकने में जार की पुलिस पूर्णतया असफल रही। जनता का विश्वास जार के स्वेच्छाचारी शासन पर से उठ चुका था। शासन को जनतन्त्रीय रूप देने के लिये माँगे बढ़ती गयी। किन्तु निरंकुश जार ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। "व्यवहारिक रूप से इस तथ्य से सभी विचारक सहमत हैं कि जारशाही के पतन का मुख्य कारण था इसका अपना निकम्मापन।"(74)

रूसी समाजवादी जनवादी दल के दोनों ही गुटों ने रूस के युद्ध में प्रवेश का विरोध किया था एवं शासन के उदारवादी लोग भी अब उसकी स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध उठ खड़े हुये। फिर भी निरंकुश शासन अन्यायपूर्ण आदेश जारी करता रहा। उसने श्रमिकों से हड़ताल समाप्त करने की अपील की तथा क्रान्तिकारियों से घर वापस जाने के लिये कहा। तत्कालीन ड्यूमा जो निर्बल होने के कारण स्वयं शासन चलाने में असमर्थ थी, ने भी जार शाही का तीव्र विरोध किया तथा मार्च 1917 में ड्यूमा के दबाव पर ही जार शासक निकोलस द्वितीय ने सिंहासन छोड़ दिया। वह अपनी सुरक्षा देखते हुये परिवार सहित पीट्रोग्रेड

---

73. Coker, Recent Political Thought, P. 153

74. वही, पृ. 155

छोड़कर भागा। किन्तु क्रान्तिकारियों ने उनके परिवार के समस्त सदस्यों की हत्या कर दी।

शासन के उदारवादी एवं मेंशेविक ने मिलकर एक अस्थायी सरकार का निर्माण किया। अलेकजन्डर केरेन्सकी को प्रधानमंत्री बनाया गया। परन्तु ड्यूमा संवैधानिक सरकार की स्थापना करने में असमर्थ रही। यह व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थी। रूसी समाजवादी प्रजातांत्रिक दल का सपना अभी भी अधूरा था। रूस की जनता केरेन्सकी के नेतृत्व में गठित सरकार से संतुष्ट नहीं थी। मार्च 1917 में घटित क्रान्तिकारी गतिविधियों को 1917 की अक्टूबर क्रान्ति का प्रथम चरण कहा जा सकता है। कुछ विचारकों के अनुसार "मार्च 1917 की क्रान्ति किसी एक वर्ग या राजनैतिक दल का कार्य नहीं था, न इसके कोई विशिष्ट नेता थे और न ही कोई निश्चित कार्यक्रम या लक्ष्य।"[75] क्योंकि मेंशेविक, बोल्शेविक, सामाजिक क्रान्तिकारी एवं संवैधानिक प्रजातांत्रिक सभी ने इसमें विभिन्न रूपों में विविध भूमिकायें निभायीं।

1917 की अक्टूबर क्रान्ति

(October Revolution of 1917)

लेनिन अभी स्विटजरलैण्ड में था। अप्रैल 1917 में वह रूस वापस आ गया। उसने अपनी सुप्रसिद्ध "अप्रैल प्रस्थापनाओं" में बोल्शेविकों को लेकर समाजवादी क्रान्ति का नारा दिया। उसने पेट्रोग्राड में श्रमिकों, नाविकों एवं सैनिकों की एक विशाल सभा का उद्बोधन किया अस्थायी सरकार को केवल मेंशेविकों और समाजवादी क्रान्तिकारियों का तथा शहरी एवं ग्रामीण पूँजीपतियों की पार्टी के सदस्यों का समर्थन प्राप्त था। वे उस समय श्रमिकों और कृषकों की सत्ता की स्थापना का विरोध कर रहे थे। लेनिन ने घोषणा की कि यद्यपि इससमय रूस पूर्ण समाजवाद की स्थापना के लिये आर्थिक दृष्टि से तैयार नहीं है किन्तु राजनैतिक रूप से श्रमजीवियों को सत्ता हस्तान्तरित करने के लिये तैयार है। उसका यह भी कहना था कि इस प्रकार की क्रान्ति के लिये 'सोवियतें' ही सबसे ज्यादा उपयोगी अंग हैं।

उस समय रूस में जनता के द्वारा स्थापित सोवियतें अस्तित्व में आ ही चुकी थी। अतः इनके माध्यम से पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति के समाजवादी क्रान्ति में विकसित होने के सुयोग प्राप्त हो गये जो ऐतिहासिक दृष्टि से अद्वितीय थी। अस्थायी सरकार ने उस समय रूस के अधिक अनुदारवादी नेताओं का समर्थन किया और युद्ध में भाग लेना जारी रखा। अस्थायी सरकार एवं देश के प्रमुख संगठनों के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार यद्यपि शासन की सत्ता अस्थायी सरकार के हाथों में रही, जनता के पहल से गठित सोवियत या पेट्रोग्राड काउन्सिल राजधानी की क्रान्तिकारी शक्तिओं अर्थात् श्रमिकों, कृषकों एवं सैनिकों की प्रवक्ता बनी गयी। सोवियत की सहमति के बाद ही सरकार के आदेश जनता के लिये लागू होते थे या उनका पालन होता था। अस्थायी सरकार ने एक सीमा तक स्थिति को कुछ संभाला था, परन्तु अभी

75. वही, पृ. 154

भी अनेक दिक्कतें थीं। फिर भी 1917 के अप्रैल से अक्टूबर तक सत्ता इसके हाथ में ही रही।

अस्थायी सरकार एवं सोवियत पेट्रोग्राड के मध्य मई 1917 में फिर से एक कामचलाऊ समझौता हुआ। समझौते के अनुसार सरकार ने देश की विदेशी एवं आन्तरिक मामलों में सोवियत द्वारा निर्धारित नीतियों पर चलने का एवं सोवियत ने बदले में सरकार को समर्थन देने का वचन दिया। इधर अन्य सोवियतों में मेंशेविक एवं सामाजिक क्रान्तिवादी कमजोर पड़ने लगे थे एवं इनका नेतृत्व बोलशेविक ग्रहण करते जा रहे थे। सितम्बर 1917 में बोल्शेविक ने पेट्रोग्राड सोवियत में विशाल बहुमत प्राप्त कर लिया एवं मास्को सोवियत में भी सामान्य बहुमत उनके ही पास आ गया। अस्थायी सरकार के प्रधानमंत्री ए. एफ. केरेन्सकी पर एक ओर सैनिक निरंकुश तंत्र का दबाव था और दूसरी ओर रूसी समाजवादी प्रजातंत्रीय दल का या बोल्शेविक का।

अन्ततः अक्टूबर के अन्त में अस्थायी सरकार टूट गयी और प्रधानमंत्री कैरेन्सकी ने शासन की सत्ता देश की श्रम शक्ति का सौंप दी। लेनिन के नेतृत्व ने बोल्शेविक ने सत्ता अपने हाथ में ले ली और प्रत्यक्ष कार्यवाही का आदेश दिया। सरकारी कार्यालयों, रेलवे स्टेशनों, डाक तार घरों आदि पर रूसी समाजवादी दल ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। अस्थायी सरकार के सदस्यों को बन्दी बना लिया तथा 25 अक्टूबर, 1917 को पेट्रोग्राड के श्रमिकों एवं क्रान्तिकारी सैनिकों ने दुर्ग व राज प्रासाद पर चढ़ाई कर दी।

26 अक्टूबर, 1917 को अस्थाई सरकार को पूर्णतया पदच्युत करके लेनिन के नेतृत्व में रूसी समाजवादी जनवादी दल के बोल्शेविकों ने शासन सत्ता अपने हाथों में ग्रहण कर लिया। इसके साथ ही लेनिन ने रूस की समस्त सोवियतों की दूसरी कांग्रेस आमंत्रित की। सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस में देश की सम्पूर्ण सत्ता, श्रमिकों, सैनिकों और कृषकों के प्रतिनिधियों की सोवियतों को हस्तान्तरित करने की उद्घोषणा की गयी। इस कांग्रेस पर बोल्शेविकों का पूर्ण अधिपत्य था।

द्वितीय अखिल रूसी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत दो मुख्य आज्ञप्तियाँ जारी की गयी जो सोवियत सत्ता की सर्वप्रथम आज्ञप्तियाँ थी। प्रथम, शान्ति सम्बन्धी आज्ञप्ति जिसमें यह प्रस्तावित किया गया कि युद्ध में संलग्न देश तुरन्त युद्ध विराम सन्धि करें जिसमें न कोई देश किसी की जमीन का सम्मेलन करे, न कोई खिराज–वसूली हो।[76] द्वितीय : भूमि सम्बन्धी आज्ञप्ति जिसके तहत भूस्वामी बिना किसी मुआवजे के अपनी भू सम्पत्ति से वंचित कर दिये गये और सम्पूर्ण भूमि राज्य की सम्पत्ति अर्थात् सम्पूर्ण जनता की सम्पत्ति घोषित कर दी गयी और उसे निःशुल्क उपयोग के लिये सारी मेहनतकश जनता को सौंप दिया गया।[77]

---

76. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी : इतिहास के चरण, पृ. 25

77. वही, पृ. 25

द्वितीय अखिल रूसी कांग्रेस द्वारा जन कामिसारों की एक कौंसिल के निर्माण पर भी निर्णय लिया गया। जन कामीसार परिषद (Council of People's Commissars) का अध्यक्ष लेनिन को बनाया गया। इस प्रकार लेनिन के नेतृत्व में संसार की प्रथम मजदूरों और किसानों की सरकार अस्तित्व में आयी।[78] जारशाही का स्थान साम्यवादी शासन ने ले लिया। विश्व के इतिहास में यह एक क्रान्तिकारी और अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी। 26 अक्टूबर, 1917 से विश्व की प्रथम साम्यवादी सरकार ने काम शुरू कर दिया। नयी सरकार की जन कामीसार परिषद में ट्रट्स्की वैदेशिक मामलों का कामीसार था, रिकव, आन्तरिक मामलों का कामीसार, स्टालिन, राष्ट्रीयताओं का कामीसार और ल्यूनाचारस्की, शिक्षा का कामीसार।[79]

26 अक्टूबर, 1917 को सफल यह क्रान्ति वास्तव में नवम्बर, 1917 में घटित हुयी और रूस की प्रथम साम्यवादी सरकार 8 नवम्बर, 1917 को अस्तित्व में आयी। किन्तु रूसी कैलेण्डर की त्रुटि के कारण इसे अक्टूबर क्रान्ति कहा जाता है।

1917 की क्रान्ति की सफलता बोल्शेविकों की विजय थी, श्रमिकों, कृषकों एवं सैनिकों का आह्वान संगठित करने की सफलता थी। लेनिन के योग्य एवं कुशल नेतृत्व में मार्क्सवादी सिद्धान्तों को व्यवहारिक आवश्यकता के अनुरूप ढालकर यह सफलता प्राप्त की गयी। क्रान्ति का विशिष्ट नेता लेनिन अपनी मृत्यु तक सत्ता में बना रहा। क्रान्ति के बाद रूस की नयी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हुये एवं रूस ने तेजी से प्रगति की। देश में नया समाजवादी संविधान बना और 'रूसी समाजवादी संघीय सोवियत गणराज्य' के नाम से यह देश अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक प्रचण्ड शक्ति बन गयी। किसी लेखक ने ठीक ही कहा है कि लेनिन ने "विश्व इतिहास की धारा को मोड़ने में नेपोलियन के बाद किसी भी राजनैतिक व्यक्तित्व से अधिक कार्य किया है।"[80]

✦✦✦

---

78. वही, पृ. 26

79. Coker, Recent Political Thought, P. 155

80. William H. Chainberlian, Soviet Russia : A living Record and A History, P. 83

द्वितीय अध्याय

वैचारिक संघर्ष के विविध आयाम

- ✦ अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति बनाम एक देश में क्रान्ति
- ✦ सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद बनाम एक दलीय व्यवस्था
- ✦ दलीय अधिनायकवाद बनाम व्यक्तिगत अधिनायकवाद
- ✦ उत्पादन के साधनों का स्वामित्व : एक विवाद
- ✦ क्रान्ति की निरन्तरता व इसकी प्रकृति
- ✦ राज्य का विलीनीकरण
- ✦ अन्तर्राष्ट्रीयता बनाम राष्ट्रीयता एवं उपराष्ट्रीयता
- ✦ पूँजीवाद का विरोध बनाम शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व

द्वितीय अध्याय

वैचारिक संघर्ष के विविध आयाम

(Different Dimensions of Ideological struggle)

मार्क्सवाद से लेकर इस विचारधारा की जो यात्रा साम्यवाद तक और 1990 में साम्यवाद के पतन तक हुयी वह विविधताओं से परिपूर्ण है और इन विविधताओं में वैचारिक संघर्ष के विविध आयाम दृष्टि गोचर होते है। वैचारिक संघर्ष का मूल कारण विचारात्मक त्रुटियाँ ही होती है। "साम्यवादी बिखराव को केवल ढाँचागत त्रुटियों का परिणाम मानने और दार्शनिक और विचारात्मक कमजोरियों की अनदेखी करने की प्रवृत्ति आज भी कई लोगों में दिखाई देती है। किन्तु यह हठवादिता है क्योंकि ढाँचा विचार का ही मूर्तरूप होता है।"(1)

मार्क्स की मृत्यु के उपरान्त उसके अनुयायियों में उसके विचारों एवं सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अनेक मतभेद सामने आये। इन मतभेदों के कारण कुछ अन्य विचारधारायें भी सामने आयी। जैसे संशोधनवाद (प्रारम्भिक), परम्परागत मार्क्सवाद, लेनिनवाद, स्टेलिनवाद, खुश्चेववाद एवं माओवाद तथा पुनः गोर्बाचोव का नया संशोधनवाद। सभी ने मार्क्सवाद की अपने अपने ढंग से व्याख्या की, उसमें संशोधन और परिवर्तन किये जाते रहे। जिससे मार्क्सवाद के कई मूल सिद्धान्त ही पूर्णतया बदल गये। "विचारों के इतिहास में यह असाधारण नहीं है कि मौलिक सिद्धान्तों पर टिप्पणी आरोपित की जाती है, टिप्पणियाँ कभी कभी विचारधारा के मौलिक भाग को पहचान से परे बदल देती है। यह मार्क्सवाद के बारे में भी सत्य है।"(2)

संशोधनवादियों में प्रमुख एडवर्ड बर्न्सटाइन का कहना था कि परिवर्तित परिस्थितिओं के अनुसार मार्क्सवाद में संशोधन करना आवश्यक है। क्योंकि मार्क्स की अनेक भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध हुयी है। जैसे दुनिया में पूँजीवाद का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है। जबकि मार्क्स के अनुसार उसका अन्त निकट है। इसी प्रकार पूँजीवाद के विकास के साथ–साथ मजदूरों की दशा में सुधार आ रहा है न कि उनकी दशा बिगड़ रही है। वर्न्सटाइन पर उस समय संशोधनवादी होने का आरोप लगाया गया।

कार्ल कॉट्स्की चूँकि मार्क्सवाद के आधारभूत सिद्धान्तों के समर्थक थे। अतः उन्हें परम्परागत मार्क्सवादी कहा गया। उन्होंने बर्न्सटाइन के संशोधनों का विरोध किया। उसे मार्क्सवाद की सत्यता पर अधिक विश्वास था।

---

1. मस्तराम कपूर, लेखक की ओर से साम्यवादी विश्व का विघटन और समाजवाद का भविष्य, पृ. 5
2. C. L. Wayper, Political Thought, P. 217

मार्क्सवादी विचारधारा में मार्क्स के ही परम शिष्य एवं महान राजनैतिक चिन्तक लेनिन एवं बाद में स्टेलिन के द्वारा जो संशोधन एवं परिवर्तन किये गये वे ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं चर्चित है।

"नवीन शासन के प्रारम्भिक कुछ वर्षों के दौरान एक ओर ट्राटस्की व लेनिन के मध्य एवं दूसरी ओर मार्क्स की मृत्यु के बाद समाजवाद के कट्टर समर्थक व प्रमुख सिद्धान्तवादी क्रॉटस्की के मध्य घोर मतभेद सामने आया; मुख्य विवाद का विषय यह नहीं था कि साम्यवादी कार्यक्रम न्यायपूर्ण या उचित है, वरन् यह था कि यह मार्क्स के विचारों को क्रियान्वित करने के लिये उचित है या नहीं।"[3] पुनः संशोधनवादी युग के अन्तर्गत ख्रुश्चेव का उदारवादी साम्यवाद, कोसीजिन एवं ब्रेझनेव के संशोधनवाद तथा गोर्बाचोव के सुधारवाद जिसके कारण सोवियत संघ साम्यवादी व्यवस्था का अन्त हुआ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहा। वैचारिक संघर्ष के विविध आयामों की चर्चा विशेषकर इन्हीं सन्दर्भों में की जायेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति बनाम एक देश में क्रान्ति

(International Revolution Versus Revolution In One Country)

साम्यवाद का एक प्रमुख सिद्धान्त है कि समाजवादी क्रान्ति के लिये उपर्युक्त परिस्थितियाँ केवल रूस या किसी एक देश तक सीमित नहीं है वरन् परिस्थितियाँ विश्वव्यापी है। साम्यवादी क्रान्ति का स्वरूप एक देशीय नहीं है। इसका स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय है और साम्यवाद का बहुउद्देशीय प्रसार इसमें आवश्यक है। मार्क्स के अनुसार "यद्यपि पूँजीपतियों के साथ श्रमिकों का संघर्ष पहले एक राष्ट्रीय संघर्ष है परन्तु सार रूप में (In substance) नहीं।"[4] यद्यपि प्रत्येक देश के श्रमिकों को पहले अपने ही देश में पूँजीपतियों के विरुद्ध क्रान्ति करनी होगी पर केवल एक देश में क्रान्ति को सफल बनाना इसका लक्ष्य नहीं है इसका लक्ष्य तो विश्वव्यापी क्रान्ति है। मार्क्स के अनुसार साम्यवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है। अतः सम्पूर्ण विश्व में समाजवादी क्रान्ति को सफल बनाने के लिये जरूरी है कि दुनिया के सम्पूर्ण श्रमिकों को पूँजीवाद के विरूद्ध संगठित होना होगा एवं यह भी जरूरी है कि क्रान्ति एक साथ बहुसंख्यक पूँजीवादी देशों में सम्पन्न हो। किसी दशा में पूँजीवाद के चरम विकसित स्थिति आने के बाद ही साम्यवादी क्रान्ति होगी। सिद्धान्ततः लेनिन इसी विचार का समर्थक था।

लेनिन ने चूँकि मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को मौलिक रूप में स्वीकार करने के बाद ही उन्हें परिस्थितिओं के अनुकूल ढालने एवं संशोधित करने का प्रयास किया। अतः लेनिन का लक्ष्य किसी क्रान्ति के नये सिद्धान्त की पुष्टि करना नहीं था। इसीलिये लेनिन के विचारानुसार रूस की श्रमिक क्रान्ति

---

3. F. W. Coker, Recent Political Thought, P. 161
4. Manifesto of the Communist Party, P. 57

एकदेशीय क्रान्ति नहीं है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक क्रान्ति का ही एक अंश है। "बोलशेविक क्रान्ति केवल रूसी क्रान्ति ही नहीं बल्कि वह पूँजीवादी साम्राज्यवाद के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय श्रमजीवीय संघर्ष का आरम्भ था।"[5]

यदि हम मार्क्स के चिन्तन पर दृढ़ रहे तो उस समय रूस एक ऐसा देश था जहाँ साम्यवादी क्रान्ति की सम्भावना सबसे कम थी। फिर भी "लेनिन दृढ़तापूर्वक कहता है कि रूसी क्रान्ति निश्चित रूप से मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार ही घटित हुयी थी।"[6]

क्योंकि 1917 से पूर्व विश्व औद्योगिक एवं आर्थिक जगत में जो भी परिस्थितियाँ विकसित हुयी उन परिस्थितियों ने किसी एक ऐसे देश में समाजवादी क्रान्ति के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया था, जहाँ पूँजीवादी शासन अपनी अस्थिर अवस्था में था। यद्यपि पूँजीवादी व्यवस्था अपनी चरम अवस्था पर नहीं थी।

मार्क्स एवं लेनिन ने ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति के बारे में सोचा जो विश्व पूँजीवाद के विकास का परिणाम होगा न कि किसी देश विशेष की किसी विशेष परिस्थिति का परिणाम। वे अवस्थायें जो किसी समाजवादी क्रान्ति की सफलता के लिये आवश्यक है विश्वव्यापी है। अतः क्रान्ति भी यथा सम्भव विश्वव्यापी पैमाने पर ही की जानी चाहिये। स्वयं लेनिन के अनुसार समाजवादी क्रान्ति के उपुर्यक्त अवसर का निर्धारण विश्व पूँजीवाद के विकास की सामान्य अवस्था द्वारा होना था, किसी विशेष देश की किसी विशेष अवस्था द्वारा नहीं।

प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने के साथ ही लेनिन एक अखिल योरोपीय क्रान्ति के विषय में सोचने लगा था। लेनिन ने रूस में उस क्रान्ति की रूपरेखा एवं नीति तय करने में भी अखिल योरोपीय क्रान्ति की संभावना को देखा। पुनः आगे उन्हें एक विश्व क्रान्ति की उम्मीद थी। "उसका विचार था कि युद्ध छिड़ने से पूँजीवाद के अन्तर्विरोध उस बिन्दु पर आ पहुँचे हैं। जो सर्वत्र समाजवाद की माँग करते हैं।" लेनिन ने 1920 में युद्ध के दौरान विश्व क्रान्ति के लिये श्रमिक एकता पर बल देते हुये कहा था "जब तक सभी देशों और राष्ट्रों के सर्वहारा वर्ग और उसके बाद सभी मेहनतकश जनता संगठन और एकता के लिये स्वेच्छापूर्वक प्रयास नहीं करती तब तक पूँजीवाद पर विजय नहीं प्राप्त हो सकती।"[7]

लेनिन के विश्व क्रान्ति के सिद्धान्त को स्थायी क्रान्ति का सिद्धान्त भी कहा जाता है। लेनिन एवं उसके साथी ट्रॉटस्की का भी इस विषय में यह विचार था कि रूस की समाजवादी क्रान्ति को स्थायी बनाने के लिये यह जरूरी है कि विश्व के अन्य देशों में भी उसी प्रकार का समाजवादी क्रान्ति हो। रूसी क्रान्ति का भविष्य भी तब तक अनिश्चित होगा जब तक अन्य देशों में भी क्रान्ति सफल न हो। क्योंकि अन्य

---

5. Alexander Gray : The Socialist Tradition, P.-460
6. F. W. Coker, Recent Political Thought, P. 163
7. लेनिन की संकलित रचनायें, खण्ड–3, भाग–2, पृ. 19

पूँजीवादी देश रूसी क्रान्ति को असफल बनाने का प्रयास करेंगे। अतः यदि रूस की क्रान्ति को सफल बनाना है तो अन्य देशों में भी क्रान्ति हो।

इस प्रकार लेनिन विश्व क्रान्ति की आवश्यकता पर सदैव विश्वास प्रकट करता था। ट्रॉटस्की का तर्क था कि अन्य देशों में क्रान्ति से रूस में समाजवाद अधिक सुदृढ़ होगा। अतः उसने विश्व क्रान्ति पर जोर दिया। लेनिन एवं ट्रॉटस्की दोनों को आशा थी कि विकासशील पश्चिमी राष्ट्रों में रूस की सहायता से क्रान्ति सम्भव है। अतः सभी क्रान्तियों का उद्‌देश्य सम्पूर्ण विश्व में समाजवाद की स्थापना होनी चाहिये।

परन्तु बाद में लेनिन ने और उनके समर्थकों ने बहुउद्‌देशीय क्रान्ति के लक्ष्य के स्थान पर एकदेशीय क्रान्ति के लक्ष्य को अपनाया क्योंकि तत्कालीन विश्व की परिस्थितिओं में उन्हें विश्व क्रान्ति की सम्भावना धूमिल होती दिखी। लेनिन उस समय रूस में श्रमजीवी वर्ग (सर्वहारा वर्ग) के द्वारा क्रान्ति करवाना चाहता था। अतः उसने मार्क्सवाद में परिवर्तन किये। उसने कहा कि पूँजीवाद के चरम सीमा पर पहुँचने के पूर्व ही किसी देश में सर्वहारा क्रान्ति हो सकती है। उसने यह नहीं माना कि पूँजीवादी क्रान्ति और सर्वहारा क्रान्ति के मध्य एक लम्बे समय का अन्तराल होना आवश्यक है। इसी कारण कुछ लोग लेनिनवाद को रूस की परिस्थितियों पर आरोपित मार्क्सवाद कहते है तथा इसे एक राष्ट्रीय सिद्धान्त की परिधि में बाँध देते है।

यदि लेनिन के एकदेशीय क्रान्ति के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाये तो मार्क्स के बहुउद्‌देशीय प्रसार के सिद्धान्त को यह पूर्णतया नकारता है। जबकि मार्क्सवाद के विचारों का मूल सिद्धान्त विश्व क्रान्ति ही है। कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में मार्क्स कहता है कि ''श्रमिकों का कोई देश नहीं होता''[8] अर्थात् विश्व के मजदूर एक समान हैं। मार्क्स का दिया हुआ नारा ''दुनिया के मजदूरों एक हो'' इस दिशा में विश्व क्रान्ति का ही पृष्ठ पोषक है। दुनिया भर के साम्यवादियों का परस्पर सम्बन्ध का भी आधार विश्व क्रान्ति का सिद्धान्त है।

लेनिन की मृत्यु के बाद स्टेलिन ने भी विश्व क्रान्ति के बारे में अपने विचारों को बदलने की आवश्यकता समझी। उसने ट्रॉटस्की के समाजवाद सम्बन्धी विचारों का विरोध किया एवं एकदेशीय समाजवादी क्रान्ति (Socialism in One Country) का प्रतिपादन करना प्रारम्भ किया। स्टेलिन ने यह भी स्पष्ट किया कि अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन के बिना ही अकेले एक देश में समाजवाद की स्थापना सम्भव है। इस प्रकार स्टालिन ने मार्क्सवाद के व्यवहारीकरण में विश्व क्रान्ति एवं स्थायी क्रान्ति के सिद्धान्त को पूर्णतया नकारा।

1924 में स्टेलिन की पुस्तक "Problems of Leninism" प्रकाशित हुयी और इसमें स्टेलिन ने यह विचार रखा कि दुनिया के अन्य देशों में पूँजीवाद के होते हुये भी किसी एक देश में समाजवादी क्रान्ति

---

8. Manifesto of the Communist Party, P.70

सफल हो सकती है। स्टेलिन के इस विचार ने विश्व क्रान्ति एवं स्थायी क्रान्ति के सिद्धान्त को कमजोर बना दिया।

'एक देश में क्रान्ति' का स्टेलिन का नया सिद्धान्त केवल लेनिनवाद से ही दूर जाना नहीं था वरन् यह अदूरदर्शिता से भी परिपूर्ण था। वास्तव में स्टेलिन का मुख्य उद्देश्य था ट्रॉटस्की को सत्ता संघर्ष में पराजित करना। "स्टेलिन का एक राष्ट्र में समाजवाद का सिद्धान्त सुविचारित नहीं था क्योंकि यह एक तात्कालिक उद्देश्य प्राप्ति के लिये जल्दबाजी में प्रतिपादित हुआ था।"[9] शायद इस कारण इसके विरुद्ध की गयी आलोचनाओं का स्टेलिन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

फिर भी 'एक राष्ट्र में समाजवाद' (Socialism in One Country) का सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं यह एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में रूस की मान्यता है। 'स्टालिन के लिये रूस विश्व का केन्द्र था। यह रूस का सौभाग्य था कि वह पूँजीवादी योरोप से श्रेष्ठतर एक नयी सभ्यता का केन्द्र बन रहा था।"[10] इस सिद्धान्त ने स्टालिन को सर्वोच्च शक्ति तक पहुँचाया। यद्यपि यह मार्क्सवाद के विपरीत जाना था।

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद बनाम एकदलीय व्यवस्था

(Dictatorship of Proletariate Versus One Party System)

मार्क्सवादी विचारधारा का मुख्य लक्ष्य है पूँजीवाद की समाप्ति एवं उसके स्थान पर समाजवादी समाज की स्थापना। समाजवादी समाज वर्गविहीन समाज होगा जिसमें केवल श्रमजीवी वर्ग ही होगा। इसके लिये सबसे पहले पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध क्रान्ति होगी परन्तु क्रान्ति के तुरन्त बाद ही साम्यवाद की स्थापना नहीं होगी वरन् क्रान्ति के बाद का समय संक्रमणकालीन अवस्था होगी जिसमें देश में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना होगी। कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में मार्क्स कहता है कि "श्रमजीवी वर्ग की क्रान्ति में प्रथम कदम है प्रजातंत्र की लड़ाई को जीतने के लिये सर्वहारा वर्ग को शासक वर्ग की स्थिति तक ऊपर उठाना।"[11] संक्रमणकाल में श्रमिक वर्ग देश की राजनैतिक सत्ता ग्रहण कर लेगा, सत्ता के बल पर पूँजीवाद के तत्वों को जड़ से समाप्त कर देगा। उत्पादन एवं वितरण पर समाज के स्वामित्व की स्थापना होगी एवं वर्ग विहीन समाज अस्तित्व में आयेगा। मार्क्स ने इसी स्थिति को "सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र" की संज्ञा दी।

पूँजीपति वर्ग के शोषण को समाप्त करने के लिये क्रान्ति द्वारा श्रमजीवी वर्ग अपने अधिनायक तन्त्र की स्थापना स्वयं करेंगे मार्क्स ने ऐसी ही कल्पना की। "उन्नीसवीं शताब्दी में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन

---

9. C. L. Wayper, Political Thought, P. 233
10. C. L. Wayper, Political Thought, P. 234
11. Manifesto of the Communist Party, P. 73

हो गया था। वह परिवर्तन था–औद्योगिक श्रमिक वर्ग में राजनैतिक चेतना का उत्थान।"[12] मार्क्स के अनुसार श्रमिक बाजार में काम करके श्रम शक्ति बेचता है, परन्तु उद्योगों के मालिक उन्हें उसका उचित मूल्य नहीं देते है। अतः पूँजीपतियों के शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध श्रमिकों में जागरूकता व चेतनता आयेगी वे स्वयं संगठित होंगे और क्रान्ति करेंगे। निरन्तर निर्धतना के कठिन अनुभव से गुजरते हुये श्रमिक स्वयं ही अपनी माँगों के लिये आगे बढ़ेंगे, संघर्ष करेंगे और अपने लिये सत्ता छीनेंगे।

परन्तु इस क्षेत्र में मार्क्स की धारणा पर लेनिन को सन्देह था कि श्रमिकों में राजनैतिक चेतना स्वयं जागृत होगी। जिस विशाल और कठिन संघर्ष का संचालन होना था उसे श्रमिक स्वयं अपने बल पर नहीं चला सकते थे। अतः जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र में विजय के लिये सेनापति का नेतृत्व आवश्यक होता है। उसी प्रकार क्रान्ति में श्रमिकों के मार्ग निर्देशन के लिये दल अर्थात "कुछ विशिष्ट बुद्धिजीवियों और नीतिज्ञ पुरूषों के एक सुसंगठित गुट की आवश्यकता होगी। दल के ये बुद्धिजीवी श्रमिकों के लिये नीति निर्माण में निर्देशन देंगे और राजनैतिक सत्ता को प्राप्त करने में नेतृत्व करेंगे। यह दल श्रमिक वर्ग का ही अंग होगा। "लेनिन के मत से दल सदैव मजदूर वर्ग के आन्दोलन के बीच में रहता है। वह इन आन्दोलनों के आवश्यकतानुसार नेतृत्व तथा पथ प्रदर्शन करता है।"[13]

परन्तु श्रमजीवियों का अधिनायकतंत्र व्यवहार में उस प्रकार का नहीं होगा जैसा सिद्धान्त में। साम्यवादी विचारधारा में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र को श्रमजीवी वर्ग का लोकतन्त्र कहा गया है। परन्तु व्यवहार में यह सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र न होकर साम्यवादी दल का अधिनायकतंत्र होता है। यद्यपि मार्क्सवादी चिन्तन में श्रमिक ही क्रान्ति को संचालित करने में एवं सत्ता प्राप्त करने में प्रमुख भूमिका निभाते है और उन्हीं में सम्पूर्ण शक्ति निहित होती है परन्तु व्यवहार में वे दल के नेतृत्व के पूर्ण एवं कठोर नियंत्रण में होते है। व्यवहारिक रूप में "यह तानाशाही मजदूर वर्ग की नहीं बल्कि मजदूर वर्ग पर होगी।"[14]

लेनिन के अनुसार दल का काम श्रमिक वर्ग का अगुआ बनकर चलना है और उसके अधिनायक तंत्र को सफल बनाने के लिये भी दल का नेतृत्व जरूरी है। "इस दृष्टि से हम कह सकते है कि श्रमिक वर्ग का अधिनायकवाद वास्तव में साम्यवादी दल का अधिनायक तंत्र है। क्योंकि दल ही सर्वहारा वर्ग का पथ प्रदर्शन करता है।"[15] इस प्रकार रूस में साम्यवाद की स्थापना के दौरान वैचारिक परिवर्तन का यह आयाम साम्यवादी विचारधारा में उभरकर सामने आया कि श्रमजीवी वर्ग के अधिनायकवाद का व्यवहारिक

---

12. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 704
13. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 758
14. C. L. Wayper, Political Thought, P. 226
15. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 760

रूप है साम्यवादी दल का अधिनायकवाद। इस अधिनायक तंत्र में श्रमिक वर्ग एवं साथ ही सामान्य जनता की विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है, साम्यवादी विचारधारा के विरोधी विचार रखने वालों का कठोर दमन होता है और समाजवादी दल का जनता के सामाजिक जीवन पर कठोर नियंत्रण होता है। ''दल समस्त मजदूर संगठन के लिये एक आधार बन जाता है। .... वह शोषकों का ही दमन नहीं करता, प्रत्युत मजदूरों और सम्पूर्ण जनसंख्या के ऊपर भी कठोर अनुशासन लागू करता है।''

इस प्रकार ''वर्तमान काल में सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद न स्वतंत्र होता है और न ही लोकतन्त्रात्मक इस सम्बन्ध में ट्रॉटस्की ने कहा था कि ''लोकतंत्र पूँजीवादी समाज व्यवस्था का आडम्बर मात्र है।''[16] जबकि लेनिन कहता है कि सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद ही सच्चा लोकतंत्र हैं यह जन सामान्य के शोषण को समाप्त करने के लिये स्थापित होता है।

साम्यवादी दल के अधिनायक तंत्र के लिये एक और नये शब्द का लेनिन ने प्रयोग किया ''लोकतन्त्रात्मक केन्द्रवाद'' (Democratic Centralization) जिसमें दल के शिखर पर स्थित कुछ प्रमुख व्यक्तियों का निरंकुश शासन अत्यन्त केन्द्रीकृत एवं अनुशासित रूप में होता है। इस केन्द्रीकृत स्थिति के लोकतंत्रात्मक स्वरूप पर सन्देह स्वाभाविक है। लेनिन के विचारानुसार जब तक समाज में वर्गीय संघर्ष समाप्त नहीं होता है एवं साम्यवाद की स्थापना नहीं हो जाती है तब तक जनता की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाया जा सकता है। लेनिन के अनुसार दल का ''संगठन बहुत अधिक केन्द्रीकृत अथवा सोपानबद्ध होना चाहिये। उसमें सत्ता का प्रसार ऊपर से नीचे की ओर होना चाहिये।''[17] इस विषय में कोकर यह विचार प्रकट करता है कि ''क्रान्तिकारी राजनैतिक लोकतंत्र के समर्थक ऊपर से चलते है और वे अंगों की तुलना में केन्द्र के अधिकारों और शक्तियों का संगठन करते है।''[18]

रूस में 1917 की क्रान्ति की सफलता के बाद लेनिन ने स्पष्ट घोषणा की कि सोवियतों के द्वारा एक अधिनायक तंत्र की स्थापना होगी जो सीधे शक्ति के प्रयोग पर ही आधारित होगा। यह शासन अल्पमत का होगा और कानून पर आधारित नहीं होगा। यह अल्पमतीय शासन श्रमिक वर्ग की ओर से शासन करेगा तथा इसकी विशेषता यही होगी कि वह श्रमिकों एवं कृषकों के हितों के अनुरूप होगा।

''दल का प्रेस, दल का संगठन सभी को बिना आपत्ति के दल के नेताओं के आदेशों का पालन करना होगा।''[19] इस विषय में सोवियत संघ के शासन का कहना था कि दल श्रमिकों को जो भी दिशा

---

16. वही, पृ. 785
17. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 761
18. F. W. Coker, Recent Political Thought, P. 185-186
19. वही, पृ. 178

प्रदान करेगा वही सही होगा। क्योंकि दल "केवल यही नहीं जान लेता है कि वे वर्तमान में किस प्रकार तथा किस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं बल्कि यह भी जान लेता है कि वे भविष्य में किस प्रकार और किस दिशा में आगे बढ़ेंगे।"[20] सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र का दलीय अधिनायक तंत्र में रूपान्तरण वैचारिक वैविध्य का एक महत्वपूर्ण बिन्दु था।

दलीय अधिनायकवाद बनाम व्यक्तिगत अधिनायकवाद

(Dictatorship of Party Versus Individual Dictatorship)

लेनिन ने श्रमिक वर्ग को एकताबद्ध करने के लिये, उनमें राजनैतिक चेतना लाने के लिये तथा उन्हें मार्ग निर्देशन देने के लिये दलीय अधिनायकवाद के सिद्धान्त को आवश्यक माना। अतः रूस में व्यवहार में श्रमजीवी तानाशाही या सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद के स्थान पर दलीय अधिनायकवाद की स्थापना को साम्यवादी क्रान्ति के एक आवश्यक चरण के रूप में स्वीकारा गया।

लेनिन के जीवनकाल में दलीय अधिनायकवाद का जो स्वरूप विद्यमान था उसमें केवल शोषक पूँजीपतियों का ही दमन नहीं हुआ वरन् श्रमिकों, कृषकों एवं जन सामान्य का भी दमन हुआ। इस दलीय अधिनायकवाद में सम्पूर्ण सत्ता दल के कुछ गिने चुने नेताओं के साथ केन्द्रित हो गयी थी।

रूस में लेनिन के नेतृत्व में स्थापित शासन के इन प्रमुख नेताओं या अन्तरंग मण्डल में एक प्रमुख व्यक्तित्व था ट्रॉटस्की जो लेनिन का समर्थक था। एक और शक्तिशाली व्यक्तित्व था स्टेलिन जो ट्रॉटस्की का विरोधी था। लेनिन की मृत्यु के बाद स्टेलिन ने अपनी विलक्षण प्रतिभा, प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं सूझबूझ से न केवल ट्रॉटस्की को परास्त कर दिया वरन् उसकी राजनैतिक भूमिका को ही समाप्त कर दिया।

कुछ ही समय के भीतर स्टेलिन ने साम्यवादी दल में अपना एकछत्र प्रमुख स्थापित कर लिया और सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर ली। अपनी दूरदर्शिता के माध्यम से वह दिन प्रतिदिन अपनी स्थिति दल एवं शासन में सुदृढ़ बनाता चला गया। "स्टेलिन के अधिनायक तंत्र का विकास दल की बदलती हुयी प्रकृति में स्पष्ट देखा जा सकता है।"[21] उसकी स्थिति जैसे जैसे मजबूत होती चली गयी वैसे ही वैसे शासन एवं दल पर उसका नियंत्रण भी कठोर होता गया। उसने एक सफल अधिनायक की भाँति सोवियत रूस की सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में केन्द्रित कर ली। रूस का शासन दलीय अधिनायक तंत्र से व्यक्तिगत अधिनायक तंत्र के रूप में परिवर्तित होता गया।

धीरे धीरे स्टेलिन एक ऐसा शक्तिशाली एवं प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्त्वि के रूप में उभरा जो केवल

---

20. हिस्ट्री ऑफ कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ सोवियत यूनियन (बोल्शेविक्स), पृ. 355

21. C. L. Wayper, Political Thought, P. 235

रूस के आन्तरिक क्षेत्र में ही नहीं वरन् विश्व राजनीति का भी प्रमुख संचालक बन गया। सोवियत रूस में स्टेलिन ने अपने अन्ध समर्थकों का एक सम्प्रदाय सा बना लिया जो स्टेलिन की देवता की भाँति पूजा करते थे। स्टेलिन किसी भी कार्य या नीति में अपना विरोध या आलोचना नहीं सह सकता था। खुश्चेव के अनुसार "वह विचार विनिमय द्वारा निर्णय करने की अपेक्षा अपने विचारों को दूसरो पर लाद देने का प्रयत्न किया करता था।" विरोध करने वालो के अस्तित्व को ही समाप्त कर देता था। लेनिन के शासनकाल में साम्यवादी दल ने भाषण एवं कार्य की स्वतंत्रता का उपभोग किया। किन्तु स्टेलिन के सर्वसत्ता सम्पन्न होने के बाद दलगत स्वतंत्रता समाप्त हो चुकी थी। शहरों में व्यापारिक संघों की स्वतंत्रता नहीं थी।

इस प्रकार स्टेलिन सामूहिक नेतृत्व का विरोधी था, सामूहिक नेतृत्व, जो सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र के मूल में था। एक ओर लेनिन के नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र ने साम्यवादी दल के अधिनायक तंत्र का रूप ले लिया दूसरी ओर एक दलीय अधिनायकवाद का स्थान स्टेलिन के नेतृत्व में व्यक्तिगत अधिनायकवाद ने ले लिया। स्टेलिन अपने विरोधियों और आलोचकों को अपना शत्रु समझता था, उनके साथ स्टेलिन का व्यवहार नृशंसतापूर्ण था और वह पाशविक बल के प्रयोग द्वारा उनको जड़ से नष्ट कर देने को ही अपना आदर्श समझता था। रूस के भीतर एक सर्वसत्तावादी राज्य का विकास हुआ जिसमें दल की निरंकुशता के स्थान पर व्यक्ति की निरंकुशता को स्वीकृति दी गयी।

एकदलीय अधिनायकवाद से व्यक्तिगत अधिनायकवाद की ओर वैचारिक संघर्ष की यह स्थिति स्टेलिन के शासनकाल में निरन्तर बनी रही। शासन कम लोकतंत्रीय होता चला गया। सत्ता के केन्द्रीयकरण की नीति के कारण केन्द्रीकृत नौकरशाही का विकास हुआ। स्टेलिन ने न तो कभी सहयोग की नीति पर विश्वास किया और न ही समझौते की नीति पर। दल के निम्नतर अंगों पर शिखर के लोगों का नियंत्रण और अनुशासन अधिक होने लगा। दल के सदस्यों का महत्व दिन पर दिन कम होने लगा। साम्यवादी दल को एक अत्यन्त केन्द्रीकृत और शक्तिशाली नौकरशाही में परिवर्तित कर दिया गया। साम्यवादी दल के अधिनायक तंत्र के स्थान पर व्यक्तिगत अधिनायक तंत्र स्थापित किया गया।

"स्टालिन की मृत्यु से पूर्व रूसी निरंकुश तंत्र में फासीवादी एवं नाजीवादी निरंकुश तंत्र की विशेषतायें देखने को मिलती है।"[22] जैसे कि जनमत निर्णय में अपार समर्थन की प्राप्ति, शासन के प्रति असीम विश्वास की भावना और नेतृत्व की अन्ध पूजा आदि। स्टालिनवाद और मार्क्सवाद में सबसे बड़ा अन्तर था शक्तिशाली सर्वसत्तावादी विश्वास। "लेनिन मार्क्स के विचार से काफी दूर हो गया था जब उसमें आर्थिक एवं सामाजिक प्रक्रियाओं की तुलना में शक्ति की भूमिका को निम्न बताया। किन्तु स्टालिन तो इससे (मार्क्सवाद से) पूर्णतया दूर हट गया।"[23] स्टालिन का व्यक्तिगत अधिनायक तंत्र साम्यवाद के समानता के

22. C. L. Wayper, Political Thought, P. 236

23. वही, पृ. 238

सिद्धान्त को एक खुली चुनौती थी।

उत्पादन के साधनों का स्वामित्व : एक विवाद

(Ownership of the Means of Production : A Controvarsy)

पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर पूँजीपतियों का स्वामित्व व्यक्तिगत होता है, उत्पादन विशाल स्तर पर होता है और पूँजीपति ही सम्पूर्ण लाभ या अतिरिक्त मूल्य प्राप्त करते है, उत्पादन पर उनका एकाधिकार होता है।

इन स्थितियों के कारण समाज की सम्पत्ति समाज के एक छोटे से वर्ग के हाथों में केन्द्रित होता जाता है। श्रमिक वर्ग दिन पर दिन निर्धन होता जाता है। पूँजीपति एवं श्रमिकों के मध्य की खाई बढ़ती है, उनके मध्य का विभाजन अधिक होता जाता है। पूँजीवाद की इस चरम अवस्था में मार्क्स के विचारानुसार एक ऐसी स्थिति आयेगी जब सर्वहारा क्रान्ति द्वारा उत्पादन के साधनों का समाजीकरण होगा और श्रमिकों के द्वारा साम्यवाद की स्थापना होगी। "द्वन्द्वात्मक आवश्यकता के वशीभूत होकर पूँजीवादी व्यवस्था अपने आन्तरिक अन्तर्विरोधों के कारण अपने से विरोधी समाजवादी व्यवस्था का पथ प्रशस्त करेगी।"[24]

समाजवादी व्यवस्था एवं साम्यवादी विचारधारा के अन्तर्गत सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व को नकारा गया है। इसमें उत्पादन के सभी साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व होता है। साम्यवाद के अनुसार पूँजीपतियों के पास धन का केन्द्रीकरण उनके द्वारा जनता की सम्पत्ति का अपहरण है। अतः बिना किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति दिये उनकी सम्पत्ति पर सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना सर्वथा न्यायोचित है।

सार्वजनिक स्वामित्व की विचारधारा से ही उत्पादन के साधनों पर भी सार्वजनिक नियंत्रण का सिद्धान्त सामने आता है। साम्यवादी व्यवस्था में सहकारी उत्पादन की स्थापना होगी जिसमें सम्पूर्ण समाज के सदस्य मिलजुल कर उत्पादन करेंगे। सहकारी उत्पादन के साथ ही वितरण एवं उपभोग पर भी सार्वजनिक स्वामित्व होगा।

यहाँ सार्वजनिक स्वामित्व शब्द के स्पष्ट अर्थ पर मत विभिन्नता है। साम्यवाद के अनुसार उत्पादन के साधन पर समाज का वर्चस्व होगा राज्य का नहीं क्योंकि राज्य एक शोषक संस्था है। परन्तु सोवियत संघ में सार्वजनिक स्वामित्व को व्यवहार में उत्पादन शक्तियों के राष्ट्रीयकरण एवं उन पर राज्य के नियंत्रण के रूप में लागू किया गया। राज्य के नियंत्रण को सामाजिक प्रभुत्व माना गया।

इस स्थिति में श्रमिक का अपने उत्पादन पर स्वामित्व नहीं रहा। अपने उत्पादन से श्रमिकों की उसी प्रकार विच्छिन्नता बनी रही जिस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था में थी। उद्योगों के राष्ट्रीयकरण से समस्त आर्थिक शक्ति दल के अधिकारियों के हाथों में केन्द्रित हो गयी जिनके पास राजनैतिक शक्ति भी थी।

---

24. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ.–737

राष्ट्रीयकरण एवं सामाजिक स्वामित्व को समान मान लिया गया। "इसने सम्भावित रूप से साम्यवाद को विनाश की ओर प्रेरित किया, आर्थिक रूप से एवं राजनैतिक रूप से भी।[25]

इसी प्रकार सोवियत रूस में व्यवहार में सार्वजनिक उत्पादन की व्यवस्था तो लागू हुयी किन्तु सार्वजनिक वितरण एवं उपभोग की व्यवस्था लागू नहीं हो पायी। "प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" के स्थान पर "प्रत्येक से उसकी योग्यतानुसार और प्रत्येक से उसके कार्यानुसार" ही प्रचलित हुआ।

इस सिद्धान्त के अनुसार "पदार्थों का वितरण इस अर्थ में न्यायपूर्ण होगा कि प्रत्येक व्यक्ति जितना श्रम करेगा, उसे उसके बदले में उतना ही मूल्य मिल जायेगा। संक्षेप में प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम के पूर्ण उत्पादन का उपभोग करेगा।"[26] यह व्यवस्था न्यायपूर्ण, किन्तु व्यक्तिवादी थी और साम्यवाद के अनुरूप नहीं थी। क्योंकि इसमें प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी सहयोग या संगठन के ही उत्पादन कर सकता है। इसमें व्यक्तिगत लाभों के योग को ही सम्पूर्ण समाज का हित माना जाता है।

जबकि मार्क्स के अनुसार समाजीकृत उत्पादन व्यवस्था पूरी तरह से सहकारिता पर ही आधारित होनी चाहिये। इसमें कोई व्यक्ति अकेला उत्पादन नहीं करता है, व्यक्ति अकेले उत्पादन की इकाई नहीं होता है। यह उत्पादन पूर्णतया सामाजिक उत्पादन होता है और उत्पादक इकाई भी स्वयं समाज होता है। "मार्क्स के शब्दों में यह "सामुदायिक मजदूर" (Collective Workers) होता है। जो संयुक्त सहकारी उत्पादन के लिये संगठित किया जाता है।"[27]

अतः मार्क्स एक ऐसी आदर्श अर्थ व्यवस्था की कल्पना को प्रस्तुत करता है जो योजनाबद्ध एवं मानवीय होगी–"ऐसे स्वतंत्र व्यक्तिओं का एक संघ जो संयुक्त रूप से नियंत्रित उत्पादन–साधनों द्वारा कार्य करते है और अपनी अनेक श्रमशक्तिओं को प्रसन्नतापूर्वक एक संयुक्त सामाजिक श्रम शक्ति के रूप में विकसित करते हैं।"[28] मार्क्स के अनुसार इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन समाज की आवश्यकतानुसार होगा। अतः प्रत्येक अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करेगा और अपनी आवश्यकतानुसार पायेगा।

परन्तु सोवियत रूस में यह व्यवस्था लागू न हो पाने के पीछे कुछ साम्यवादी यह तर्क देते रहे कि रूस में अभी पूर्ण समाजवाद नहीं है और रूस की अवस्था अभी संक्रमण कालीन है। इसलिये वितरण और उपभोग की व्यवस्था अभी सार्वजनिक नहीं हो पायी है। उत्पादन की व्यवस्था सार्वजनिक है किन्तु

---

25. V. M. Tarkunde, Why Communism failed in the Soviet Union, The Radical Humanist, June, 1992, P. 7
26. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 741
27. वही, पृ. 742
28. Capital, Vol. I, Eing Trans by E. and E. Paul, P.52

वितरण एवं उपभोग के स्वामित्व में समानता के सिद्धान्त की स्थापना भी सम्भव नहीं हुयी है।

सोवियत रूस के अतिरिक्त चीन एवं पूर्वी योरोप के जिन देशों में भी साम्यवादी क्रान्ति हुयी है वहाँ भी सार्वजनिक वितरण के सिद्धान्त को व्यवहार में लागू करना सम्भव नहीं हुआ है। अतः कुछ विचारक इस सिद्धान्त को व्यवहारिक ही नहीं मानते हैं कि प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाये। क्योंकि आवश्यकता की धारणा ही इस प्रकार अस्पष्ट है कि एक व्यक्ति की आवश्यकता को स्पष्ट निर्धारित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इस प्रकार सार्वजनिक स्वामित्व व उत्पादन का सिद्धान्त साम्यवादी व्यवस्था में विवादास्पद बना रहा एवं सार्वजनिक उत्पादन व वितरण की प्रणाली एक चुनौती बनी रही।

क्रान्ति की निरन्तरता

(Continuation of Revolution)

मार्क्स के आर्थिक और सामाजिक दर्शन का एक मुख्य तत्व था उसका क्रान्ति का कार्यक्रम। ऐतिहासिक घटनाक्रम के अनुसार पूँजीवाद की चरम स्थिति पर ही समाजवादी क्रान्ति सम्भव है। उसका तात्पर्य यह कि कोई देश पूँजीवादी अवस्था से बिना गुजरे समाजवाद पर नहीं पहुँच सकता है। समय परिस्थितियों के अनुसार कम या ज्यादा लग सकता है। श्रमिक क्रान्ति या समाजवादी क्रान्ति के लिये मध्यमवर्गीय या पूँजीवादी क्रान्ति जरूरी है। मार्क्स के अनुसार जब देश में समुचित आर्थिक एवं राजनीतिक विकास हो जाये तभी श्रमिक क्रान्ति सम्भव है।

परन्तु रूस जिसकी परिस्थितियाँ मार्क्स के अनुसार समाजवादी क्रान्ति के लिये अनुपयुक्त थी वहाँ समाजवादी क्रान्ति सबसे पहले सम्पन्न हुयी। रूस में जिन परिस्थितियों ने क्रान्ति को सफल बनाया वे स्थितियाँ इस प्रकार थी–कि क्रान्तिकारी विचारों का एक सुसंगठित दल देश में अस्तित्व में आ चुका था जिसे पूरा जन समर्थन प्राप्त था। शासक वर्ग एवं उसके समर्थकों में फूट थी एवं मतभेद के कारण वे दुर्बल स्थिति में थे। इस प्रकार यद्यपि यह क्रान्ति मार्क्स द्वारा बतायी गयी परिस्थितियों में नहीं हुयी फिर भी लेनिन ने इसे मार्क्स के विचारों के अनुकूल ही घोषित किया।

वास्तव में ''यह दुर्भाग्य की बात है कि मार्क्स ने अपने सामाजिक दर्शन के सबसे महत्वपूर्ण भाग का स्वयं कभी व्यवस्थित रीति से प्रतिपादन नहीं किया।''[(29)] उसके अधिकांश सिद्धान्त आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित है जिनका विस्तृत विवरण है। किन्तु द्वन्द्व व क्रान्ति का सिद्धान्त पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। मार्क्स ने कहा कि सर्वहारा क्रान्ति की सफलता के बाद सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तंत्र स्थापित होगा। इस तंत्र के अधीन स्वयं ही राज्य का अस्तित्व धीरे–धीरे समाप्त हो जायेगा।

---

29. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 707

कतिपय विचारकों ने मार्क्स की क्रान्ति की अवधारणा को विकासवादी समाजवाद की अवधारणा के रूप में लिया। राज्य के धीरे–धीरे समाप्त हो जाने का अर्थ उन्होंने इस रूप में लगाया कि पूँजीवादी राज्य शान्तिपूर्ण क्रान्ति द्वारा समाजवादी राज्य में बदल जायेंगे। परन्तु वास्तव में मार्क्स एवं एंगिल्स का कहना था कि क्रान्ति द्वारा सर्वहारा अधिनायकवाद की स्थापना होगी तथा राज्य के अस्तित्व का चेष्टापूर्वक अन्त होगा। अर्थात् राज्य का अन्त क्रान्ति के द्वारा ही होगा। मार्क्स ने स्पष्ट किया कि "श्रमिक आन्दोलन अवश्य ही क्रान्तिकारी होगा।" लेनिन ने भी अपनी पुस्तक State and Revolution में मार्क्सवाद को स्पष्ट रूप से एक क्रान्ति के दर्शन के रूप में स्थापित किया जो क्रान्ति की निरन्तरता पर विश्वास करता है।

मार्क्स का क्रान्ति का सिद्धान्त परिस्थितियों द्वारा सीमित था। मार्क्स के विचारानुसार पूँजीवादी अवस्था से परिस्थितियाँ ऐसी बनेंगी जिसमें समय के साथ–साथ समाजवादी क्रान्ति परिपक्व होकर प्रतिफलित होगी। वर्ग संघर्ष एवं द्वन्द्ववादी पद्धति स्वयं ही समयानुसार क्रान्ति लायेगी। एक निश्चित अवस्था पर पहुँचकर क्रान्ति का होना जरूरी है। "अस्तु, मार्क्स ने समाज के एक ऐसे विकासात्मक सिद्धान्त का निरूपण किया है जो प्राकृतिक विधि की सम्पूर्ण व्यवस्था विकास की एक विशिष्ट अवस्था की विचारधारा के अनुकूल थी।"[30]

किन्तु लेनिन का विचार था कि क्रान्ति परिपक्व होने के लिये प्रतीक्षा करना अवसर को हाथ से निकल जाने देना होगा। उसे क्रान्ति की निरन्तरता पर विश्वास था। अतः उसने साम्यवाद की स्थापना में उसके क्रान्तिकारी पक्ष को अधिक महत्व दिया और मार्क्स द्वारा आरोपित सीमाओं को समाप्त करके क्रान्ति के सिद्धान्त को सार्वभौमिक रूप प्रदान किया। स्टेलिन ने इसीलिये लेनिनवाद को (सामान्य रूप से) श्रमजीवी क्रान्ति का सिद्धान्त कहा।

लेनिन ने मार्क्सवाद को मौलिक रूप से एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त सिद्ध किया। उसने 1917 में नियोजित क्रान्ति को ही केवल मार्क्सवादी चिन्तन के अनुकूल बनाने का प्रयास नहीं किया वरन् क्रान्ति के उपरान्त स्थापित होने वाले शासन को मार्क्सवादी धारणा के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। "आजकल पूँजीपति अथवा श्रमिक आन्दोलन के भीतर अवसरवादी लोग मार्क्सवाद में मिलावट करने में सहयोग कर रहे हैं। वे मार्क्सवादी सिद्धान्तों के क्रान्तिकारी पक्ष को, उसकी क्रान्तिकारी आत्मा को या तो भुला देते हैं, या धूमिल कर देते हैं, अथवा उसे नष्ट कर देते हैं।" लेनिन ने यह विचार 1917 में लिखी गयी अपनी पुस्तक State and Revolution में प्रकट किया है।

लेनिन ने यह प्रतिपादित किया कि समाजवाद की ओर अग्रसारित होना केवल क्रान्तिकारी पद्धति द्वारा ही सम्भव है। यद्यपि मार्क्सवाद का स्वरूप सिद्धान्ततः क्रान्तिकारी है परन्तु मार्क्स ने दुनिया के

---

30. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 712

समस्त देशों में क्रान्ति को अपरिहार्य नहीं समझा। उसने उन देशों में क्रान्ति होना अनिवार्य नहीं समझा जहाँ पहले से ही प्रजातंत्र है। अतः मार्क्स ने अमरीका और इंगलैण्ड जैसे प्रजातंत्रीय परम्परा वाले देशों में क्रांति को आवश्यक नहीं समझा परन्तु इस विषय में लेनिन का यह कहना था कि इंगलैण्ड या अमेरिका जैसे देशों को प्रजातंत्रीय न कहकर सम्राज्यवादी कहना अधिक उचित होगा। इन पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी देशों में श्रमिक वर्ग शोषण से मुक्ति हेतु क्रान्ति का सहारा लेगा। मार्क्स और लेनिन के क्रान्ति सम्बन्धी विचार में परस्पर विरोधी उक्तियाँ मिलती हैं।

क्रान्ति की प्रकृति

(Nature of Revolution)

लेनिन ने अपने विचारों को रूस के सन्दर्भ में ही प्रतिपादित किया। तत्कालीन रूस में वहाँ की राष्ट्रीय संसद जिस तरह से कार्य कर रही थी यह स्पष्ट हो गया था कि बिना दबाव या जोर के केवल शान्तिपूर्ण तरीकों द्वारा एवं वैधानिक साधनों द्वारा जनता एवं श्रमिकों को उनके अधिकारों की प्राप्ति नहीं हो सकती। संवैधानिक साधनों द्वारा समाजवादी राज्य की स्थापना भी नहीं हो सकती।

अतः 1917 की क्रान्ति के समय तक लेनिन का यह विचार दृढ़ होता गया कि क्रान्ति को किसी भी स्थिति में संवैधानिक एवं लोक तंत्रीय सिद्धान्तों के द्वारा सफलता नहीं मिलेगी। लेनिन ने 1906 में लिखा था कि "राष्ट्रों के जीवन के बड़े–बड़े प्रश्न केवल शक्ति द्वारा ही सुलझाये जा सकते है।" फिर भी लेनिन के नेतृत्व में संचालित रूसी क्रान्ति में वैधानिक साधनों को पूर्णतया तिलांजलि नहीं दी गयी।

मार्च 1917 की क्रान्ति के दौरान रूस में सभी दलों ने जिसमें बोलशेविक, मेंशेविक, समाजवादी क्रान्तिकारी तथा वैधानिक प्रजातंत्रवादियों ने धमकियों एवं प्रतिवादों सहित अपनी मांगे जार के सामने प्रस्तुत की। वैधानिक प्रजातंत्रवादियों को छोड़कर अन्य दलों ने देश भर में हड़तालों एवं प्रदर्शनों का आयोजन किया। स्थान–स्थान पर तोड़ फोड़ आदि उपद्रव भी हुये। दूसरी ओर मेनशेविक एवं सामाजिक क्रान्तिकारी दल के सदस्य पेट्रोग्राड की सोवियत तथा अन्य प्रान्तीय सोवियतों में कार्य भी करते रहे। समाजवाद की ओर अग्रसर होने में यह एक महत्वपूर्ण कदम था।

इसी क्रान्ति की एक महत्वपूर्ण संवैधानिक घटना यह भी थी कि 15 मार्च, 1917 को जार के सिंहासन छोड़ने के ठीक तीन दिन पूर्व बोलशेविक, मेनशेविक एवं समाजवादी क्रान्तिकारियों ने मिलकर पेट्रोग्राड में एक परिषद का आयोजन किया जिसमें श्रमिक एवं सैनिक भी शामिल थे। इस परिषद में माँग रखी गयी कि वयस्क मताधिकार के आधार पर विधानसभा का संगठन किया जाये जो देश में क्रान्तिकारी सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन के लिये कार्य करें।

लेनिन ने सोवियतों को क्रान्ति के द्वारा सत्ता प्राप्त करने के लिये उपर्युक्त साधन माना ये

शान्तिपूर्ण क्रान्ति के साधन थी। क्रान्ति के लिये उसने आवश्यक माना कि समस्त शक्ति सोवियतों को मिलें। परन्तु उस समय सोवियतें लेनिन के लिये इसलिये असुविधाजनक थी कि उनमें बोल्शेविक अल्पमत में थे परन्तु 1917 में बोलशेविकों के हाथ में सोवियतों को नेतृत्व आ गया और स्थिति लेनिन के लिये सुविधाजनक हो गयी।

इन अनुकूल स्थितियों के बावजूद जारकालीन रूस में जिस प्रकार भ्रष्टाचार अपने चरम शिखर पर पहुँच चुका था, शासन ने जिस प्रकार अक्षमता का परिचय दिया जनता, सेना एवं सभी दलों में असंतोष एवं क्षोभ बढ़ता गया। ऐसे में लेनिन ने हिंसक क्रान्ति को ही एकमात्र मार्ग के रूप में चुना। विकासवादी साधनों द्वारा क्रान्ति में समय अधिक लगता एवं ऐसे में ज्यादा प्रतीक्षा करना धैर्य से बाहर था। शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा जल्दी ही कुछ हो पाना असंभव भी था। अतः लेनिन ने क्रान्ति के लिये समाजवाद के अनुकूल परिस्थितियों के परिपक्व होने के लिये प्रतीक्षा नहीं की। उसने क्रान्ति के लिये पहल की, सोवियतों में अपना बहुमत स्थापित किया और अक्टूबर 1917 की क्रान्ति को सफल बनाया। "यदि आज साम्यवाद को हिंसा के समरूप समझा जाता है तो इसका सम्पूर्ण श्रेय या अपश्रेय लेनिन को जाता है।"[31]

मार्क्स एवं साथ ही लेनिन दोनों ने ही इस तथ्य को स्वीकारा कि "क्रान्ति अनिवार्य रूप से विधि बाह्य है और इसलिये अधिनायकवादी व्यवस्था से ही समाप्त होती है।"[32]

लेनिन की क्रान्ति का लक्ष्य रूस में प्रजातंत्र की स्थापना नहीं वरन् सर्वहारा के अधिनायक तंत्र की स्थापना ही था। "उस सामाजिक दर्शन के लिये जो वर्ग संघर्ष को समाज का मूल तथा स्थायी गुण मानता है, बहुमत शासन जैसी लोकतन्त्रात्मक परिकल्पना अर्थहीन है।"[33] यह लेनिन का तर्क था। इस प्रकार न तो रूसी क्रान्ति प्रजातंत्रीय थी और न क्रान्ति का लक्ष्य प्रजातंत्रीय था। फिर भी लेनिन ने अपनी पुस्तक (State of Revolution) में सर्वहारा वर्ग के लोकतंत्र को वास्तविक लोकतंत्र कहता है और इस पर विस्तृत प्रकाश डालता है।

मार्क्सवादियों में क्रान्ति के हिंसात्मक या अहिंसक रूप पर भी विचार विभिन्नता रहीं और सर्वहारा शासन के लोकतंत्र होने पर भी।

राज्य का विलीनीकरण

(Withering away of State)

साम्यवादी विचारधारा के अनुसार क्रान्ति का लक्ष्य सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र की स्थापना

---

31. प्रभुदत्त शर्मा, आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास, पृ. 671
32. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 782
33. वही, पृ. 781

नहीं वरन् इसका अन्तिम लक्ष्य है राज्य का विलीनीकरण या राज्य का अन्त। मार्क्स के अनुसार सर्वहारा के अधिनायक तंत्र की अवस्था अस्थायी होगी। "श्रमिक वर्ग क्रान्ति के द्वारा पूँजीवादी राज्य को उखाड़ देगा। इसके बाद वह संक्रमणकालीन राज्य की स्थापना करेगा। यह राज्य सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद होगा। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों श्रमिक वर्ग सच्चे साम्यवाद की परिस्थितियाँ पैदा करता जायेगा त्यों-त्यों यह राज्य अथवा अर्द्धराज्य धीरे-धीरे लुप्त होता जायेगा।"[34]

सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र के माध्यम से जिस साम्यवादी समाज की स्थापना होगी उसमें वर्ग संघर्ष समाप्त हो जायेगा। समाज में केवल एक ही वर्ग श्रमिक वर्ग अस्तित्व में होगा जहाँ आर्थिक विषमता समाप्त हो चुकी होगी क्योंकि इस समाज में वितरण का यह सिद्धान्त अपनाया जायेगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करें और उसको उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाये। (From each according to one's ability and to each according to one's needs) अतः मानव पर एवं उत्पादन पद्धति पर नियंत्रण के लिये राज्य की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

मार्क्सवादी राज्य को सामाजिक विकास में एक बाधक शक्ति के रूप में देखते है न कि एक सहायक शक्ति के रूप में। इतिहास इस बात का साक्षी है कि राज्य के द्वारा शासक वर्ग ने हमेशा अपनी इच्छा जनता पर लादी है और आर्थिक सत्ता अपने ही पास कायम रखी है। शासक वर्ग ने अपने विचारों को ही काननू के रूप में लागू किया है।

कार्ल मार्क्स ने राज्य को एक वर्ग संस्था (Class Institution) के रूप में माना। राज्य का सम्बन्ध वर्गभेद और वर्ग शोषण से है। जब राज्य पर पूँजीपति वर्ग का आधिपत्य था उसने इसका प्रयोग अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये किया और जब राज्य की सत्ता पर सर्वहारा वर्ग का अधिकार होगा तब यह वर्ग पूँजीपतियों के क्रान्ति विरोधी कार्यों के दमन के लिये राज्य का प्रयोग करेगा। सर्वहारा वर्ग के इस अधिनायक तंत्र में पूँजीपति वर्ग समाप्त हो जायेगा। समाज में केवल एक वर्ग सर्वहारा वर्ग ही रह जायेगा। अतः वर्ग शोषणं भी समाप्त हो जायेगा। समाज के सभी सदस्यों के एक समान हित होंगे; परस्पर विरोधी हितों का कोई अस्तित्व नहीं रहेगा।

इस प्रकार के समाज में जहाँ वर्ग-विभेद नहीं होगा समाज पर शासन की कोई आवश्यकता नहीं होगी। केवल समाज के लिये आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण की प्रक्रिया के सुव्यवस्थित संचालन के लिये प्रशासन की आवश्यकता होगी। विषमता के अन्त हो जाने के कारण समाज के सदस्य स्वयं ही इस संचालन एवं प्रबन्ध का दायित्व वहन करेंगे, स्वयं ही अनुशासित होंगे। ऐसे समाज में मनुष्य पर किसी बाह्य नियंत्रण या बन्धन की आवश्यकता नहीं होगी और राज्य नामक शोषक संस्था स्वयं ही लुप्त

---

34. वही, पृ. 784

हो जायेगी। एंगिल्स का यह कहना है कि ''राज्य समाप्त नहीं किया जायेगा वरन् स्वयं समाप्त हो जायेगा।''

यह खेद की बात है कि मार्क्स और एंगिल्स बहुत अधिक अस्पष्ट और भ्रमपूर्ण प्रतीत होते है जब वे कहते हैं कि राज्य धीरे–धीरे समाप्त हो जायेगा। मार्क्स Civil War in France में कहता है कि श्रमिकों को ऐसे लम्बे संघर्षों से गुजरना होगा जो मनुष्यों और परिस्थितियों को पूर्णतया बदल देंगे। लेनिन भी मार्क्स के राज्य के अन्त विचार को काल्पनिक नहीं मानता है। परन्तु वास्तव में ''राज्य के समाप्त हो जाने का विचार काल्पनिक क्षेत्र से सम्बन्धित है एवं उसी तरह से अव्यवहारिक है जिसकी कि मार्क्स दूसरों के विचारों में निन्दा करता है।''(35)

मार्क्स के विचार के विपरीत सोवियत रूस में साम्यवाद की स्थापना के सात दशक बाद भी राज्य संस्था विलुप्त नहीं हुयी और न ही उसका अन्त समीप दिखायी दिया। बल्कि वहाँ दल के साथ राज्य की स्थिति अधिकाधिक सुदृढ़ होती दिखायी दी। इसके अतिरिक्त आधुनिक समाजवादी विचारधारा के अनुसार भी राज्य संस्था मानवीय प्रकृति के अनुकूल है एवं उस पर अंकुश रखने के लिये राज्य को आवश्यक माना जाता है। सोवियत रूस में भी साम्यवाद ने राज्य को इतना शक्तिशाली बना दिया कि वहाँ राज्य ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र को कठोर नियंत्रण में रखा और वहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी समाप्त कर दी गयी।

विचारकों का यह तर्क है कि सोवियत संघ संक्रमण काल से गुजर रहा था। वहाँ पूर्ण साम्यवाद की स्थापना में अभी देर थी। अतः सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र के अधीन राज्य संस्था का अस्तित्व आवश्यक था।

वास्तव में राज्य के विलीनीकरण के विषय में मार्क्स और एंगिल्स स्वयं अस्पष्ट थे कि इसमें कितना समय लगेगा। सन् 1874 में एंगिल्स ने कहा कि सामाजिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप राज्य का अन्त हो जायेगा क्योंकि सभी सार्वजनिक कार्य राजनैतिक नहीं वरन् प्रशासकीय हो जायेंगे। सन् 1977 में वह कहता है कि श्रमजीवी वर्ग उत्पादन के साधनों को राज्य के स्वामित्व के अधीन कर देंगे एवं राज्य को समाप्त कर देंगे। पुनः कुछ वर्ष बाद वह लिखता है कि जब उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण हो जायेगा मनुष्य राज्य के नियंत्रण से स्वतंत्र होगा। ऐसे में ''राज्य की सम्पूर्ण मशीनरी प्रचीनताओं का अजायबघर मानी जायेगी।'' पर वह यह भी स्वीकार करता है कि ऐसी स्थिति शीघ्र नहीं एक लम्बे समय बाद आयेगी। पर यह समय कितना लम्बा होगा यह अस्पष्ट है। अतः वास्तविक राज्य के समाप्त होने का विचार अव्यवहारिक ही प्रतीत होता है। मार्क्स का विचार कि 'राज्य का विलीनीकरण सुनिश्चित है' और सोवियत संघ में राज्य का शक्तिशाली और सुदृढ़ होते जाना दो बातें परस्पर विरोधी हैं। यह साम्यवादी विचार को स्पष्ट चुनौती है।

---

35. C. L. Wayper, Political Thought, P. 209

अन्तर्राष्ट्रीयता बनाम राष्ट्रीयता एवं उपराष्ट्रीयता

(Internationalism Versus Nationalism and Sub-Nationalism)

मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास प्रकट किया गया है। इस दर्शन में राष्ट्रीयता को कोई स्थान नहीं दिया गया है। मार्क्स ने समाजवादी क्रान्ति का चित्रण एक अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति के रूप में किया है। क्रान्ति के सम्बन्ध में मार्क्स की परिकल्पना यही थी कि दुनिया के समस्त देशों में क्रान्ति एक साथ होगी। उन्होंने यह सिद्धान्त भी प्रस्तुत किया कि "श्रमिकों का कोई देश नहीं होता।" "श्रमिक वर्ग की कोई पितृभूमि नहीं होती।"[36]

मार्क्स के अनुसार प्रत्येक देश में श्रमिक वर्ग सबसे पहले अपने देश में पूँजीपति वर्ग की शक्ति को नष्ट करेगा। जब समस्त देशों में पूँजीपति वर्ग के हाथों से शक्ति श्रमिक वर्ग के हाथों में आ जायेगी, सर्वहारा वर्ग के शासन की स्थापना होगी तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिक आन्दोलन को प्रोत्साहित किया जायेगा। "जैसे–जैसे राष्ट्रों के अन्तर्गत वर्गों के भेदभाव मिटते जायेंगे वैसे–वैसे एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र के प्रति शत्रुता की भावना भी समाप्त हो जायेगी।"[37] मार्क्स और एंगिल्स का मूल तत्व था वर्ग न कि राष्ट्रीयता।[38]

परन्तु इस मार्क्सवादी सिद्धान्त के प्रतिकूल रूस में क्रान्ति के दौरान एवं उसके बाद भी राष्ट्रवाद की भावना बल पकड़ती गयी। एक ओर जारशाही की रूसीकरण की नीति के परिणामस्वरूप रूस में राष्ट्रीयता की भावना बलवती होती गयी तो दूसरी ओर प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ में योरोप के देशों द्वारा प्रचारित 'स्वनिर्णय के अधिकार' और "एक राष्ट्र एक राज्य" के सिद्धान्तों ने इस राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक दृढ़ बनाया।

यद्यपि लेनिन ने बराबर इस बात पर जोर दिया कि श्रमिकों को युद्ध में शामिल नहीं होना चाहिये क्योंकि युद्ध साम्राज्यवादी है। परन्तु अन्ततः राष्ट्रीयता को स्थान देने के लिये लेनिन को विवश होना पड़ा। 1917 की क्रान्ति के काफी समय पहले ही लेनिन ने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रत्येक राष्ट्रीय समूहों को स्वनिर्णय का अधिकार दिया जायेगा साथ ही अपना स्वतंत्र राज्य बनाने का भी अधिकार होगा। ऐसा लेनिन ने दो उद्देश्यों को सामने रखकर किया था प्रथम–राष्ट्रीय समूहों में आन्दोलन प्रारम्भ हो जाने से जार शासकों की शक्ति कम हो जायेगी। द्वितीय–राष्ट्रों को स्वायत्तता देने से श्रमिकों का भी उत्साह बढ़ेगा।

फिर भी लेनिन का विचार था कि स्वायत्तता प्राप्त करने के बाद ये राष्ट्र स्वयं ही एक दूसरे के

---

36. Manifesto of the Communist Party, P. 70
37. वही
38. Subrata Mukherjee, Essays in Marxist Theory and Practice, P. 14

साथ निकटता की स्थापना करेंगे। संकुचित राष्ट्रीयता के परे रखेंगे। लेनिन के ही शब्दों में, "हम इनका ऐच्छिक मिलन या मेल चाहते हैं, बलात्मक मेल नहीं।"[39] इस प्रकार रूस के राष्ट्रीय, समूहों ने मार्क्सवाद की अन्तर्राष्ट्रीयता के स्थान पर रूस में राष्ट्रीयता एवं उप राष्ट्रीयता की भावना को मान्यता दिलायी।

स्टालिन ने 'एक राष्ट्र में समाजवाद के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया एवं इसके परिणामस्वरूप भी रूसी राष्ट्रवाद का विकास हुआ। इस राष्ट्रवाद की भावना प्रकाश सबसे पहले स्टालिन द्वारा फरवरी, 1931 में दिये गये एक भाषण में किया गया। स्टालिन ने कहा कि रूस जब भी पराजित हुआ अपनी सैनिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, औद्योगिक एवं कृषि सम्बन्धी पिछड़ेपन के कारण ही हुआ। हम उन्नत राष्ट्रों से 50 या 100 वर्ष पीछे है। स्टालिन ने जनता को देश की उन्नति के लिये श्रम करने एवं द्वितीय विश्व युद्ध के समय रूस की विजय के लिये शक्ति लगाने के लिये पुकारा। स्टालिन के युद्धोत्तर कालीन भाषणों में रूसी राष्ट्रवाद की झलक दिखायी पड़ती है।

राष्ट्रीयता की भावना ने ही रूस मे संघवाद को प्रोत्साहित किया और उप राष्ट्रीयताओं को भी। मार्क्सवाद सिद्धान्त; संघवाद का विरोधी है। क्योंकि संघ आर्थिक एकता को कम करता है। परन्तु देश की उस समय की परिस्थितिओं को देखते हुये लेनिन ने संघवाद को स्वीकार किया। स्वायत्त राष्ट्रों के संघ की स्थापना के बाद भी सोवियत संघ में राष्ट्रीयता एवं उप राष्ट्रीयता की समस्या निरन्तर बनी रही। इसका मुख्य कारण यह है कि रूस एक अनेक भाषा एवं संस्कृतियों का देश है। यहाँ 110 के लगभग राष्ट्रीयताओं का अस्तित्व है। इन राष्ट्रीय समूहों में सबसे अधिक जनसंख्या रूसिओं की थी जो सोवियत संघ की कुल जनसंख्या का लगभग 3/4 हैं। अन्य लगभग 60 समूहों की जनसंख्या कुछ हजार तक सीमित है। इनमें उच्च्य प्रकार एवं निम्न प्रकार की सभ्यता भी पायी जाती है।

1917 की क्रान्ति के बाद भी रूसी राष्ट्रीयता का सोवियत संघ के शासन में प्रभुत्व एवं वर्चस्व होने के कारण अन्य राष्ट्रीय समूह अपने को उपेक्षित महसूस करते रहे एवं उनमें विरोधी आवाजें भी उठती रही। इससे पूर्व निरंकुश जार शासकों का भी प्रयास सम्पूर्ण देश को रूसी संस्कृति में ढालने का रहा।

"सोवियत संघ के मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों ने यह दावा किया था कि उन्होंने धर्म, जाति और भाषा के भेद से पैदा होने वाली सब समस्यायें दूर कर ली है और सोवियत संघ के सब नागरिक इन सब भेदों से ऊपर उठकर अपनी एक नयी राष्ट्रीय छवि देखने लगे है। यह दावा कितना झूठा था इसे अजर बैजान के मुसलमानों और आर्मीनिया के ईसाईयों के बीच हुये हिंसक संघर्ष ने दिखा दिया था।"[40] दीर्घकाल तक साम्यवादी शासन के अधीन रहने के बाद भी विभिन्न गणराज्यों की आबादी के जीवन स्तर

---

39. Lenin, V.I. : Collected Works, Vol. IXX, P.-228

40. बनवारी, दुनिया में आज भी होड़ तो जातीय ही है, जनसंत्ता, 12 फरवरी 1992

में काफी अन्तर बना रहा। अन्य गणराज्य जैसे जार्जिया और अवकाजिया, तजाकिस्तान, किर्गजिया, उजबेकिस्तान, कजाकिस्तान आदि के मध्य में संघर्ष और तनाव की स्थिति प्रायः बनी रही।

सोवियत संघ में रूसी राष्ट्रीयता के लोगों को भी यह लगता रहा कि संघ को अनेक प्रान्तों का बोझ उठाना पड़ रहा है। जो रूस के आगे बढ़ने के मार्ग में बाधक है। क्योंकि स्लाव इलाके के लोग जितनी तेजी से विकास कर रहे है। अन्त प्रान्तों में विशिष्ट परिस्थितियों के कारण आर्थिक विकास उतनी तेजी से नहीं हो पा रहा है। साथ ही साम्यवाद न तो स्लाव लोगों की ईसाईयत को कम कर पाया और न वह मध्‌य एशिया के लोगों को इस्लामी उत्साह में कोई कमी ला पाया।

एक और तत्व है जिसने रूस में उप राष्ट्रीयता के विकास में सहायक एवं भौतिक प्रगति में बाधक भूमिका निभायी वह है मुस्लिम आबादी में तेजी से विकास। "अगर किसी देश की एक जाति भौतिक प्रगति में आगे बढ़ती जा रही हो और दूसरी जाति जनसंख्या में तो कई तरह के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक अंसतुलन पैदा होना स्वाभाविक ही है।[41] उनमें भावनात्मक विभेद मौलिक रूप से विद्यमान तो थे ही इस असंतुलन ने उप राष्ट्रीयताओं को अधिक प्रोत्साहित किया। सोवियत संघ राष्ट्रीयता एवं उप राष्ट्रीयता के वैचारिक विभेद का अन्त तक सामना करता रहा। गणराज्यों के मध्य पारस्परिक विद्वेष एवं तनाव में उन्हें संघ से पृथक होने की ओर प्रोत्साहित किया। साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन को सोवियत संघ की राष्ट्रीयता एवं उप राष्ट्रीयता की धारणा ने एक ऐसी चुनौती दी जिसने संघ को विघटित किया।

पूँजीवाद का विरोध बनाम शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व

(Anti Capitalism Versus Peaceful Co-existance)

साम्यवाद पूँजीवाद का विरोधी है। मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था की तीव्र आलोचना की है। पूँजीवाद असमानता का पोषक एवं श्रमिकों की शोषक व्यवस्था है। पूँजीवाद के इस दोषपूर्ण पक्ष के अलावा लेनिन ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मार्क्सवाद के कुछ वृहत्तर पक्षों पर भी विचार किया। इन परिस्थितियों में उसने साम्राज्यवादी पूँजीवाद के सिद्धान्त का निर्माण किया। उसने युद्ध को पूँजीवाद के विकास में चरण के रूप में देखा और इसे पूँजीवाद का साम्राज्यवादी चरण कहा।

साम्राज्यवाद सामान्य पूँजीवाद की मुख्य विशेषताओं से पूर्ण है और उसका विकास पूँजीवाद की सीधी परम्परा में हुआ है। लेकिन, पूँजीवाद अपने विकास की एक बहुत उच्च और निश्चित अवस्था में साम्राज्यवादी बना। इस साम्राज्यवादी अवस्था में युद्ध अनिवार्य है। लेनिन ने प्रथम विश्वयुद्ध को इस प्रकार

---

41. बनवारी, दुनिया में आज भी होड़ तो जातीय ही है, जनसत्ता, 12 फरवरी 1992

के साम्राज्यवादी युद्ध के रूप में देखा। युद्ध के ही दौरान रूस में साम्यवादी क्रान्ति सफल हुयी। लेनिन के पूँजीवाद -के विकास से सम्बन्धित सिद्धान्त में एक मुख्य बात यह थी कि उसे शीघ्र ही संसारव्यापी क्रान्ति की आशा थी।(42)

साम्यवाद की अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति की धारणा के कारण भी इसमें राष्ट्रवाद की धारणा का विरोध किया गया। इस धारणा के अनुसार पूँजीवाद साम्यवाद का घोर शत्रु है। दोनों में संघर्ष अवश्यम्भावी है। दोनो का अस्तित्व साथ–साथ सम्भव नहीं है। यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध में रूस ने जर्मनी के विरूद्ध मित्र राष्ट्रों का साथ दिया परन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में रूस का अवतरण साम्यवादी खेमे की प्रचण्ड शक्ति के रूप में हुआ। अमेरिकी पूँजीवादी देशों का नेता था। इस रूप में साम्यवादी ध्रुव के प्रमुख रूप में रूस एवं पूँजीवादी ध्रुव के प्रमुख के रूप में अमेरिका के मध्य कटुता एवं तनाव के सम्बन्ध में निरन्तर वृद्धि होती रही। दोनों के मध्य परस्पर विरोधी प्रचार का जो दौर चल पड़ा इससे विश्व में एक संघर्षपूर्ण स्थिति उत्पन्न हुयी।

स्टालिन के शासनकाल में रूस की अमेरिका विरोधी नीति ज्यादा उग्र हो गयी जिससे शीतयुद्ध की स्थिति भी तीव्र हुयी। उसने केवल अमेरिका ही नहीं वरन् समस्त पूँजीवादी देशों के प्रति एक अलगाववाद की नीति अपनायी। साम्यवादी ध्रुव एवं पूँजीवादी ध्रुव के मध्य दूरी बढ़ती गयी। जबाव में अमेरिका के द्वारा भी विभिन्न मुद्दों को लेकर स्टालिन की नीति को करारा जबाव दिया गया। रूस की पूँजीवाद विरोधी यह कट्टर नीति तब तक उग्र रूप में जारी रही जब तक स्टालिन सत्तारूढ़ रहा।

रूस में खुश्चेव के सत्ता में आने के बाद इस नीति में परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। खुश्चेव की अमेरिका यात्रा से जहाँ दोनो ध्रुवों के मध्य मित्रता का वातावरण बना। वहीं अन्य विभिन्न विषयों में तनाव के होते हुये भी खुश्चेव ने पूँजीवादी देशों के साथ, विशेषकर अमेरिका के साथ नया सम्बन्ध बनाने का प्रयास किया। रूस ने तत्कालीन परिस्थितियों में पूँजीवादी देशों के साथ युद्ध की अनिवार्यता की स्थिति को स्वीकार नहीं किया। उसने यह भी कहा कि आज के युग में साम्यवाद की स्थापना के लिये शान्तिपूर्ण साधनों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

खुश्चेव ने अपनी दूरदर्शितापूर्ण नीति के द्वारा यह कहना चाहा कि आज की अणुशक्ति के युग से यथासम्भव दूर रहना ही श्रेयस्कर है। अतः विश्व में साम्यवाद के विस्तार के लिये लोकतांत्रिक साधनों का भी प्रयोग किया जा सकता है। खुश्चेव ने अपनी विदेश नीति के द्वारा भी शान्ति की नीति का प्रतिपादन किया एवं शीतयुद्ध की स्थिति में शिथिलता लाने की दिशा में प्रयास किया।

---

42. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 774

साम्यवादी दल के बीसवें कांग्रेस में खुश्चेव द्वारा घोषित नीति साम्यवाद के लिये चुनौती स्वरूप थी। खुश्चेव ने इस कांग्रेस में विश्व को एक और बड़े युद्ध की संभावना से बचाने के लिये पृथक–पृथक व्यवस्थाओं वाले देशों के मध्य शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व की नीति की संभावना प्रकट की।[43] उसने कहा कि यद्यपि विश्व पूँजीवादी और समाजवादी दो ध्रुवों में विभाजित हो चुका है एवं उनके मध्य की प्रतियोगिता और विरोध उनके आर्थिक, राजनैतिक और वैचारिक जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करते है। अतः शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व का सिद्धान्त सभी राष्ट्रों के लिये हितकारी है।

इस प्रकार साम्यवादी दल के "दस्तावेजों में अलग–अलग समाज व्यवस्थाओं वाले राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व, एक और विश्व युद्ध टालने की संभावना"[44] का उल्लेख साम्यवाद की पूँजीवादी देशों से विरोधिता एवं पृथकता की नीति को एक बड़ी चुनौती थी। खुश्चेव के बाद ब्रेझनेव आदि शासकों ने भी वैचारिक परिवर्तन के इस आयाम को स्वीकृति दी थी।

✦✦✦

43. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी, इतिहास के चरण, पृ. 54

44. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी, इतिहास के चरण, पृ. 54

तृतीय अध्याय

सोवियत साम्यवादी आन्दोलन के सोपान एवं उनके समक्ष चुनौतियाँ

- ✦ प्रारम्भिक काल (1917—1924)
- ✦ सत्ता संघर्ष काल (1924—1953)
- ✦ संशोधन का काल (प्रथम) (1953—1964)
- ✦ संशोधन का काल (द्वितीय) (1964—1986)
- ✦ संशोधन का काल (तृतीय) (1986—1991)

तृतीय अध्याय

सोवियत साम्यवादी आन्दोलन के सोपान एवं उनके समक्ष चुनौतियाँ

(Stages of Soviet Communist Movement and Challenges to them)

विश्व के इतिहास में सन् 1789 की फ्रांसिसी क्रान्ति के उपरान्त दूसरी महत्वपूर्ण घटना सन् 1917 की रूसी क्रान्ति थी जिसने रूस में लम्बे समय से चले आ रहे जार वंश के निरंकुश शासन को समाप्त किया। रूस में सन् 1917 को साम्यवादी क्रान्ति की सफलता एवं जार वंश के अधिनायकतंत्र की समाप्ति के बाद सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की स्थापना बहुत सरलता से नही हुई। साम्यवाद की अपनी व्यवहारिक यात्रा के दौरान उसके सामने अनेक पड़ाव आये और विविध सोपानों को विविध चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

''अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन का इतिहास इस तथ्य का गवाह है कि जहां संशोधनवादी विचारात्मक भटकावों ने मार्क्सवाद लेनिनवाद से इसकी क्रान्तिकारी विषय वस्तु का हरण किया है। वही मतांधता ने इसके वैज्ञानिक आधार का। मानव प्रगति के अभी तक अचिन्हित मार्ग पर चलते हुये समाजवाद को अनेक रुकावटों व कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है।''(1)

रूस में निरंकुश राज्य की परम्परा बहुत प्राचीन थी एवं क्रान्ति की परम्परा भी नवीन नहीं थी। ''रूस की क्रान्तिकारी परम्परा का मूल्य रूसी आत्मा में नहीं वरन् जारशाही रूस के सामाजिक एवं राजनीतिक ढाँचे में ढूँढ़ा जा सकता है।''(2) जब निरंकुश तन्त्र का अत्याचार चरम सीमा पर पहुँचता है तो उसका स्वभावतः विरोध भी होता है। विरोध के दमन के लिये तानाशाह द्वारा कुछ सुधारात्मक कदम भी उठाये जाते हैं। 1917 की क्रान्ति से पूर्व रूस में ऐसा कई बार हुआ।

''बीसवीं शती के अन्तिम दशकों में रूस में आन्दोलन की तीन धारायें देखने को मिलती हैं।''(3) प्रथम, मध्यवर्गीय आन्दोलन जिसका नेतृत्व बौद्धिक एवं शिक्षित वर्ग कर रहा था जो देश में उदारवादी संवैधानिक सुधार चाहता था। द्वितीय, एक क्रान्तिकारी कृषि आन्दोलन, जो पापुलिस्ट नाम से जाना गया एवं

---

1. सीताराम येचुरी, प्रस्तावना, सोवियत संघ का पतन, हरपाल बराड़, पृ. 2
2. L. G. Churchward, Contemporary Soviet Govt.
3. Coker, Recent Political Thought, P. 149

कृषकों से सम्बन्धित था। तृतीय, मार्क्सवादी, औद्योगिक समाजवादी आन्दोलन जो असन्तुष्ट श्रमिक वर्ग से सम्बन्धित था। उस समय रूस में औद्योगिक विकास त्वरित गति पर था। वेतनभोगी श्रमिकों की स्थिति अत्यन्त खराब थी। कभी कभी शासन ने कुछ सुधारात्मक कदम उठाये। पर वे अपर्याप्त थे और श्रमिकों को सन्तुष्ट करने में असमर्थ थे। अतः उनमें क्रान्तिकारी विचारों का विस्तार होता गया और उनके हित में संगठित दल अस्तित्व में आये।

इन्हीं दिनों लेनिन साइबेरिया के निर्वासन से रूस वापस आये। उन्होंने अपनी पुस्तक 'रूस में पूंजीवाद का विकास' में सिद्ध किया कि रूस में वह स्थिति विद्यमान है जिसमें मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति सम्भव है। लेनिन ने रूस में श्रमिकों एवं कृषकों को संगठित करके उनकी दशा में सुधार लाने एवं जमींदारी व पूँजीवादी प्रथा के अन्त करने की घोषणा की। असन्तुष्ट जनता का समर्थन लेनिन को आसानी से मिला और 7 नवम्बर, 1917 को रूस में साम्यवादी क्रान्ति सफल हुयी।

यह सफलता जार की तानाशाही की नीति का स्वाभाविक परिणाम था। परन्तु "इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिन्होंने नवम्बर 1917 से रूस पर शासन किया, मार्क्स के ही दीक्षित शिष्य थे।"[4] इनमें प्रमुख थे लेनिन, ट्रॉटस्की, स्टालिन आदि। लेनिन 1917 से लेकर अपनी मृत्यु (1924) तक सत्ता में रहे। लेनिन ने मार्क्सवाद को रूस में यथार्थवादी धरातल पर परखने का दायित्व अपने कन्धों पर लिया था। स्वाभाविक था कि इस कठिन दायित्व के निर्वाह में उनके सामने निरन्तर चुनौतियाँ आती रही।

प्रारम्भिक काल (1917—1924)

(Early Period)

7 नवम्बर को आयोजित अखिल रूसी कांग्रेस ने, जो रूस के समस्त राजनीतिक दलों का एक सम्मेलन था, रूस का राजनीतिक नेतृत्व लेनिन एवं बोल्शेविक दल को सौंप दिया। परन्तु बोल्शेविको के सामने अभी भी मेंशेविकों की चुनौती बाकी थी। अस्थायी सरकार द्वारा निर्मित संविधान सभा में बोल्शेविकों को केवल 25 प्रतिशत प्रतिनिधित्व ही प्राप्त था। अतः लेनिन ने उसे भंग कर दिया। नयी सोवियत में बोल्शेविक को स्पष्ट बहुमत मिला बोल्शेविक दल का नाम बदलकर 'साम्यवादी दल' रख दिया गया। दल के नेतृत्व में सर्वप्रथम सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की स्थापना हुई। नयी सरकार ने एक नयी सेना का निर्माण किया जिसे "कृषकों की एवं श्रमिकों की लाल सेना" कहा गया।

इस समय लेनिन की समाजवादी सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी देश की राजनैतिक और आर्थिक पुनर्गठन की। रूस में नयी सरकार को स्थायीत्व देने के लिये समाजवादी संविधान का निर्माण

4. Coker, Recent Political Thought, P. 147

किया गया। समाजवादी दल के केन्द्रीय कार्यकारिणी ने संविधान समिति नियुक्त की।[5] समिति द्वारा निर्मित संविधान को सोवियत की पाँचवी कांग्रेस ने अपनी स्वीकृति दे दी। रूस का नया नामकरण हुआ "रूसी समाजवादी संघीय सोवियत गणराज्य" (Russian Socialist Federal Soviet Republic) नया संविधान 10 जुलाई 1918 से लागू हुआ। संविधान द्वारा स्थापित समाजवादी राज्य में समस्त प्रकार के शोषण को समाप्त कर दिया गया। सभी प्राकृतिक साधनों का राष्ट्रीयकरण भी किया गया। पूँजीवाद तथा जमींदारी प्रथा का अन्त किया गया और समस्त शक्ति सर्वहारा वर्ग को हस्तान्तरित कर दी गयी।

नया शासन संघात्मक था। जिसमें शामिल इकाइयों को गणराज्य कहा गया। संविधान द्वारा स्थापित सोवियतों की कांग्रेस और केन्द्रीय कार्यपालिका समिति को समस्त विधायी, वित्तीय तथा कार्य पालिका शक्तियाँ प्रदान की गई। सोवियतों की कांग्रेस केन्द्रीय विधानसभा थी जिसका कार्य था केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के प्रतिवेदनों पर स्वीकृति देना। अखिल रूसी सोवियतों की कांग्रेस द्वारा केन्द्रीय कार्यकारिणी का चुनाव होता था। केन्द्रीय कार्यकारिणी की आन्तरिक समिति को प्रेनिडियम कहा गया। केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के आदेशों के अनुसार शासन चलाने के लिये शासन के विभिन्न विभागों के अध्यक्षों को लेकर जन प्रबन्धिक परिषद (Council of People's Commissions) की भी स्थापना की गयी। एक संघीय सर्वोच्च न्यायालय की भी स्थापना की गई जिसे न्यायिक अधिकार दिये गये।

नयी शासन व्यवस्था सोवियत प्रणाली पर आधारित थी। अखिल रूसी सोवियतों की कांग्रेस के अधीन प्रान्तीय एवं स्थानीय सोवियतें थीं। उच्च स्तर पर सोवियतों को चुनाव अप्रत्यक्ष रखा गया था। लेनिन ने इस व्यवस्था को "कम खर्चीला, अधिक लचीला और श्रमिकों तथा कृषकों के लिये अधिक सुगम्य बताया।"[6]

नयी सरकार के सामने एक और चुनौती थी विरोधियों का सामना। सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र को सुदृढ़ एवं मजबूत बनाने के लिये समाज में उस वर्ग को समाप्त करने का लक्ष्य बनाया गया जो नयी व्यवस्था का विरोधी था। पूँजीपतियों, व्यक्तित्व व्यापारियों तथा पादरियों को मताधिकार से वांचित कर दिया गया जो पहले निरंकुश सम्राट के साथ थे। चर्च को भंग कर दिया क्योंकि साम्यवादियों को धर्म पर विश्वास नहीं था।

संविधान द्वारा सबके लिये काम करने को अनिवार्य बना दिया गया और कहा गया कि "जो काम नहीं करते वह खायेंगे भी नहीं"(He who does not work, neither shall he eat) [7]

---

5. संविधान समिति के अध्यक्ष थे सेडिलोव; बुखारिन, स्टेलिन आदि इसके सदस्य थे।
6. Lenin, Quoted by J. Stalin, Problems of Leninism, P. - 637-38.
7. Article 12 of Russian Constitution.

इस व्यवस्था को व्यवहारिक रूप देने के लिये रूस में पुलिस राज्य की स्थापना हुयी। जिस राज्य के अधीन नागरिक स्वतंत्रता व नागरिक अधिकारों का दमन किया गया। सेन्सरशिप लागू हुआ व मजदूर संघ प्रतिबन्धित किये गये। लेनिन एवं उसके सहायकों की दृष्टि से सर्वाहारा वर्ग के अधिनायक तन्त्र को स्थायी बनाने के लिये यह आवश्यक था।

गृहयुद्ध (Civil War)

इन दिनों जार शासन के कुछ समर्थकों तथा क्रान्ति विरोधी राजनीतिक नेताओं ने संगठित होकर लेनिन एवं उसके समर्थकों के विरूद्ध सशस्त्र अभियान चलाया। इन दक्षिण पंथियों को मित्र राष्ट्रों को समर्थन प्राप्त था यह एक बहुत बड़ी चुनौती थी। लगभग 3 वर्षों तक इन दक्षिण पंथी श्वेत शक्तियों तथा वामपंथी लाल सेना के बीच गृहयुद्ध चलता रहा। लाल सेना ने अन्ततः इन विरोधियों को कुचलने में सफलता पाई साम्यवादी शासन के दौरान इस चुनौती के सफल दमन से रूस में साम्यवादी दल को मजबूती मिली और सोवियत संघ की शक्ति में भी वृद्धि हुई।

रूस की आर्थिक दशा में सुधार लाने के लिये देश में नयी आर्थिक नीति लागू की गयी जिसमें जमीन तथा उत्पादन के समस्त साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त कर दिया गया केवल उत्पादन के कुछ ही साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व को स्वीकारा गया। अधिकांश साधन सरकार के नियंत्रण में थे। राष्ट्रीय आर्थिक नीति के अन्तर्गत ''उन्होंने निरन्तर सुविचारित ढंग से 'मिश्रित' आर्थिक पद्धति को अपनाया जिसमें व्यक्तिगत उद्यम, सार्वजनिक उद्यम एवं दोनों के मिश्रण थे।''[8] कृषकों के लिये यह अनिवार्य था कि कुछ उपज कर के रूप में शासन को दें एवं शेष उपज वे स्वतंत्र रूप में बेच सकते थे।

लेनिन द्वारा 1921 में लागू नवीन आर्थिक नीति का दल के कांग्रेस के विरुद्ध कुछ लोगों ने विरोध किया। उन्होंने नीति को समाजवादी व्यवस्था के विरुद्ध बताया जबकि लेनिन ने समाजवादी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिये ही नया आर्थिक नीति बनायी थी इस चुनौती का सामना करने में और अन्त में कांग्रेस द्वारा इसे स्वीकृत कराने में लेनिन सफल हो गया। रूस में कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में भारी प्रगति हुई और जनता के जीवन स्तर का भी पर्याप्त विकास हुआ।

रूस की सफलता का रहस्य था आदर्श के प्रति उनकी सच्ची निष्ठा। ''विश्व में शायद ही कोई देश ऐसा हो जहाँ एक आदर्श के प्रति इतनी निष्ठा से शासन चलाया जाता हो .... यद्यपि उन्होंने कार्यपद्धति में परिवर्तन किया, क्योंकि वे आदर्शवादी होने के साथ ही यथार्थवादी भी थे।''[9]

---

8. Coker, Recent Political Thought, P. 158
9. वही, पृ. 157

साम्यवादी व्यवस्था को लागू करते समय लेनिन को व्यवहारिक स्तर पर अनेक संशोधन करने पड़े, निरन्तर अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। यद्यपि मार्क्स के अनुसार रूस में क्रान्ति के अनुकूल परिस्थिति नहीं थी। फिर भी लेनिन ने वहाँ क्रान्ति को सफल बनाया और इस सिद्धान्त को गलत सिद्ध किया कि पूँजीवाद के चरम विकास पर ही साम्यवादी क्रान्ति सफल होगी।

लेनिन ने अशिक्षित एवं असंगठित श्रमिक वर्ग में जागरूकता लाने के लिये एक सुसंगठित एवं जागरूक साम्यवादी दल को आवश्यक माना। तत्कालीन रूस में साम्यवादी दल ने न केवल क्रान्ति के दौरान श्रमिकों का मार्ग निर्देशन किया। वरन् साम्यवादी दल के नेतृत्व एवं नियंत्रण में ही वहाँ सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तन्त्र की स्थापना हुई जो वास्तव में साम्यवादी दल का ही अधिनायक तन्त्र था।

लेनिन ने रूस में लगभग सात वर्षों तक साम्यवादी व्यवस्था को चलाने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र के द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था का पूर्ण अन्त नहीं होता है राज्य का अस्तित्व बना रहेगा। लेनिन के शासनकाल में राज्य के अस्तित्व की समाप्ति के स्थान पर उसकी स्थिति और अधिक सुदृढ़ हो गयी। यद्यपि लेनिन को 1921 में आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा किन्तु नवीन विकसित तकनीकों के प्रयोग व नियोजित पद्धति द्वारा जल्दी ही रूस की जनता के जीवन स्तर में तेजी से सुधार आया।

उपरोक्त सभी चुनौतियों का सामना करते हुये लेनिन ने अनेक सफलतायें प्राप्त की "उसने जार के सैनिक शासन के अवशेषों के विरुद्ध लम्बे समय से चलते आ रहे गृह युद्ध को समाप्त किया और शासन की नयी संस्थायें स्थापित की।"[10] लेनिन ने नवीन व्यवस्था के विरोधी तत्वों का सफलतापूर्वक सामना किया जिससे पुरानी व्यवस्था के समर्थक समाप्त हुये एवं नयी व्यवस्था को मजबूती मिली। 1992 में लेनिन के नेतृत्व में साम्यवादी दल ने देश के लिये एक नयी संघीय योजना तैयार की। जिसे केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति ने 6 जुलाई 1923 को स्वीकृति दे दी। इसी बीच जनवरी 1924 में लेनिन का देहान्त हो गया।

सत्ता संघर्ष का काल (1924–1953)

(Period of Power Struggle)

(दलीय अधिनायकवाद से व्यक्तिगत अधिनायकवाद की ओर)

(From Dictatorship of Party to Personal Dictatorship)

1924 में नये संविधान द्वारा रूस में 'सोवियत समाजवादी गणतंत्रों के (Union of Soviet

---

10. Fall of Communism in Russia P. 1 (www.cyberessays.com/History/105.htm)

Socialist Republic) संघ' की स्थापना हुई। 31 जनवरी 1924 को अखिल संघीय सोवियतों की कांग्रेस ने इसे स्वीकृति दे दी। संविधान के क्रियान्वयन से पूर्व ही लेनिन की मृत्यु हो चुकी थी। उसकी मृत्यु के बाद लेनिन के दो प्रमुख सहयोगी एवं दल के नेता स्टालिन एवं ट्राटस्की के मध्य सत्ता प्राप्ति के लिये संघर्ष प्रारम्भ हुआ। स्टालिन दल की केन्द्रीय दल की समिति में एक प्रमुख व्यक्ति था और ट्राटस्की उसका प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी। दोनों के मध्य सैद्धान्तिक मतभेद तो थे ही और व्यक्तिगत भी। अन्तिम रूप से यह सत्ता का ही संघर्ष था। यह संघर्ष साम्यवादी व्यवस्था को चुनौती थी।[11]

इस सत्ता संघर्ष में स्टालिन, ट्रॉटस्की और उसके समर्थकों को पूरी तरह कुचलने के प्रयास में सफल हुआ। 1925 में स्टालिन ने ट्रॉटस्की को केन्द्रीय समिति से हटा दिया। 1927 में ट्रॉटस्की के समर्थक जिनोबीव और कामिनेव को भी उनके पद से हटाया गया। सत्ता के लिये यह संघर्ष 1924 से 1928 तक चला। सन् 1928 में स्टालिन ने ट्रॉटस्की को अज्ञातवास में भेज दिया। लगभग 10 साल बाद 1940 में स्टालिन के एक समर्थक ने उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार राजनीति एवं दल में अपने प्रतिद्वन्द्वियों का सफाया करके स्टालिन ने दल, राजनीति एवं शासन पर अपने व्यक्तिगत अधिनायक तंत्र की स्थापना कर ली। स्टालिन को निरन्तर शासन में विरोध का सामना करना पड़ा। 1930 में उसने अपने विरोधी रिकोव तथा तामरकी को भी पद से हटा दिया।

स्टालिन ने अपनी आर्थिक नीति में सामूहिक कृषि के कार्यक्रम को सबसे अधिक प्रमुखता दी। इसके परिणामस्वरूप देश में कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई परन्तु व्यक्तिगत रूप में कृषकों ने इसका विरोध किया। क्योंकि उन्हें इसका कोई लाभ नहीं मिला सत्ता में स्टालिन के विरोधी फिर से सर उठाने लगे। उनके विरोधी गतिविधियों को नष्ट करने का दौर तेजी से चलाया गया और राजनीतिक सफाई के इस दौर में 1930 तक सभी विरोधी जड़ से नष्ट कर दिये गये।

स्टालिन ने अपने व्यक्तिगत अधिनायक तंत्र की स्थापना करके जनता को भय के कारण अपनी स्तुति करने के लिये बाध्य किया। देश में स्टालिन की देवता के स्तर पर पूजा होती रही। "स्टालिन ने यह मिथक उत्पन्न किया कि वही आन्तरिक एवं बाह्य भय से देश का सर्वोच्च रक्षक है एवं समाजवादी सिद्धान्तों का संरक्षक है।"[12] स्टालिन के शासन काल में दल एवं शासन पर दलीय नेतृत्व का कठोर नियंत्रण लागू हुआ। शक्ति के केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त को चरम सीमा तक लागू किया गया। दल के बाहर व भीतर भी वह किसी आलोचना को सहन नहीं कर सकता था। स्टालिन ने दल के शुद्धिकरण की नीति अपनाई जिसे

---

11. Hallowell, J.H.-Sabine A History of Political Theory, P. 670
12. T. N. Kaul, From Stalin to Grovachev, P. 1

महाशुद्धिकरण (Great Purge) कहा गया। शुद्धिकरण के नाम पर उसने उस हर एक व्यक्ति को हटाया जो भी उसके मार्ग में बाधा रूप में आया। दल एवं शासन के सभी महत्वपूर्ण पदों पर वे ही लोग थे जो उसके समर्थक थे। 1939 तक लेनिन के मूल पोलिट ब्यूरो का केवल एक सदस्य स्वयं स्टालिन अपने पद पर रह गया था।(13)

इस प्रकार उसमें साम्यवादी दल के अधिनायक तंत्र के स्थान पर व्यक्तिगत अधिनायक तंत्र की स्थापना हो गयी एक और दल को एक कठोर सैनिक संगठन के रूप में स्थापित किया गया दूसरी ओर स्टालिन ने अपने को सर्वोच्च एवं कभी गलती न करने वाले नेता के रूप में स्थापित किया।'' दल का राजनीतिक एकाधिकार कठोर अधिनायक की व्यक्तिगत सर्वोच्चता में परिणित कर दिया गया था।''(14)

देश में सभी व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त कर दिया गया। राष्ट्रीयकरण एवं औद्योगीकरण की विशाल योजनायें लागू हुयी तथा सोवियत सेना की शक्ति में भी वृद्धि हुयी। इस अवधि में जनता को भारी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। देश में भोजन एवं दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं की कमी थी। इस कारण स्टालिन के विरोधी पुनः सक्रिय हो गये थे। ये विरोधी शासन की अधिनायक तंत्रवादी प्रवृत्तियों को समाप्त करने पर दबाव डाल रहे थे। स्टालिन ने एक संविधान आयोग बनाया पर स्वयं ही वह उसका अध्यक्ष था। 1934 में स्टालिन के प्रबल प्रतिद्वन्दी के रूप जो व्यक्ति उभरा वह किरोव था जो साम्यवादी दल की लेनिन ग्रांड इकाई का प्रथम मंत्री था। कुछ समय के भीतर ही उसकी हत्या कर दी गयी। देश में लाखों व्यक्ति देशद्रोह के नाम पर कैद कर लिये गये, जनता उत्पीड़ित की गयी एवं हजारों मार डाले गये। जनता एवं दल के लोग भयभीत थे, उनमें बिना कारण कैद किये जाने दहशत थी। प्रत्येक विदेशी सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था।

कठोर नियंत्रण एवं दमन की स्टालिन की यह नीति स्टालिन की मृत्यु के समय 1953 तक चलती रही। इसी अवधि में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ एवं युद्ध में स्टालिन के नेतृत्व में रूस ने जर्मनी को पराजित किया। युद्ध में विजय के अतिरिक्त स्टालिन ने देश में 1928 से पंचवर्षीय योजनायें लागू की थी। इन योजनाओं के द्वारा देश की सभी प्राकृतिक एवं आर्थिक साधनों का सदुपयोग हुआ और रूस तेजी से आर्थिक प्रगति की ओर बढ़ा। देश ने सामाजिक, शैक्षिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में उन्नति की। ''युद्ध के पश्चात् राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ हुयी साथ ही सोवियत सैनिक मशीनरी भी। सोवियत संघ एक महाशक्ति बन गया, एकमात्र संयुक्त राज्य अमेरिका ही इससे अधिक शक्तिशाली देश था।''(15)

---

13. Kahoe, A.M., Makers of 20th Century Europe, P. 33
14. Fainsod, How Russia is Ruled ?
15. Fall of Communism in Russia P. 2 (www.cyberessays.com/History/105.htm)

स्टालिन ने रूस को आर्थिक एवं सैनिक दोनों दृष्टि से बलशाली बनाया। स्टालिन ने सत्तारूढ़ होने के बाद साम्यवादी रूस की राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था को अपने विचार एवं आकांक्षाओं के अनुसार ढालना शुरू किया। "उसने अपने आपको साम्यवाद का सबसे अच्छा व्याख्याकार माना .... उसको सच्चा विश्वास था कि अपने देश रूस में पहले साम्यवाद की स्थापना अन्य देशों में साम्यवाद की स्थापना को सुनिश्चित करेगा।"(16) उसने साम्यवादी विचारधारा में अपने व्यक्तिगत चिन्तन के अनुसार अनेक परिवर्तन किये।

प्रथम, स्टालिन ने "एक देश में साम्यवाद" के सिद्धान्त को अपनाया। उसका तर्क था कि विश्व के अन्य देशों में साम्यवाद के प्रसार के पूर्व रूस में साम्यवादी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना प्रथम आवश्यकता है। "सम्पूर्ण विश्व के पूँजीवादी रहने पर भी एक देश में साम्यवाद की स्थापना करना सम्भव था। स्वयं रूस अपने बल पर इस कार्य को करने के लिये पर्याप्त समर्थ था।"(17) अतः रूस को शक्तिशाली बनाना पहली जरूरत है। साम्यवादी रूस के शक्तिशाली होने पर विश्व के अन्य देश भी साम्यवाद की ओर प्रेरित होंगे।

द्वितीय, स्टालिन ने साम्यवादी दल के अधिनायक तंत्र के स्थान पर व्यक्तिगत अधिनायक तंत्र की स्थापना.की। "स्टालिन द्वारा 'एक देश में समाजवाद' की नीति को अपनाने का सीधा परिणाम था रूस के अन्दर सर्वसत्तावादी राज्य का विकास जिसने दल की निरंकुशता को उतना स्वीकार नहीं किया जितना कि व्यक्ति की निरंकुशता को।"(18) फलस्वरूप उसने दल एवं शासन के केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त को लागू किया। स्टालिन के निरंकुश तंत्र की तुलना फासीवाद एवं नाजीवाद से भी की जाती है।

तृतीय, मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद के सिद्धान्त "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" का अर्थ स्टालिन ने संशोधित किया। उसका कहना था कि "प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" का अर्थ यह नहीं है कि सबको समान वेतन वरन् इसका तात्पर्य सबको उचित वेतन से है। स्टालिन के अनुसार "ऐसे समाजवाद से मार्क्स पूर्णतया अपरिचित है जिसमें प्रत्येक को समान वेतन मिले। वर्ग रहित समाज में भी वेतन निर्धारण श्रम के अनुसार होगा, आवश्यकता के अनुसार नहीं।"

चतुर्थ, महत्वपूर्ण सिद्धान्त जिसे स्टालिन ने प्रतिपादित किया यह राज्य के अन्त से सम्बन्धित था। स्टालिन का तर्क था हमें इस सिद्धान्त को वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये

---

16. T. N. Kaul, From Stalin to Gorvachev, P. 1
17. C. L. Wayper, Political Thought, P. 232
18. वही, पृ. 235

समझना होगा। इस समय रूस को उन पूँजीवादी देशों से खतरा है जो रूस के चारों ओर की सीमाओं में स्थित है। अतः ऐसी परिस्थिति में राज्य के अन्त की बात नहीं वरन् राज्य को 'एक अति शक्तिशाली राज्य' के रूप में बनाये रखने की जरूरत है।

अतः "उसने मार्क्सवाद के राज्य सम्बन्धी इस शास्त्रीय सिद्धान्त को त्याग दिया कि राज्य केवल शासक वर्ग का दमन अस्त्र है और वर्गों के अन्त होने के साथ साथ इसका भी अन्त हो जायेगा।"[19]

रूस के शासकों ने अपनी नीति एवं योजनाओं को लागू करने में बाधा उत्पन्न करने वालों के लिये सख्त दण्ड की व्यवस्था की। न केवल सुनियोजित ढंग से जनमत के नियमित किया गया वरन् उन्होंने अपने सिद्धान्तों को जनता पर थोपा; विरोधी विचारों का सख्ती से दमन किया। स्टालिन ने लगभग 25 वर्ष तक रूस की आन्तरिक नीति के क्षेत्र में अपनी निरंकुश शक्ति का प्रयोग किया।

इसी प्रकार विदेश नीति में भी उसने अपने समय के पड़ोसी देशों के प्रति कठोर नीति का पालन किया। उसने अपने शासन काल में विदेशों के प्रति गैर समझौतावादी रुख अपनाया जिससे शीत युद्ध को विश्व राजनीति में प्रोत्साहन मिला। उसकी विदेश नीति सैनिक एवं साम्राज्यवादी रही स्टेलिन की इस विदेश नीति को लौह आवरण की नीति कहा गया। उद्योग, व्यापार, विवाह नागरिकता के बारे में कठोर नीतियाँ लागू की गयी। रूस एवं दुनिया के अन्य देशों के मध्य एक लोहे की दीवार बना दी गयी। ठीक ही कहा गया है कि "रूस के साम्यवादी शासकों ने लौह दक्षता से शासन किया।"[20]

1924 में स्टेलिन के शासनकाल में लागू संविधान में सोवियत समाजवादी गणतंत्रों के संघ में इकाइयों को पृथक होने का अधिकार दिया जाना दिखावा मात्र था। व्यवहार में संघ अत्यन्त केन्द्रीकृत था। विधायकी शक्ति अखिल संघीय सोवियत कांग्रेस में निहित थी जिसके सत्र के अन्तराल में संघीय केन्द्रीय कार्यपालिका समिति उसके कार्यों को करती थी। कार्यपालिका समिति की एक प्रेसिडियम थी। प्रशासन के संचालन की शक्ति जन प्रतिनिधि परिषद (Council of People's Commissars) में निहित थी।

1924 का संविधान, जिसके अनुसार स्टालिन ने लगभग 12 साल शासन चलाया इसमें मताधिकार सीमित था। निर्वाचन प्रणाली अप्रत्यक्ष थी तथा विधायिका एक सदनात्मक थी। स्टालिन के ही शासन में 1936 में पुनः कुछ संशोधनों सहित नया संविधान बना जिसके द्वारा देश में वयस्क मताधिकार लागू किया गया तथा प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था की गयी। व्यवस्थापिका को द्विसदनात्मक बनाया गया। दोनों सदनों को लगभग समान शक्ति प्रदान की गयी। परन्तु देश में साम्यवादी दल को सर्वोच्च स्थिति प्रदान

---

19. C. L. Wayper, Political Thought, P. 238
20. Coker, Recent Political Thought, P. 160

करते हुये शासन के संचालन में उसके आदेशों को कानून के समक्ष मान्यता दी गयी। संविधान में परिवर्तन के बावजूद दल या स्टालिन के अधिनायकवादी नीति में कोई अन्तर नहीं आया। यद्यपि संविधान के शासन के विभिन्न अंगों की शक्तियाँ बताते हुये कहा गया कि रूस में लोकतंत्र है। संविधान द्वारा प्रथम बार रूस के नागरिकों के अधिकार एवं कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया। खुश्चेव के शासन काल में यही संविधान चलता रहा।

स्टालिन वह व्यक्ति था जिसके शासनकाल में रूस ने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में महान प्रगति की। उसने रूस की जनता में राष्ट्रवाद एवं देश प्रेम की भावना को विकसित किया। उसका कहना था कि प्राचीन रूस अपनी अवनति के कारण पराजित होता आया है। उसने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान देश की जनता का आह्वान किया, "तुम्हारी मातृभूमि को तुम्हारी आवश्यकता है।" उसने रूस को शक्ति का महान कीर्तिस्तम्भ बनाया।

मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद से स्टालिन काफी दूर गया परन्तु "स्टालिन का रूस एक विश्वासघात नहीं है, वरन् लेनिन के सपनों के रूस का ही यथार्थीकरण है।"[21] क्योंकि मार्क्सवाद से आगे बढ़ते हुये जिस ओर लेनिन ने यात्रा की उसी मार्ग पर चलते हुये स्टालिन ने अपनी मंजिल को खोज निकाला। हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि "वह लेनिन ही था जिसने स्टालिन के रूस को सम्भव बनाया।"[22] लेनिन द्वारा लाये गये संशोधन मार्क्सवाद को चुनौती रूप में थी और स्टालिन ने लेनिनवाद में संशोधन करके नयी चुनौती प्रस्तुत की।

संशोधनवाद का काल–प्रथम (1953–1964)

(Period of Revisionism-I)

जिस समय रूस में साम्यवादी क्रान्ति हुई वह एक अल्प विकसित पूँजी वाला देश था। परन्तु लेनिन के नेतृत्व में महान क्रान्ति सफल हुई। रूस अपनी सीमाओं में शत्रुतापूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से घिरा हुआ था। "समाजवाद के निर्माण की प्रक्रिया के दौरान अनेक कठिनाइयाँ आयी। लेनिन इनके बारे में अत्यन्त सजग थे। उन्होंने पार्टी व सोवियत संघ का कठिन समय में सफलतापूर्वक संचालन किया। स्टालिन ने इस जिम्मेदारी को निभाते हुये समाजवाद का निर्माण किया। अनेक समस्यायें पैदा हुई, बहुतों का समाधान किया गया। यह भी स्वाभाविक ही था कि गल्तियाँ हुईं। कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवाद–लेनिनवाद के सिद्धान्तों

---

21. C. L. Wayper, Political Thought, P. 243

22. वही, पृ. 244

से लैस थी, उन पर काबू पाने की शक्ति और क्षमता रखती थी। यही वास्तव में वह शक्ति थी जिसकी खुश्चेव से लेकर गोर्वाचेव के समय में अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँचे आधुनिक संशोधनवाद ने जड़ें खोदीं।"[23]

5 मार्च 1953 को स्टालिन की मृत्यु के बाद सोवियत रूस का प्रधानमंत्री मालेन्कोव बना। परन्तु उस समय साम्यवादी दल का प्रथम सचिव निकिता खुश्चेव था। इस कारण खुश्चेव के हाथ में ही रूस के शासन की बागडोर थी। मालेन्कोव के बाद वुल्गानिन रूस का प्रधानमंत्री बना और बुल्गानिन के बाद स्वयं खुश्चेव प्रधानमंत्री भी बन गया। 15 अक्टूबर 1964 तक रूस के प्रधानमंत्री के रूप में खुश्चेव में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्टालिन की नीति से अलग नीति अपनाई। खुश्चेव उच्च शिक्षित तो नहीं था पर उसकी सामान्य बुद्धि उच्चकोटि की थी। वह सामान्यजन में लोकप्रिय था। "खुश्चेव का कार्यकाल एक ताजगी भरे परिवर्तन के रूप में आया। दल के भीतर और बाहर विचार विमर्श की अधिक स्वतंत्रता थी।"[24]

स्टालिन की मृत्यु दल के प्रधान की सर्वोच्च शक्ति की समाप्ति थी और खुश्चेव ने विशुद्ध साम्यवाद की स्थापना के उद्देश्य और समाजवादी सरकार के आगे बढ़ने की प्रक्रिया में स्टालिन के कार्यों को अनावश्यक और हानिकारक बताकर निन्दा की।"[25]

इस शासनकाल में साम्यवाद में उदारवाद का प्रवेश हुआ। साम्यवादी दल के बीसवें कांग्रेस में खुश्चेव ने स्पष्ट कहा कि स्टालिन ने व्यक्तिगत नेतृत्व एवं व्यक्ति पूजा का प्रचलन करके साम्यवाद के सिद्धान्तों का उल्लघंन किया। यह सरासर मार्क्सवाद और लेनिनवाद के विरूद्ध है। "बीसवें कांग्रेस ने स्टालिन की व्यक्ति पूजा के सवाल पर विचार विमर्श किया तथा व्यक्ति पूजा को पूरी तरह समाप्त करके और पार्टी के राज्य के और वैचारिक कार्य के सभी क्षेत्रों में उसके परिणामों का उपचार करने के लिये कई कदम उठाये। उसने इस बात की व्यवस्था की कि लेनिन ने पार्टी जीवन के जो मानदण्ड और सामूहिक नेतृत्व के जो सिद्धान्त प्रस्तुत किये थे उनका कठोरता के साथ पालन किया जाये।"[26]

उदारवादी साम्यवाद के प्रतिपादन के लिये जनता को शासन में अपनी बात पहुँचाने का अवसर दिया गया। यद्यपि यह नाम मात्र का था। न्यायिक व्यवस्था में भी लचीला पक्ष लाने का और प्रतिवादियों को अपने पक्ष में कुछ कहने का अवसर दिया गया। खुश्चेव ने जनता के लिये खाद्य सामग्री के वितरण में वृद्धि की और उसकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के द्वारा उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाने का प्रयास

---

23. सीताराम येचुरी, प्रस्तावना, सोवियत संघ का पतन, हरपाल बराड़, पृ. 3
24. T. N. Kaul, Stalin to Gorvachev, Introduction, P. XVI
25. Fall of Communism in Russia P. 3 (www.cyberessays.com/History/105.htm)
26. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी : इतिहास के चरण, सोवियत भूमि पुस्तिका, 1985 पृ. 54–55

किया। कार्य में दक्षता व सामग्री गुणवत्ता में विकास की नयी नीति लागू की गयी। उसने "प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" के सिद्धान्त को फिर से स्थापित करने की घोषणा की। उसने देश की जनता को स्टालिन के शासन काल के आतंक, अन्याय एवं हिंसा से मुक्ति प्रदान की। अनेक राजनैतिक कैदी यातना शिविरों से मुक्त किये गये। खुफिया पुलिस की शक्ति कम की गयी, सत्ता संघर्ष की स्थिति भी कम होती गयी।

खुश्चेव ने व्यक्तिगत नेतृत्व का अन्त करके सामूहिक नेतृत्व के सिद्धान्त का विकास किया। नेतृत्व शक्ति का कुछ सीमा तक विकेन्द्रीयकरण किया गया। यद्यपि व्यवहार में यह सिद्धान्त किस सीमा तक अपनाया गया, यह विवादास्पद है।

रूसी साम्यवाद के बदलते हुये स्वरूप को देखते हुये तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार रूस ने अन्य पूँजीवादी देशों से युद्ध की अनिवार्यता को नकारा। उसने दल के बीसवें कांग्रेस में इस बात का विश्लेषण किया कि यद्यपि विश्व पूँजीवादी और समाजवादी दो व्यवस्थाओं में विभक्त हो गया है। फिर भी अलग–अलग व्यवस्थाओं वाले राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की सम्भावना है जो विश्व को एक और विश्व युद्ध से बचा सकती है। इस प्रकार खुश्चेव ने यह प्रतिपादित किया कि साम्यवादी व पूँजीवादी देश दोनों साथ–साथ रह सकते हैं। उन्होंने हमेशा विश्व शान्ति, सह अस्तित्व और निशस्त्रीकरण के सिद्धान्तों पर विश्वास प्रकट किया। खुश्चेव की शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व की यह नीति साम्यवादी अलगाव की नीति की विरोधी थी। अतः साम्यवाद के लिये एक चुनौती थी।

साम्यवाद की स्थापना के बारे में खुश्चेव का विचार था। कि शान्तिपूर्ण एवं लोक तांत्रिक साधनों द्वारा भी समाजवाद की स्थापना संभव है। अतः समाजवादी प्रजातंत्र के सहयोग भी संभव है। विदेश नीति के मामले में भी खुश्चेव शान्ति की नीति का प्रतिपादन करके उस समय की शीत युद्ध की स्थिति में शिथिलता लाये। साम्यवादी नीति में खुश्चेव का यह योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। "यह स्वीकारा गया कि अणु शक्ति के युग में संघर्ष चलाने के एक साधन के रूप में युद्ध से दूर रहा जा सकता है।"[27] अर्थात् दुनिया में साम्यवाद लाने के लिये युद्ध के अतिरिक्त अन्य मार्ग भी है।

स्टालिन की नीति के विरूद्ध परिवर्तित नीति के प्रयोग से खुश्चेव को भी अनेक विरोधों एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सीमित सुधारों की प्रक्रिया के बावजूद उसके शासनकाल में देश को अन्न एवं दुग्ध सामग्री की विशाल कमी का सामना करना पड़ा। इस स्थिति के बारे में खुश्चेव ने भी कहा, "यदि साम्यवाद के चालीस वर्ष बाद व्यक्ति को एक गिलास दूध और एक जोड़ा जूता नहीं मिल पाता तो वह यह

---

27. C.L. Wayper, Political Thought, P. 245

विश्वास नहीं करेगा कि साम्यवाद एक अच्छी चीज है।''(28)

खुश्चेव पर यह भी आरोप लगाया गया कि उसने सामूहिक नेतृत्व की आड़ में अधिक शक्ति हथियाने का प्रयास शुरू कर दिया है। दलीय संगठन को कम महत्व देने के उसके प्रयासों ने दल के अधिकारियों में संघर्ष एवं अव्यवस्था उत्पन्न की। क्यूबा संकट में रूस की पराजय का दायित्व भी खुश्चेव पर डाला गया। हर देश के इतिहास में अच्छे शासकों को भी इस प्रकार के विरोध का सामना करना पड़ता है। खुश्चेव पर चीन के साथ सैद्धान्तिक मतभेद बढ़ाने का भी आरोप लगाया गया।

जनवरी–फरवरी 1959 में आयोजित साम्यवादी दल के 21वें कांग्रेस में खुश्चेव द्वारा सोवियत संघ में समाजवाद को सुदृढ़ करने और उसके अन्तिम विजय का नारा दिया गया। दल के महामंत्री खुश्चेव ने आर्थिक विकास योजना के निर्देश देने के साथ ही 1936 के संविधान को देश की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की भी चर्चा की। उसके अनुसार उस समय समाजवादी के व्यवस्था के अधिक सुरक्षित होने के कारण नागरिक अधिकारी और स्वायत्त संस्थाओं इत्यादि के बारे में संविधान में कुछ परिवर्तन किया जाना आवश्यक है।

खुश्चेव की नयी नीति के अनुसार अप्रैल 1963 में सोवियत रूस के सर्वोच्च सोवियत ने एक संविधान आयोग बनाया जिसे नये संविधान के लिये प्रारूप तैयार करना था। परन्तु 15 अक्टूबर 1964 में खुश्चेव के त्यागपत्र देने के कारण उसके सामने नया संविधान बनाने का कार्य पूरा नहीं हो सका। रूस के प्रेसिडियम ने एक आदेश द्वारा खुश्चेव को उसके पद से बर्खास्त कर दिया। बाद में दल के प्रथम सचिव पद से भी उसे हटा दिया गया। औपचारिक रूप से प्रचारित किया गया कि खुश्चेव की अस्वस्थता एवं वृद्धावस्था के कारण उसे उसके कार्यभार से मुक्त किया गया है। सोवियत जनता स्तम्भित थी और उसे फिर से एक और स्टालिनवादी शासन का भय सता रहा था। सोवियत रूस के साम्यवादी शासन को अब एकाएक सत्ता परिवर्तन के कारण एक नयी चुनौती का सामना करना पड़ा।

संशोधनवाद का काल–द्वितीय (1964–1985)

(Period of Revisionism - II)

संशोधनवाद का जो काल खुश्चेव के समय से प्रारम्भ होता है वह खुश्चेव के उत्तराधिकारी अलेक्सी कोसीजिन एवं ब्रेझनेव के शासनकाल में भी जारी रहा। 15 अक्टूबर, 1964 को खुश्चेव के त्यागपत्र दे देने के बाद उसके स्थान पर अलेक्सी कोसीजिन नया प्रधानमंत्री बना। लियोनिद ब्रेझनेव को साम्यवादी

28. Various Inputs, Chronicle of 20th Century Qutetions P. 142

दल का प्रथम महासचिव बनाया गया। खुश्चेव को जिस रीति से पद से हटाया गया था उससे उपजी आशंकाओं को ब्रेझनेव ने अपने प्रारम्भिक वर्षों में दूर करने का प्रयास किया। खुश्चेव ने स्टालिन के द्वारा प्रतिपादित आन्तरिक एवं विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया था। सत्तारूढ़ होने के बाद लिओनिद ब्रेझनेव भी संशोधन की नीति को लागू करने से नहीं चूका। यद्यपि उसकी विदेश नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किये।

कोसीजिन ने पद ग्रहण करने के बाद जनवरी 1965 में सर्वोच्च सोवियत में अपनी नयी नीति प्रस्तुत की। रूस की कृषि व्यवस्था में सुधार लाने के लिये योजना बनायी। खुश्चेव की भाँति इसने भी व्यक्तिगत नेतृत्व के स्थान पर सामूहिक नेतृत्व को समर्थन दिया। विदेश नीति के मामले में उसने शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व की नीति को भी जारी रखा। उसने सैनिक व्यय कम करने पर एवं निरस्त्रीकरण पर भी बल दिया।

कोसीजिन ने अमेरिका पर आरोप लगाया कि उसने नाटो के द्वारा रूस के विरूद्ध पश्चिमी शक्तियों का सैनिक गुट बनाया है और उसने नाटो की निन्दा की। परन्तु रूस अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तनाव को कम करने का प्रयास करेगा तथा अमेरिका और यूरोप तथा एशिया के देशों के साथ व्यापार सम्बन्ध बढ़ायेगा।[29] व्यवहार में भी उसने भारत, लंका, इण्डोनेशिया तथा अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के देशों के साथ दीर्घकालीन आर्थिक सहयोग सम्बन्धी समझौते किये।

समाजवादी देशों के साथ सहयोग को बढ़ावा देने पर उसने बल दिया साथ ही पूँजीवादी देशों के साथ आर्थिक सम्बन्धों में नवीन पहलुओं को शामिल करने के लिये कहा। कोसीजिन के शासनकाल में रूस में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों के निर्माण में तथा साम्यवाद के विकास में लियोनिद बेझनेव का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

लियोनिद ब्रेझनेव जो अक्टूबर 1964 में साम्यवादी दल के महासचिव पद पर नियुक्त हुये पिछले 25 वर्षों से सर्वोच्च सोवियत से सदस्य निर्वाचित होते रहे थे तथा 1960 से 1964 तक सोवियत रूस के प्रेसिडियम के अध्यक्ष रहे। साम्यवादी दल के सर्वोच्च पद पर आसीन होने के बाद भी वह प्रेसिडियम के सक्रिय सदस्य भी बने रहे।

दल के सर्वोच्च नेता के रूप में लियोनिद ब्रेझनेव ने सबसे पहले देश में साम्यवाद को सुदृढ़ बनाने को औपचारिक कर्त्तव्य के रूप में घोषित किया। उन्होंने कहा कि दल का मुख्य कार्य जनता का कल्याण है। दल के 23वीं कांग्रेस में जो मार्च अप्रैल 1966 में हुई। ब्रेझनेव ने विश्व समाजवादी व्यवस्था के

29. Kosygin's Speech before Soviet Parliament adapted from Soviet Land, New Land, Jan. 65, P. 20

सुदृढ़ करने पर ध्यान दिया, तथा देश के सामाजिक, आर्थिक विकास की संभावनाओं पर विचार किया।

ब्रेझनेव के शासन काल में पंचवर्षीय आर्थिक विकास योजनाओं-के द्वारा रूस की जनता के रहन–सहन के स्तर में भारी सुधार लाये गये। मार्च अप्रैल 1971 में आयोजित साम्यवादी दल की चौबीसवीं कांग्रेस में ब्रेझनेव ने रूस की विदेश नीति के कार्यक्रम पर विस्तार में प्रकाश डाला। 'समाजवादी देशों की एकता और जुटता, उनकी मैत्री तथा भ्रातृत्व को सुदृढ़ करना तथा .... अलग–अलग समाज व्यवस्थाओं वाले राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्त को बुलन्द रखना''[30] रूस की विदेश नीति का मुख्य लख्य होगा।

इस अवधि में रूस में साम्यवादी दल, उसकी नीति और उसकी उपलब्धियों के प्रति विश्वास की भावना में वृद्धि हुई। दल की 25वीं कांग्रेस में 1976 ब्रेझनेव ने शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व की नीति को जारी रखने की बात की। जनहित के लिये उपभोक्ता सामग्री का उत्पादन तेज करने और उसकी गुणवत्ता बढ़ाने व्यापार तथा आबादी के लिये सेवाओं में सुधार लाने की आवश्यकता पर जोर दिया। देश में मार्क्सवाद एवं लैनिनवाद के विकास पर भी विशेष बल दिया गया।

खुश्चेव के शासन काल में निर्मित संविधान आयोग ने 1977 में नया संविधान बनाया जो ब्रेझनेव के शासनकाल में लागू हुआ। नये संविधान द्वारा रूस में विकसित समाजवाद की स्थिति की घोषणा की गयी जिसमें सार्वजनिक समाजवादी शासन होगा। नागरिकों के लिये विस्तृत अधिकार पत्र जारी किया गया जिसे आग और जिंक ने 'इतिहास का सर्वाधिक असाधारण अधिकार पत्र' कहा। 'प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करे और कार्य के अनुसार प्राप्त करे' के सिद्धान्त को स्वीकारा गया। पूर्ववत संघीय शासन और सोवियत प्रणाली जारी रखी गयी। 'लोकतांत्रिक केन्द्रवाद' (Democrative Centralization) के सिद्धान्त द्वारा एकदलीय सत्ता कायम रही। संसद की प्रधानता नाम मात्र की थी। यद्यपि कार्यपालिका (Presidium) बहुल थी एवं लोक निर्णय की व्यवस्था थी। परन्तु दलीय निरंकुश तंत्र को व्यवहार में बनाये रखा गया। सोवियत संघ के पतन तक यह संविधान बना रहा।

ब्रेझनेव के नेतृत्व में आयोजित फरवरी मार्च 1981 की दल की 26वीं कांग्रेस अन्तिम कांग्रेस थी। जिससे ब्रेझनेव का प्राघान्य रहा। कांग्रेस में 1981 से 1985 तक के लिये आर्थिक कार्यक्रम स्वीकृत किया गया। जिसका सूत्र वाक्य था 'सब कुछ मनुष्य के लिये मनुष्य के लाभ के लिये।' कांग्रेस ने घोषित किया कि पार्टी की शक्ति की नीति को सुदृढ़ करने और तनाव शैथिल्य का विकास करने के लिये निरन्तर संघर्ष करते रहने का प्रयास किया जायेगा। उसने SALT I (1972) एवं SALT II (1979) पर हस्ताक्षर किये। परन्तु

30. लियोनिद ब्रेझनेव, चौबीसवीं कांग्रेस, सोवियत संघ का साम्यवादी दल : इतिहास के चरण, पृ. 66

1968 में चेकोस्लोवाकिया में उदारवादी डूबचेक की सरकार के विरूद्ध की गयी सैनिक कार्यवाही के कारण ब्रेझनेव शासन को विश्व के अनेक देशों की आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा।

अपने शासन काल के अन्त तक ब्रेझनेव ने रूस की विदेश नीति की प्रमुख विशेषता के रूप में पूँजीवादी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्तों सुदृढ़ बनाने का निरन्तर प्रयास किया। उसने स्थायी शान्ति को सुनिश्चित करने, निःशस्त्रीकरण को प्रोत्साहन देने तथा विश्व युद्ध के खतरे को समाप्त करने की नीति को प्रमुखता दी। समाजवादी देशों के साथ उसने सच्ची समता को आधार बनाया और कहा कि चाहे कोई भी समस्या हो उसे मित्रता एवं सहयोग की भावना से समाधान किया जाये।

भारत के प्रति तत्कालीन रूस की नीति घनिष्ठ मित्रता की एवं बहुमुखी सहयोग की रहे। उस काल में भारत और सोवियत रूस के सम्बन्ध एक नवीन स्तर तक पहुँचा। परन्तु उसने चीन की नीति को सैन्यवादी और साम्राज्यवादी कहकर उसे समाजवादी आदर्शों के प्रतिकूल बताया। ब्रेझनेव के नेतृत्व काल में सोवियत रूस में आन्तरिक एवं विदेश नीति के क्षेत्र में जो सफलतायें प्राप्त की उनके साथ ब्रेझनेव का नाम यद्यपि अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। किन्तु व्यवहारिक स्तर पर सोवियत रूस की जनता में भीतर ही भीतर असन्तोष की भावना सुलगती रही। आलोचकों ने ब्रेझनेव की राष्ट्रीय सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों को पूर्णतयाः असफल बताया विशेषकर ब्रेनझेव के शासन के उत्तरार्द्ध को "गतिहीनता का काल" (Stagnation Period) कहा जाता है। इस अवधि में रूस में रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद आदि ने जोर पकड़ा। आर्थिक स्थिति में कोई प्रगति नहीं हुयी और न ही उद्योग, कृषि या प्रशासन में।

इस काल के दौरान कहा जाता है कि शक्ति के विकेन्द्रीयकरण की नीति को नष्ट कर दिया गया। स्टालिन की राजनैतिक अनुशासनात्मक एवं निमंत्रण की नीतियों को फिर से लागू किया गया। स्टालिन को अपने समय का रणनायक घोषित किया गया। बुद्धिजीवी एवं वैज्ञानिक समुदाय द्वारा भी उनके शासन की नीतियों की तीव्र आलोचना की गयी। कहा जाता है कि "केन्द्र में एवं गणराज्यों में सुधारवादी आन्दोलन के दमन के लिये दल के अधिकारियों ने 'आदेश दो एवं शासन करो' (Command and Administer) की स्टालिनीय पद्धति को अपनाया।"[31]

इस अवधि में रूस में भूमि श्रम एवं प्राकृतिक साधनों का समुचित सदुपयोग नहीं हुआ जिसके परिणामस्वरूप देश में आर्थिक मन्दी उत्पन्न हुयी। सोवियत रूस की सामाजिक व्यवस्था को एक ओर जहाँ वर्गहीन बताया गया दूसरी ओर नौकरशाही वर्ग को उनकी निष्ठा के कारण सम्पत्ति तथा एक उच्च जीवन स्तर देकर पुरस्कृत किया गया। उनके व्यक्तिगत लाभ को जनता के हित से अधिक महत्व दिया गया।

---

31. T.N. Kaul, Introduction, Stalin to Gorvachev, XVII

1980 में रूस में सोवियत नागरिकों का जीवन स्तर तेजी से निम्न होता गया। रूस में प्रशासन के विरुद्ध हड़ताल एवं जन विरोध उभरकर आया जिसने सोवियत संघ के स्थायित्व को भी भयभीत कर दिया। जनता क्रोधित थी और उसने साम्यवादी दल पर यह आरोप लगाया कि जनता द्वारा उसके प्रति प्रदर्शित निष्ठा के बदले में भी उससे अपने द्वारा दिये गये आश्वासनों को नहीं निभाया है।''

'सब कुछ जनता के लिये जनता के लाभ के लिये' के नारे के बावजूद न तो जनता के पास रोजगार है, जीवन की आवश्यक सेवायें उपलब्ध है और न ही एक स्वस्थ जीवन स्तर।

इस प्रकार समानता के सिद्धान्त पर आधारित समाजवाद को ब्रेझनवे की नीतियों की परिचालन। एक खुली चुनौती थी। उसके काल में सोवियत रूस में समाजवाद का व्यवहारिक रूप वास्तविक समाजवाद का नहीं था। हाँ, इस बात को अवश्य स्वीकारना होगा कि ब्रेझनवे की शान्तिपूर्ण सह जीवन की विदेश नीति ने पूँजीवादी देशों के साथ रूस के सम्बन्धों में सुधार लानें में सफलता प्राप्त की और उसने शीतयुद्ध की चुनौती का सामना तनाव शैथिल्य की नीति द्वारा सफलतापूर्वक की।

ब्रेझनेव के बाद आन्द्रोपोव (1982–84) के संक्षिप्त कार्यकाल में उसने 'गतिहीनता की अवधि' की बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास किया। उसके बाद दल के नये महासचिव चेरनेकोव (1984–85) वृद्ध एवं अस्वस्थ थे। अतः अपने संक्षिप्त कार्यकाल में कोई उल्लेखनीय कार्य उन्होंने नहीं किया। स्टालिन कालीन सत्ता संघर्ष बाद में कोसीगिन एवं ब्रेझनेव के समय भी अल्प रूप में चलता रहा। नेतृत्व में व्यक्तिगत एवं विद्वेषात्मक प्रतिद्वन्द्विता के कारण आर्थिक सुधार ठीक से लागू नहीं हो सके एवं जनता को दल के कठोर दमन एवं नियंत्रण में रहना पड़ा।

संशोधनवाद का काल–तृतीय (1985–1991)

(Period of Revisionism - III)

सोवियत रूस में मार्च 1985 में चेर्नेकोव की मृत्यु के बाद मिखाइल गोर्वाचेव सोवियत संघ के साम्यवादी दल के महामंत्री नियुक्त किये गये। मार्च 1985 सोवियत रूस में साम्यवादी के शासन में एक क्रान्तिकारी एवं परिवर्तनकारी मोड़ सिद्ध हुआ। 1985 में गोर्बाचेव के सत्ता में आने के बाद ही परिवर्तन प्रारम्भ हुये।[32] इससे पूर्व सोवियत रूस में यद्यपि लेनिन के नेतृत्व में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किये गये; पुनः स्टालिन द्वारा लेनिनवाद में और खुश्चेव द्वारा स्टालिन की नीतियों में निरन्तर कुछ न कुछ संशोधन किये जाते रहे। परन्तु इस व्यवस्था में मौलिक एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का कार्य

32. Sakwa, Richard, Gorbachev and his Reforms, 1985-1990, P. 271

मिखाइल गोर्वाचेव के द्वारा 1986 से 1990 के मध्य किया गया।

एक विचारक के अनुसार मार्च 1985 से मार्च 1990 तक का "पाँच वर्ष का यह समय समाजवाद के लक्ष्य के लिये निश्चित रूप से घोर विनाश का समय रहा है। न केवल पूर्वी यूरोप में बल्कि सोवियत संघ से भी, जहाँ आर्थिक अराजकता, राष्ट्रवादी हलचल, राजनीतिक तथा नैतिक पतन न केवल सोवियत संघ की अखण्डता बल्कि उसके अस्तित्व को भी अधिकाधिक गंभीर खतरा पैदा कर रहे हैं।"[33]

गोर्बाचेव उदारवादी विचार एवं प्रगतिशील नेतृत्व द्वारा तत्कालीन रूस में जो नयी नीति पुनर्निमाण (पेरेस्त्रोइका) एवं खुलापन (ग्लासनोस्त) के रूप में लागू किया गया उसने सोवियत साम्यवादी व्यवस्था में हलचल उत्पन्न कर दिया जिसका अन्तिम परिणाम सामने आया साम्यवादी व्यवस्था की समाप्ति एवं सोवियत संघ के अन्त के रूप में। लेनिन, स्टालिन या खुश्चेव द्वारा अपने–अपने समय में जो भी परिवर्तन या सुधार लाये गये वे चुनौती स्वरूप थे। पर गोर्वाचेव ने 'पेरेस्रोइका' एवं 'ग्लासनोस्त' के द्वारा जो सुधार लाने का प्रयास किया वे सोवियत संघ की साम्यवादी व्यवस्था के सामने अब तक के इतिहास की सबसे बड़ी चुनौती सिद्ध हुये।

जब मिखाइल गोर्वाचेव ने दल की बागडोर सँभाली तब सोवियत रूस सामाजिक अव्यवस्था का सामना कर रहा था। गोर्वाचेव ने सम्पूर्ण देश का दौरा किया, जन जन से मिला; उसको यह प्रतीत हुआ कि यदि साम्यवाद को जीवित रखना है तो परिवर्तन अवश्य लाने होंगे। उस समय सोवियत जनता का जीवन स्तर गिरता जा रहा था और जनता में साम्यवादी दल के प्रति विश्वास की भावना उठ चुकी थी। गोर्वाचेव नागरिकों की विश्वास की भावना को पुनः सुनिश्चित करना चाहता था। सोवियत अर्थव्यवस्था और आदर्श को पुर्नस्थापित करना चाहता था। वह दल एवं शासन में मौलिक सुधार लाना चाहता था, समाजवाद को एक अधिक अच्छा रूप देना चाहता था। अप्रैल, 1985 के प्लेनम में गोर्वाचेव द्वारा दिये गये भाषण में ही उसके प्रजातंत्रीकरण एवं उदारीकरण के विचार एवं दृष्टिकोण को उसने स्पष्ट कर दिया था। परिणामस्वरूप, सोवियत संघ की जनता में एक नयी आशा उत्पन्न हुयी साथ ही दल एवं शासन के अधिकारियों को एक सदमा सा लगा।

लगभग 70 साल पुरानी साम्यवादी व्यवस्था 1886 में मिखाइल गोर्वाचेव के सत्ता में आने के बाद असफल प्रतीत होने लगी थी जब 'ग्लास्नोस्त' और 'पेरेस्त्रोइका' के कार्यक्रम का रूसी जनता ने बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया था और एक नयी दुनिया का सपना देखने लगी थी।

उसने 11 जून 1985 को सोवियत रूस की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने के

---

33. हरपाल बराड़, सोवियत संघ का पतन, पृ. 1

लिये 'पेरेस्रोइका' के कार्यक्रम की घोषणा की। यह आर्थिक 'पुर्ननिर्माण' का कार्यक्रम था। जिसके द्वारा सोवियत अर्थव्यवस्था एवं सरकारी तंत्र का संगठनात्मक पुर्ननिर्माण किया जाना था।

गोर्वाचेव ने अनुभव किया कि यह परिवर्तन अन्य परिवर्तनों पर निर्भर करेगा जैसे कि एक अधिक सहनीय एवं खुला राजनैतिक वातावरण तथा सरकारी एवं सैनिक संस्थानों पर अधिक जनप्रभाव का समावेश इसके लिये रूस की राजनैतिक पद्धति में महान एवं दीर्घकालीन परिवर्तन की नीति को लागू करना आवश्यक था एवं इसके लिये गोर्वाचेव ने 'ग्लास्नोस्त' की नीति प्रारम्भ की। जिसके द्वारा जनता को 'खुलापन' का वातावरण दिया गया जिसमें वे सामाजिक समस्याओं पर अधिक खुला विचार विमर्श कर सकते थे। "जिन देशों में सामन्तवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्ति हुयी वहाँ समाजवाद के सामने चुनौती है कि राजनैतिक और आर्थिक ढाँचे का कैसे विकास किया जाये कि जो वर्तमान पद्धति को अधिक अच्छा बनाये तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता और प्रजातंत्र की अधिक गारन्टी दे।"[34]

गोर्वाचेव द्वारा जनवरी एवं जून 1985 की प्लेनरी मीटिंग में घोषित पेरेस्त्रोइका (पुनर्निर्माण) के कार्यक्रम एवं ग्लास्नोस्त (खुलापन) की नीति का यही लक्ष्य था कि सोवियत जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाना, उनकी स्वतंत्रता की स्थापना, उनमें साम्यवादी दल के प्रति विश्वास को पुर्न स्थापित करना एवं सोवियत शासन एवं अर्थव्यवस्था को पुर्न संगठित करना। गोर्वाचेव के सत्ता रोहण के बाद केवल सोवियत रूस में ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी पेरेस्रोइका एवं ग्लासनोस्ता की जुड़वा नीतियों की चर्चा होती रही। "गोर्वाचेव ने अक्टूबर, 1917 के बाद एक दूसरे आन्दोलन को प्रारम्भ किया सोवियत संघ के भीतर एवं साथ ही बाह्य विश्व के संग सम्बन्धों में भी।"[35]

फिर भी नये सुधारों के विरोधी देश में सक्रिय थे। "अतः उस समय रूस की स्थिति को देखकर किसी क्षण यह प्रतीत होता था कि एक विशाल देश विश्व सभ्यता की मुख्य धारा से जुड़ रहा है पर दूसरे ही क्षण लगता था कि भीषण राजनैतिक और आर्थिक पतन से गृहयुद्ध छिड़ने वाला है।"[36] फिर भी गोर्वाचेव ने साहसपूर्वक सुधारवादी नीति को जारी रखा। गोर्वाचेव ने 'पेरेस्त्रोइका' को केवल ढाँचागत पुनर्गठन नहीं वरन् 'ऊपर से क्रान्ति' रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार, "इसका अर्थ है स्वयं अधिकारियों के पहल पर गंभीर तथा मूलभूत क्रान्तिकारी परिवर्तनों को लागू करना, जिन्हें स्थिति व सामाजिक दशा में वस्तुगत परिवर्तनों में आवश्यक बनाया।"[37] गोर्वाचेव ने आगे स्पष्ट किया कि "निःसन्देह

34. Prakash Karat, The Prospects, Socialism in Crisis, Seminar, Sept. 1990
35. T.N. Kaul, Stalin to Gorvachev, Introduction XVIII
36. Lars T. Lin, Soviet Politics : Breakdown or Renewal, Current History, Oct. 1990, P.-309
37. पेरेस्त्रोइका, पृ. 55

हम सोवियत सत्ता में परिवर्तन करने नहीं जा रहे हैं। मूलभूत सिद्धान्तों को नहीं छोड़ेंगे किन्तु हम परिवर्तनों की आवश्यकता स्वीकार करते हैं। ये परिवर्तन समाजवाद को मजबूत करेंगे तथा इसे और अधिक गतिशील व राजनीतिक रूप से और अधिक सार्थक बनायेंगे।''[38]

पेरेस्त्रोइका के कार्यक्रम को लागू करते हुये गोर्वाचेव ने स्पष्ट किया कि ''सोवियत अर्थव्यवस्था की विनाशकारी स्थिति की वजह से पेरेस्त्रोइका की जरूरत पड़ी है।''[39] उन्होंने यह भी कहा कि सोवियत अर्थव्यवस्था में एक ठहराव आ गया था। इसीलिये पेरेस्त्रोइका का जन्म हुआ। ''वह चीज जिससे हम ठहराव कहते हैं तथा जो समाजवाद के एकदम प्रतिकूल था, समाज के जीवन में दिखाई देने लगा .... राष्ट्रीय आय के विकास दर में आधे से अधिक की कमी आयी.......... एक देश जो विश्व के अग्रणी देशों के नजदीक तेजी से पहुँच रहा था, एक के बाद दूसरी पोजीशन खोने लगा।''[40]

गोर्वाचेव ने कहा ''हमे अक्टूबर क्रान्ति की ऐतिहासिक प्रेरणा को नयी गतिशीलता देनी चाहिये तथा हमारे समाज में इसने जिन चीजों की शुरूआत की थी, उन्हें आगे बढ़ाना चाहिये।''[41] परन्तु इस प्रकार आगे कदम बढ़ाने के लिये 'पेरेस्रोइका' (पुर्न निर्माण) के साथ 'ग्लासनोस्त' (खुलापन) को भी आगे बढ़ाना जरूरी होगा। ग्लासन्तोस्त अर्थात् एक ऐसी प्रक्रिया जिसे समाज के सभी स्तरों का पूर्ण जनवादीकरण किया जायेगा। क्योंकि बिना जनवादीकरण के पुर्नः निर्माण का असफल होना अवश्यभावी है। जैसा कि पहले लाये गये सुधार असफल रहे क्योंकि वे बिना जनवादीकरण के लाये गये थे।

गोर्वाचेव ने केन्द्रीय समिति के अधिवेशन में भी कहा ''हमारा अनुभव प्रदर्शित करता है कि अगर हम जनतंत्रीकरण की नीति को दृढ़ता एवं नियमित तरीके से पालन करने में असफल होते तो हम ढाँचागत पुनगर्ठन के कार्य को अंजाम न दे पायेंगे।''[42]

ग्लासनोस्त शब्द का अर्थ है वार्तालाप और सार्वजनिक मामलों में खुलापन लाना विचारधारा और राजनीति के क्षेत्र में ग्लासनोस्त वही भूमिका निभाता है जो आर्थिक क्षेत्र में पेरेस्रोइका निभाती है। गोर्वाचेव ने ग्लासनोस्त को पेरेस्रोइका की मुख्य प्रेरणा शक्ति के रूप में चित्रित किया। जहाँ पेरेस्रोइका के द्वारा सोवियत रूस में अर्थव्यवस्था एवं प्रशासन तन्त्र का पुनर्निर्माण का कार्यक्रम लागू किया गया उसी

---

38. पेरेस्रोइका, पृ. 54
39. वही, पृष्ठ 11
40. वही, पृ. 18–19
41. वही, पृ. 50
42. वही, पृ. 30

प्रकार ग्लासनोस्त के द्वारा सामाजिक व्यवस्था में खुलापन अर्थात् प्रजातंत्रीकरण की नीति को क्रियान्वित किया गया। उन्होंने पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्त को एक दूसरे का पूरक बताया।

गोर्वाचेव ने स्पष्ट किया "हमारे यहाँ जितना अधिक समाजवादी जनतंत्र होगा, उतना अधिक समाजवाद होगा। यह हमारा विश्वास है और हम इसका परित्याग नहीं करेंगे। हम अर्थव्यवस्था में, राजनीति में और स्वयं पार्टी के भीतर भी प्रजातंत्र को प्रोत्साहित करेंगे।"[43]

गोर्वाचेव ने पेरेस्रोइका के बारे में यह भी कहा कि "शायद 1921 में लेनिन द्वारा नई आर्थिक नीति लागू करने के बाद से हमारे देश में आर्थिक सुधार की यह सबसे महत्वपूर्ण तथा सबसे मौलिक कार्यक्रम है।"[44] अतः उसने प्रशासनिक व्यवस्था को अधिक जनतंत्रीय बनाने के लिये पेरेस्रोइका को आवश्यक माना। उसने यह भी कहा कि "हमें ग्लासनोस्त की वैसे ही आवश्यकता है जैसे कि हवा की होती है।"[45] ग्लासनोस्त, पेरेस्त्रोइका एवं प्रजातंत्रीकरण उस समय के आदर्श वाक्य बन गये। गोर्वाचेव अपनी नयी नीति द्वारा जनता को प्रभावित करने में सफल रहे। "गोर्वाचेव को गुट की सफलता निश्चित रूप से अभूतपूर्व थी। कांग्रेस ने एक केन्द्रीय समिति बनाकर सफलता को सुदृढ़ किया, आर्थिक परिवर्तन एवं प्रजातंत्रीकरण के विचार को समर्थन दिया गया .... सर्वोच्च मंचों से 'पेरेस्रोइका' शब्द को सुना जाने लगा।"[46]

आर्थिक पुनर्निर्माण और खुलेपन की इन नीतियों द्वारा उसने सोवियत संघ के राष्ट्रपति के अधिकार का विस्तार किया एवं साम्यवादी दल की शक्तियों को जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिकाओं को हस्तान्तरित किया। साम्यवादी युग की समाज व्यवस्था की अनेक समस्याओं का समाधान किया। न केवल जनता की स्वतंत्रता पुनः कायम की गयी वरन् धर्म पर से भी प्रतिबन्ध उठा लिया गया। सोवियत प्रेस तथा मीडिया को दल के नियंत्रण से मुक्त कर दिया गया। "मिखाईल गोर्वाचेव की सबसे बड़ा योगदान यही था कि उसने शासन एवं दल की बन्द खिड़कियों को खोलने एवं भीतर ताजी हवा लाने में सफलता प्राप्त की।"[47]

समाज में व्याप्त स्त्रियों के प्रति भेदभाव की भावना को कम करने का प्रयास किया गया, तथा

---

43. गोर्वाचेव, सी पी एस यू केन्द्रीय समिति की बैठक, जनवरी 1987
44. पेरेस्त्रोइका, पृ. 33
45. वही, पृ. 78
46. Boris Kagarlitsky, The Dialectic of Change, P. 347
47. Sunil Bhattacharya, Democracy, Socialism and Soviet Union, Radical Humanist, July 1991, P. 17

नशाखोरी एवं अपराध वृत्ति को कम करने पर भी ध्यान दिया गया। इन कार्यक्रमों को लागू करने में गोर्वाचेव को कट्टर साम्यवादियों से विरोध का भी सामना करना पड़ा। यद्यपि इन सुधारों को विरोधियों ने अधिक महत्व नहीं दिया।'' स्टालिन युग के कट्टर साम्यवादियों ने जिनसे हमारे देश के अधिकांश साम्यवादी शामिल है इन परिवर्तनों को पानी की सतह में महत्वहीन बुलबुले के रूप में देखा था।''(48) पर सोवियत संघ ही नहीं वरन् विश्व इतिहास में ये परिवर्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुये। ये परिवर्तन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण थे कि इनका लक्ष्य था, ''सोवियत जीवन के हर पहलू का जड़ मूल से नवीकरण करना.... समाजवाद को सामाजिक जीवन के सबसे प्रगतिशील रूप मुहैया कराना।''(49)

सोवियत रूस की जनता धीरे–धीरे सोवियत संघ की कट्टरपंथी साम्यवाद के कठोर कैद से मुक्त होने लगी। देश के भीतर के जी. बी. का आतंक, आधी रात की दस्तकें एवं यातना शिविरों की उत्पीड़न की कथायें अब स्मृति कथायें मात्रा रह गयी। सोवियत संघ की जनता भी इंगलैण्ड और अमेरिका की जनता की तरह प्रजातंत्र के सपने देखने लगी।

गोर्वाचेव के नेतृत्व में रूस में 1989 में जिस संसदीय चुनाव का आयोजन हुआ। उसमें यद्यपि साम्यवादी दल ने ही भाग लिया पर एक स्थान के लिये एक से अधिक प्रत्याशी की स्थिति लागू हुयी। वाद में 13 मार्च 1990 को एक प्रस्ताव के द्वारा दलीय व्यवस्था में साम्यवादी दल के एकाधिकार को समाप्त करके प्रतियोगी दलीय व्यवस्था लागू कर दी गयी। जिससे पहली बार सोवियत संघ में निर्वाचन में कई समूहों में भाग लिया। समाज में राजनैतिक जागरूकता आयी। देश में राजनैतिक एवं सैद्धान्तिक उदारीकरण प्रारम्भ हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी गोर्वाचेव ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये। उसने अफगानिस्तान से रूस की सेना को वापस बुलाया, चीन के साथ रूस के सम्बन्धों में सुधार के लिये कदम उठाया। पश्चिमी योरोप के देश एवं भारत के साथ भी सम्बन्ध सुधरे। महाशक्तियों के बीच हथियारों को प्रतिद्वन्द्विता को कम करने के लिये उसने अनेक शस्त्र नियंत्रण सम्बन्धी समझौतों पर हस्ताक्षर किये और इस प्रकार शीत युद्ध की स्थिति को कम किया। सम्पूर्ण विश्व में स्वाधीनता तथा लोकतंत्र की शक्तियों को बल प्रदान करते हुये एक नये खुले तथा तनाव मुक्त विश्व के निर्माण के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने की कोशिश की। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी गोर्बाचेव की लोकप्रियता दिनों दिन बढ़ती गयी और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण नेता बन गये।

---

48. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ. 29
49. मिखाईल गोर्बाचेव, पेरेस्त्रोइका का अर्थ, विदेशिका, जून 1989, पृ. 17

गोर्वाचेव के इस वैचारिक आन्दोलन की सफलता महान थी क्योंकि "जिसका उसने प्रतिनिधित्व किया वह केवल एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण नहीं था एक नवीन पीढ़ी की अभिव्यक्ति और प्रस्फुटन था जो अधिक शिक्षित, राजनैतिक दृष्टि से अधिक जागरूक और बाह्य दुनिया की वास्तविकताओं के अधिक सम्पर्क में थी।"[50] गोर्बाचेव ने ये सफलतायें अपनी आकर्षक पद्धति एवं साथ जनता के समर्थन से प्राप्त की।

इन परिवर्तनों की अवधि के दौरान सोवियत संघ के गणराज्य में राष्ट्रवादी विचारधारा उग्र हुयी। जिसके परिणामस्वरूप समाज में गहन उथल–पुथल सामने आया। 1991 में सोवियत अर्थव्यवस्था पतन की ओर अग्रसारित हुयी और गोर्वाचेव को कट्टर साम्यवादियों का भीषण दबाव का सामना करना पड़ा, साथ ही खुले बाजार के सुधार के द्वारा अचानक बन अर्थव्यवस्था से खुली अर्थव्यवस्था को और आगे बढ़ाना भी रूस की जनता को महँगा पड़ा। देश में जनता के सामने दैनिक उपयोग की वस्तु का अभाव उपस्थित हुआ। जनता ने इन अभावों की पूर्ति की प्रबल माँग रखी। जब विश्व के अन्य देशों ने मानवीय आधार पर रूस में जनता के लिये आवश्यक खाद्य सामग्री भेजना शुरू किया इन सहायक देशों में भारत भी शामिल था।

दूसरी ओर रूस में राष्ट्रवादियों एवं पृथकतावादियों ने अपने गणराज्यों के लिये स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता की माँगें रखना शुरू किया। जिनमें वाल्टिक गणराज्य प्रमुख थे। कई गणराज्यों में साम्प्रदायिक झगड़े भी हुये। जैसे आर्मीनिया एवं अजरबैजान के मध्य, जार्जिया और अवकाजिया, किर्गजिया, तजाकिस्तान, उजबेकिस्तान एवं तजाकिस्तान के मध्य हिंसा एवं तनाव की स्थिति सामने आयी।

इस प्रकार लगभग 6 वर्ष पहले दुनिया की महाशक्ति के रूप मान्य सोवियत संघ एक बेचारगी के स्तर तक पहुँच गये। देश में कट्टर साम्यवादियों जिनमें कुछ उच्च सरकारी अधिकारी भी थे का विरोध फिर से उठा और अन्त में एक विस्फोटक सीमा तक जा पहुँचा "फिर एक दिन अचानक दुनिया यह सुनकर हतप्रभ रह गई कि गोर्वाचेव का तख्ता–पलट हो गया और के. जी. बी. तथा सेना के कट्टरवादी तत्वों ने रूस में एक बार फिर स्टालिन को जिंदा कर दिया है।"[51]

रूस के साम्यवादी दल व शासन के कट्टरपंथी गुट ने सेना व के. जी. बी. के साथ मिलकर 18 अगस्त 1991 को षडयंत्र रचा और मिखाईल गोर्वाचोव को, जो उस समय क्रीमिया में थे, नजरबन्द बना लिया। 19 अगस्त को गोर्वाचोव को राष्ट्रपति के पद से हटा दिया गया। उपराष्ट्रपति गेत्रादी यानानेव को

---

50. T. N. Kaul, Stalin to Gorvachev, P. 236

51. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ. 29

राष्ट्रपति बनाया गया। विश्व इस घटना पर स्तम्भित था। ऐसा प्रतीत हुआ कि रूस में स्टालिन कालीन सत्ता की फिर से वापसी हो रही है।

ऐसा प्रतीत हुआ कि गोर्वाचोव की नयी सुधार नीतियों के माध्यम से साम्यवाद के सामने जो चुनौती उपस्थित हुयी थी। उनका सामना सोवियत संघ का समाजवाद सही रूप में नहीं कर सका। प्रारम्भिक सफलता के बाद ये नीतियाँ असफल प्रतीत होने लगी और सोवियत साम्यवाद के लिये संकट ले आयी। जनता में असन्तोष बढ़ रहा था, कारखानों में मजदूर श्रम संगठन में परिवर्तन की माँग कर रहे थे। मजदूर एवं अधिकारियों में संघर्ष उठने लगे थे। कुछ चिन्तकों का मत था कि "उद्देश्यहीन प्रारम्भिक योजनायें यथार्थवादी सिद्ध नहीं हुयी। सोवियत समाज के अनुभव ने एक बार फिर सिद्ध किया कि अत्यधिक उदारवादी निर्णय सदैव सबसे विवेकपूर्ण नहीं होते हैं।"[52]

इन परिस्थितियों में रूसी गणराज्य के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति (जो 10 जुलाई, 1991 को प्रत्यक्ष रीति से प्रजातांत्रिक ढंग से प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति थे) बोरिस येल्तसिन स्थिति को सँभालने के लिये आगे बढ़कर आये। येल्तसिन के नेतृत्व में मास्कों में हजारों लोग गोर्वाचेव की मुक्ति के नारे लगाते हुये सड़क पर निकल आये। सोवियत संसद के अनेक नेताओं ने इस प्रदर्शन में साथ दिया। येल्तसिन को गिरफ्तार करने के लिये टैंक सहित सेना भेजी गयी। येल्तसिन ने टैंक पर चढ़कर जनता को सम्बोधित करना शुरू किया और सैनिक प्रदर्शनकारी भी जनता में शामिल हो गये।

षड़यन्त्रकारियों ने सैनिक दस्ते भेजना जारी रखा और सभी सैनिक प्रदर्शनकारियों में शामिल होते गये। अन्ततः यह षडयंत्र असफल हुआ और तीन दिन के भीतर सुधारवादियों ने फिर से गोर्वाचेव को राष्ट्रपति पद का दायित्व सौंपा। सत्ता पर गोर्वाचोव की वापसी का श्रेय बोरिस येल्तसिन को ही मिला। विश्व भर में बोरिस येल्तसिन रूसी प्रजातंत्र के देवदूत माने जाने लगे।

सत्ता पर वापसी के तुरन्त बाद गोर्वाचोव ने येल्तसिन के विरोध के कारण साम्यवादी दल के महासचिव के पद से 25 अगस्त, 1991 को त्यागपत्र दे दिया, उन्होंने दल की गतिविधियों को स्थगित कर दिया तथा सेना एवं के. जी. बी. का दायित्व सुधारवादियों को सौंप दिया।

रूसी संघ का राष्ट्रपति येल्तसिन जिसने गोर्वाचोव की वापिसी की लड़ाई का नेतृत्व किया अब रूस के नये नायक थे एवं गोर्वाचोव केवल एक देखरेख करने वाला व्यक्ति। रूस की जनता ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि सत्ता का समीकरण पूर्णतया बदल चुका था। येल्तसिन ने गोर्वाचोव के साथ वैसा ही बर्ताव करना शुरू किया "जैसे स्कूल का एक कठोर शिक्षक एक गुमराह विद्यार्थी के साथ करता

52. Boris Kagarlitsky, The Dialectic of Change, P. 358

है।"[53]

विद्रोह की असफलता के साथ ही उस-समय की चुनौती के रूप में गणराज्यों की राष्ट्रीयता की समस्या ने सर उठाया जिन्हें अभी तक शक्ति द्वारा दमित रखा गया था। इन राज्यों ने केन्द्र एवं दल की शक्ति की सर्वोच्यता की चुनौती दी और स्वायत्तता की माँग रखी। "लौह आवरण से आच्छादित सोवियत साम्राज्य के देशों ने साम्राज्य की घटती शक्ति और उदारवाद का लाभ उठाकर अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रकट करना शुरू कर दिया। सोवियत साम्राज्य का बिखराव उसी प्रकार हुआ हैं जैसा द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त ब्रिटिश साम्राज्य का हुआ था।"[54]

सबसे पहले 22 अगस्त को बाल्टिक गणराज्य लिथुयानिआ, लैटेविया एवं एस्टोनिया ने सोवियत संघ से पृथक होने की घोषणा कर दी। 25 अगस्त को उक्रेन ने और 29 अगस्त को साम्यवादी दल को सर्वोच्य सोवियत द्वारा प्रतिबन्धित घोषित करने के साथ ही 31 अगस्त को अजरकिस्तान ने, 1 सितम्बर को उजबेकिस्तान और किर्गिस्तान ने अपनी-अपनी स्वायत्तता की घोषणा कर दी। विघटन की ओर अग्रसारित सोवियत संघ की इस स्थिति पर गोर्वाचेव एवं येल्तसिन ने गहन विचार विमर्श किया और संघ को समाप्त करने का निर्णय ले लिया। रूस में गणराज्यों में राष्ट्रवादी शक्तियों के अधिक मजबूत होने से अंततः संघ के विघटन की स्थिति सामने आयी।

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत ने 26 दिसम्बर 1991 को अपने अधिवेशन में संघ के अस्तित्व को समाप्त करने के पक्ष मतदान किया। यह सर्वोच्च सोवियत का अन्तिम अधिवेशन था जिसमें उसने स्वयं को भी विघटित होने की घोषणा की। संघ के राष्ट्रपति मिखाईल गोर्बाचेव ने भी अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार लगभग 7 दशक तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय एवं 1945 के बाद विश्व में एक महाशक्ति के रूप में उभरने वाले सोवियत संघ का अन्त हो गया, साथ ही विश्व के प्रथम साम्यवादी देश में साम्यवादी व्यवस्था का पतन।

सोवियत संघ की आन्तरिक परिस्थितियों के साथ गोर्वाचेव द्वारा लागू पेरेस्त्रोइका एवं ग्लासनोस्त के सिद्धान्तों का दूरगामी परिणाम था रूस में साम्यवादी व्यवस्था का पतन। इसी प्रकार साम्यवादी शासन के दौरान कुछ ऐसी विशिष्ट स्थितियाँ सामने आयी जिनके परिणामस्वरूप सोवियत संघ के गणराज्यों ने संघ पृथक होने का निर्णय लिया। "जिस उदारवाद, स्वायत्तता और स्वतंत्रता की बात गोर्वाचेव सबसे ज्यादा करते थे, उसने भी गणतंत्रों को सोवियत संघ से अलग होने के लिये कुछ हद तक तो प्रेरित किया है।"[55]

53. Shekhar Gupta, End of an Empire, India Today, September 15, 1991, P. 71

54. राजनाथ सिंह, दृष्टिकोण, नव भारत टाइम्स, 29 दिसम्बर, 1991, पृ. 6

55. गिरीश मिश्र, लोकतंत्र को नया आधार, जनसत्ता, 6 जनवरी 1992

साम्यवादी शासन के दौरान उनकी कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थी। शिक्षा स्वास्थ्य एवं स्वच्छता की व्यवस्था उचित मानदण्डों को पूरा नहीं करती थी। शिक्षा पद्धति को लक्ष्य था विद्यार्थियों को साम्यवादी दल एवं व्यवस्था का आदर करने के लिये प्रशिक्षित करना। नागरिक स्वेच्छानुसार व्यवसाय नहीं अपना सकते थे। जो कार्य उन्हें सौंपा जाये उसी को करना उनकी बाध्यता थी। उनके पास चिन्तन की या अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नहीं थी।" हर नागरिक को अपने पीछे के. जी. बी. के भूत की आशंका रहती थी। सारांश यह कि उन्हें रोटी की तकलीफ नहीं थी किन्तु आजादी की भूख थी।"[56] शायद आजादी की यह भूख ही उन्हें विघटन की ओर ले गयी।

एक कारण और महत्वपूर्ण था। साम्यवादी दल, शासन एवं समाज पर रूसी राष्ट्रीयता का वर्चस्व। शासन की समस्त कार्यवाही रूसी भाषा में चलती थी। रूसी भाषा सीखने के लिये नागरिकों को प्रोत्साहित किया जाता था। रूसी संस्कृति को एकमात्र सोवियत संस्कृति मानने का लक्ष्य भी विभिन्न गणराज्यों में तनाव को बढ़ा रहा था।

इसके पीछे यह भी एक तर्क था कि सोवियत संघ में रूस सबसे बड़ा गणराज्य था। संघ की 52 प्रतिशत जनसंख्या रूस में निवास करती थी। सोवियत संघ की भूमि का 75 प्रतिशत भाग रूस के पास था। संघ की औद्योगिक एवं कृषि उत्पादन का 70 प्रतिशत भाग रूस में ही होता था। अतः रूस के प्रति अन्य गणराज्यों का विद्वेष स्वाभाविक था यही विद्वेष संघ के विघटन का भी एक मुख्य कारण था। प्रत्येक गणराज्य स्वायत्तता ही नहीं चाहता था वरन् रूसी भाषा, संस्कृति एवं आर्थिक प्रभाव से मुक्ति भी।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि गणराज्यों का सोवियत संघ से विद्रोह वस्तुतः कट्टर साम्यवादियों का छिपा विद्रोह है। कुछ भी हो साम्यवाद को अधिनायकवाद के साथ जोड़े जाने की बाध्यता को गोर्वाचेव की उदारवादी नीतियों ने चुनौती दी जो सम्पूर्ण व्यवस्था के लिये घातक सिद्ध हुयी।

सोवियत संघ के विघटन के बाद बोरिस येल्तसिन ने साम्यवादी दल से त्यागपत्र दे दिया और उसे अवैधानिक घोषित कर दिया। येल्तसिन का निर्वाचन रूसी रूसी गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में लोकतांत्रिक प्रणाली द्वारा प्रत्यक्ष रीति काफी समय पूर्व (जून 1991 को) हो चुका था। उसने रूस की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। उसने अर्थव्यवस्था पर सरकार का नियंत्रण स्थापित कर लिया, अधिकांश उद्योगों का उसने निजीकरण किया। येल्तसिन के नेतृत्व में रूसी परिसंघ ने क्रेमलिन की सोवियत सरकार के स्थान पर भी एवं विदेश मंत्रालय पर भी अधिकार कर लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर येल्तसिन एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में उभरकर आया और विश्व

---

56. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ. 34

राजनीति में रूस की भूमिका को महत्वपूर्ण बनाया। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में उसे सोवियत संघ का स्थायी स्थान प्राप्त हो गया और पुराने सोवियत संघ के दायित्व को रूस ने ग्रहण किया। पुराने सोवियत संघ की परमाणु शक्ति एवं हजारों मिसाइल भी आज रूस के अधिकार में हैं रूस निश्चित रूप से यूरोप की एक महशक्ति के रूप में उभकर सामने आया है।'' हमें आत्म निरीक्षण और कड़ा परिश्रम करना चाहिये तथा यूरोपीय समुदाय में शामिल हो जाना चाहिये जहाँ के हम हैं।''[57] यह कथन है मोस्को विश्वविद्यालय के इतिहास के प्रोफेसर फयोद्रोरोव का है।''

सोवियत संघ से पृथक हुये गणराज्यों को लेकर स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रकुल का निर्माण करने में येल्तसिन ने विशेष भूमिका निभायी। ''8 दिसम्बर, 1991 को येल्तसिन के साथ बेलोरूस और यूक्रेन के नेताओं ने 'सोवियत समाजवादी गणराज्यों के संघ' (USSR) के विघटन की घोषणा की। उसके स्थान पर 'गणतंत्र राज्यों के राष्ट्रकुल' के निर्माण का प्रस्ताव रखा एवं अन्य देशों को इसमें सम्मिलित होने का आमंत्रण दिया।''[58] राष्ट्रकुल के ग्यारह देशों ने परस्पर सहमति से परमाणु बटन पर रूस को अधिकार दिया।

सोवियत संघ के ग्यारह गणराज्यों ने कजाकिस्तान की राजधानी अल्माअटा में 21 दिसम्बर, 1991 को समझौते पर हस्ताक्षर करके स्वतंत्र राष्ट्रों के राष्ट्रकुल के निर्माण पर अपनी सहमति प्रदान की। रूस के कुछ कट्टर साम्यवादियों ने मास्को मे इन्हीं इन्हीं दिनों आयोजित प्रदर्शन में अल्माअटा में ग्यारह गणतंत्रों के राष्ट्रकुल बनाने के समझौते पर हस्ताक्षर करने वालों को गद्दार करार दिया और इसे गृहयुद्ध की शुरुआत बताया। ये चन्द लोग उस देश के राष्ट्रवादी थे जिसका अस्तित्व ही खत्म हो गया है।''[59]

यदि उक्ति वास्तव में सत्य है कि किसी देश की सम्पूर्ण जनता को सदा के लिये मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। रूस की नयी पीढ़ी अब उन कठिनाइयों को सहते रहने के लिये तैयार नहीं थी। जो स्टालिन के व्यक्तिगत अधिनायकवाद के अधीन खुश्चेव के दलीय एकाधिकार में और ब्रेझनेव के के. जी. बी. के आतंक में पुरानी पीढ़ी सहती आ रही थी। गोर्वाचेव की सुधारवादी एवं उदारवादी नीति का आकर्षण उनके लिये अत्यधिक लुभावना था। परन्तु सुधार के कदम जल्दबाजी में उठाये गये जो विवेकपूर्ण और यथार्थवादी सिद्ध नहीं हुये। चुनौती इस बात की थी कि सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तनों के साथ आर्थिक सुधार भी लागू किये जायें परन्तु रूस की उस समय की स्थिति के बारे में जैसा कि कहा गया है–''राजनैतिक परिवर्तन अधिकं तेजी से एवं अधिक सफलतापूर्वक लागू हो रहे हैं न कि आर्थिक

---

57. Shekhar Gupta, End of An Empire, India Today, 15 September, 1991, P. 72
58. Hosking, Geoffray, A History of Soviet Union, P.-498
59. सम्पादकीय, नवभारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1991

सुधार।"[60]

गोर्वाचेव निरन्तर कहते रहे कि हम समाजवाद को देश में सुदृढ़ बनाना चाहते हैं पर समानता और सामान्य हित की अस्पष्ट धारणा समाज के हित स्थापना की भूलभूलैय्या में खो गयी। नेतृत्व जन सामान्य को 'पेरेस्रोइका' और 'ग्लासनोस्त' की दिशा में सही मार्ग दिखाने में असमर्थ रहा। समाजवाद और समाज के हित में परिवर्तन न तो पूरे हो पाये और न ही सफल। परिवर्तनों को जन आधार प्राप्त करके सही दिशा में मोड़ने की चुनौती ने सम्पूर्ण व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया।

60. Archie Brown, Political Change in the Soviet Union, World Policy Journal, P.-469

चतुर्थ अध्याय

विश्व के साम्यवादी आन्दोलन पर प्रभाव

- सोवियत साम्यवादी संस्कार
- योरोप के देशों पर प्रभाव
- भारत एवं एशिया के देशों पर प्रभाव
- चीन एवं पूर्वी एशिया पर प्रभाव
- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव

चतुर्थ अध्याय

विश्व के साम्यवादी आन्दोलन पर प्रभाव

(Impact on World Communist Movement)

सोवियत संघ में साम्यवादी व्यवस्था के विघटन का प्रभाव विश्वव्यापी था। इसने रूस में लगभग चौहत्तर वर्ष पुरानी साम्यवादी संस्कार की वास्तविकता एवं सजीवता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। साथ ही योरोप के देशों ने अवसर पाते ही साम्यवादी दबाव से मुक्ति पाने का प्रयास शुरू कर दिया। भारत, चीन, जापान आदि एशियाई देशों की आन्तरिक एवं विदेश नीति को इस विघटन ने गहराई तक प्रभावित किया। सुदूर अमेरीका एवं अफ्रीका के देश भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहे।

सोवियत साम्यवादी संस्कार

(Soviet Communist Ethos)

साम्यवादी व्यवस्था के अन्त के बाद रूस में 1992 के प्रारम्भ में देश की राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति में तेजी से अन्तर आया। विजयी साम्यवाद की इस भूमि में राजनैतिक एवं आर्थिक अस्त व्यस्तता बढ़ती गयी। येल्तसिन एवं उसके राजनैतिक विरोधियों के मध्य मतभेद और संघर्ष ने तेजी पकड़ी। जहाँ एक ओर येल्तसिन ने सत्ता पर आधिपात्य जमाने के लिये जल्दबाजी से काम लिया, वहीं आर्थिक एवं राजनैतिक सुधार के नाम पर कुछ गलत निर्णय भी लिये जिससे रूस में उसकी लोकप्रियता को क्षति पहुँची और विभिन्न प्रकार के विरोध व निन्दा का सामना भी करना पड़ा। 'रूस के राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने गोर्वाचेव की कुर्सी पर कब्जा करने के लिये जिस बेताबी से काम लिया वह शिष्टता और मानवीयता की सीमा का अतिक्रमण था।''[1]

येल्तसिन एक ओर प्रजातंत्र की स्थापना की बात करता रहा और दूसरी ओर उसके कार्य और निर्णय साम्यवादी अधिनायक तंत्र से कुछ कम नहीं थे। गोर्वाचेव की सत्ता में वापिसी में उसकी जो प्रशंसनीय भूमिका थी, गोर्वाचेव को सत्ता से हटाने में उसकी भूमिका उतनी ही निन्दनीय थी। पहले तो उसने गोर्वाचेव को सत्ता से हटाया, फिर उसने सरकार को अवैधानिक घोषित कर दिया और देशव्यापी हड़ताल का आयोजन किया। व्यर्थ विरोध के बाद गोर्वाचेव ने दल के महासचिव पद से भी त्यागपत्र दे दिया।

येल्तसिन की स्वेच्छाचारिता बढ़ती गयी। रूसी संवैधानिक न्यायालय के अध्यक्ष वैलेरी जोरकिन ने लगातार कई मामलों में येल्तसिन के विरुद्ध निर्णय दिये। यहाँ तक कि न्यायालय ने येल्तसिन द्वारा जारी

1. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ.–42

एक महत्वपूर्ण आदेश को रद्द कर दिया जिसके द्वारा येल्तसिन ने रूसी सुरक्षा मंत्रालय एवं आन्तरिक मामलों के मंत्रालय की स्थापना की थी। यही नही न्यायालय ने येल्तसिन द्वारा सोवियत साम्यवादी दल पर लगाये गये नियंत्रण के कुछ अंशो को भी रद्द कर दिया।

1993 में येल्तसिन ने साम्यवादी एवं राष्ट्रवादी संस्था 'राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा' (National Salvation Front) पर प्रतिबन्ध लगाते हुये एक आदेश जारी किया था। इस संस्था ने येल्तसिन को राष्ट्रपति पद से हटाने की मांग रखी थी। रूसी संवैधानिक न्यायालय ने इस आदेश को भी निरस्त कर दिया। न्यायालय के इन निर्णयों को रूसी राष्ट्रपति येल्तसिन ने अपनी तथाकथित लोकतंत्रीय नीतियों के विरूद्ध माना। प्रत्युत्तर में रूसी राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय को बर्खास्त कर दिया। उन्होंने कहा कि "हाल ही में हिंसात्मक घटनाओं के दौरान चूँकि संवैधानिक अदालत की भूमिका 'नकारात्मक और पक्षपातपूर्ण रही है।" इसलिये उसे बर्खास्त कर दिया गया है।"[2]

इस वर्ष येल्तसिन ने एक आदेश द्वारा रूस पर राष्ट्रपति के विशेष शासन लागू होने की घोषणा की। यह घोषणा उसने टेलीविजन में एक भाषण के दौरान थी। तत्कालीन उपराष्ट्रपति अलेक्जण्डर रट्स्कोय ने येल्तसिन के इस आदेश की आलोचना की और माँग की कि सुधारवादी नीति पर जनता की स्वीकृति पाने के लिये जनमत निर्णय का आयोजन किया जाना चाहिये। इस विषय पर दोनों के मध्य मतभेद बढ़ते गये और अन्त में येल्तसिन ने उप राष्ट्रपति रट्स्कोय को उसके पद की शक्तियों से वंचित कर दिया।

अप्रैल 1993 में येल्तसिन ने जनमत निर्णय का आयोजन किया। रूसी विचारक माइक दीवादोव के अनुसार येल्तसिन ने देश की "जनता के बहुत ही निचले दर्जे के राजनैतिक अनुभव का पूरा–पूरा फायदा उठाते हुये देश पर एक ऐसा जनमत संग्रह थोप दिया जो दूसरे कई देशों के द्विदलीय चुनावों से भी ज्यादा धोखाधड़ी से भरा हुआ था।"[3] विरोधों के बावजूद उसने रूसी जनता से बहुमत का समर्थन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। परन्तु जनमत निर्णय में विजय से उसके सामने बाधाओं का अन्त नहीं हुआ। अब उसे संसद से शक्ति संघर्ष का सामना करना पड़ा। सत्ता के मद में उन्मन्त येल्तसिन ने प्रयास किया कि वह संसद को भंग कर दे और नवीन संसदीय चुनाव की घोषणा कर दे। जबाव में संसद ने येल्तसिन पर दोषारोपण करके उसे राष्ट्रपति के पद से हटा दिया। रट्स्कोय को उसके स्थान पर कार्यवाहक राष्ट्रपति बना दिया गया।

रट्स्कोय के नेतृत्व में संसद के सैकड़ों सदस्यों ने एवं येल्तसिन विरोधी प्रदर्शनकारियों ने

---

2. दैनिक आज, 'अन्तर्राष्ट्रीय', पृ.–4, 12 अक्टूबर, 1993

3. माइकदीवादोव, अभी होना है रूस में असली जनमत संग्रहँ, लोक लहर, 9 मई, 1993

मॉस्को में संसद भवन (क्रेमलिन) पर अधिकार स्थापित कर लिया। येल्तसिन ने सेना को आदेश दिया कि संसद को घेर ले। सात दिन के भीतर सुरक्षा सेना ने प्रदर्शनकारियों को कुचल दिया। ये प्रदर्शनकारी वास्तव में कट्टर साम्यवादी और राष्ट्रवादी थे। रट्स्कोय ने भी समर्पन कर दिया। प्रदर्शनकारियों पर विद्रोह का आरोप लगाया गया। बाद में येल्तसिन की इच्छा के विरूद्ध संसद ने सभी को क्षमा प्रदान कर दिया। रूस में यह गृहयुद्ध के समान स्थिति थी। "सोवियत संघ में न सिर्फ उथल पुथल जारी है बल्कि इस समय तो उस बिन्दु पर पहुँच चुकी है जहाँ गृहयुद्ध छिड़ने की वास्तविक आशंकायें पैदा हो गयी है।"[4]

येल्तसिन ने सत्ता ग्रहण के कुछ ही समय के भीतर रूसी गणराज्य के चेचन्या प्रान्त ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। उस समय से चेचन्या पर अधिकार पुनः स्थापित करने के लिये सामान्य सैनिक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी गयी। दिसम्बर 1994 में येल्तसिन ने चेचन्या में भारी मात्रा में रूसी सेना भेजी एवं सेना द्वारा चेचन्या पर अधिकार करने के लिये भारी बमबारी की गई। वहाँ की जनता को अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। इस संघर्ष में हजारों लोगों की मृत्यु हुई एवं दुनिया भर में येल्तसिन की निन्दा हुयी कि वह "अपने राजनैतिक आधार के विस्तार के लिये एवं नेतृत्व की शक्ति प्रदर्शन के लिये युद्ध का सहारा ले रहा है।"[5]

कुछ विचारकों के अनुसार येल्तसिन का यह कार्य प्रजातंत्र विरोधियों एवं उसके द्वारा चेचन्या में सैनिक शक्ति का प्रयोग इस बात का उदाहरण है कि रूस में अभी भी सोवियत साम्यवादी युग की दमनकारी शक्तियों का अन्त नहीं हुआ है। रूस में सच्चा प्रजातंत्र अस्तित्व में रह सकता है या नहीं यह संदिग्ध है। देश के आन्तरिक मामलो में येल्तसिन द्वारा अपने प्रशासनिक अधिकारों का मनचाहा प्रयोग भी उसकी गैर प्रजातांत्रिक मनोवृत्ति को ही दर्शाता है। जब अपनी सत्ता बनाये रखने के लिये वह संसद को विघटित करने से भी नहीं हिचकिचाया।

रूस में साम्यवाद कालीन शासन ने बपौती में जो भ्रष्टाचार छोड़ा था उससे वस्तुओं के मूल्य बढ़े हुये थे। सार्वजनिक उद्योग अकुशल थे एवं वित्तीय अस्थिरता विद्यमान थी। इसके कारण नयी सरकार ने आर्थिक एवं राजनैतिक सुधार के लिये भी जो नीतियाँ लागू की उससे वित्तीय अस्त व्यस्तता और बढ़ गयी। "इस बार यह उथल पुथल सिर्फ मास्को तक ही सीमित नहीं है।"[6] "हाल के कुछ महीनों में रूस

4. सुनील मैत्र, समाजवाद की लड़ाई जारी है, लोकलहर, 3 अक्टूबर, 1993, पृ.–5
5. चेचन्या की जनता ने मार्च, 2003 में राष्ट्रपति पुतिन द्वारा कराये गये जनमत संग्रह में रूसी संघ का एक हिस्सा बने रहने के पक्ष में मतदान किया।

The Fall of Communism, P. 4 www.cyberessays.com/History/105.htm

6. सुनील मैत्र, समाजवाद की लड़ाई जारी, लोक लहर, 3 अक्टूबर, 1993, पृ. 5

के विभिन्न क्षेत्रों में हताश मजदूरों के समूहों ने कई इलाकों में सड़क मार्गों और रेल मार्गों पर चक्का जाम कर दिया, सरकारी भवनों पर कब्जा कर लिया, उनके अधिकारियों को बन्दी बना लिया तथा घेराव और भूख हड़तालों का भी आयोजन किया।

इसके पीछे मुख्य कारण यह था कि नयी सरकार के पास प्रजातंत्रीय पद्धति का कोई अनुभव नहीं था एवं पिछले सात दशकों के साम्यवादी शासन ने रूस की अर्थव्यवस्था में विशाल शून्य उत्पन्न कर दिया था। रूस में राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था के प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया में जो जल्दवाजी की गई उससे भी अव्यवस्था उत्पन्न हुई। यह सोचा गया, कि तीव्र गति से उद्योग के निजीकरण से नये परिवर्तन जल्दी सफल होगे, और अर्थव्यवस्था के पुनः राष्ट्रीयकरण की संभावना भी समाप्त हो जायेगी।

परन्तु रूस में व्यवहार में अभी भी प्राचीन साम्यवादी परम्परा मरी नहीं थी। सामान्य जनता अभी भी व्यक्तिगत स्वामित्व को अनुचित ही मान रही थी। प्रजातंत्रीय प्रणाली को लागू करने के लिये सम्पत्ति सम्बन्धी नये कानून अस्पष्ट थे जिनके कारण भी शासन को जन विरोध का सामना करना पड़ा। जनता के जीवन स्तर में भी पर्याप्त सुधार नहीं आ पाया, जिसने अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया। वास्तव में नया प्रशासन व्यवहार में साम्यवादी प्रशासन का ही प्रतिबिम्ब बन गया। क्योंकि आर्थिक परिवर्तनों के साथ राजनैतिक परिवर्तन सही रूप में भी लागू नहीं हुये। धार्मिक एवं जातिगत द्वेषभावना तथा पर्याप्त शिक्षा की कमी से नयी राजनैतिक और आर्थिक पद्धति ने जन असंतोष को और बढ़ाया।

वास्तव में आज भी रूसी जनता एवं प्रशासन के पास प्रजातंत्रीय एवं पूँजीवादी पद्धति के बारे में जानकारी एवं अनुभव का अभाव है। "साम्यवादी एवं अधिनायक तंत्र की परम्परा में जनता की इच्छाओं को कभी महत्व नहीं दिया गया। जो प्रजातंत्रीय पद्धति के सार में निहित है।"[7] शासन में जनता की भागीदारी और जन सम्पर्क इन तत्वों को महत्व दिया जाना आवश्यक है। किन्तु आज भी रूस में साम्यवाद के पतन के बाद भी पुरानी साम्यवादी एवं अधिनायकतंत्रवादी परम्पराओं को जड़ से समाप्त करना असंभव प्रतीत हो रहा है।

रूस में जिन कारणोवश साम्यवादी व्यवस्था का पतन हुआ और यह व्यवस्था जन विरोध का कारण बनी इनमें से अधिकांश कारण एवं परिस्थितियाँ आज भी रूस में विद्यमान हैं। पुराने शासन ने जो आश्वासन दिये एवं एक अच्छे जीवन स्तर की जो उम्मीदें बंधवायी उन्हें पूरा करने में असफल रही है। नयी पद्धति में भी वे ही कारण फिर से दिखाई पड़ रहे हैं। भूतकाल पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि यदि रूस की जनता और प्रशासन समस्याओं का जल्दी समाधान नहीं कर पाती है और पुरानी गल्तियों को फिर

---

7. The Fall of Communism, P. 5, www.cyberessays.com/History/105.htm

से दोहराती है तो एक और रूसी प्रशासन एवं पद्धति का पुनः पतन सम्भव है। आज रूस के सामने अनेक समस्यायें एवं चुनौतियाँ हैं। अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित पद्धति से स्वतंत्र बाजार की व्यवस्था में परिवर्तन की ओर जाना है। इसके साथ ही उसे अमेरिका एवं अन्य देशों से आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। रूस की जनता को एवं शासन को भी प्रजातंत्र के मार्ग की बाधाओं को भी दूर करना होगा। शासन में जन प्रतिनिधित्व को बढ़ाना होगा। "रूसी संघ के लिये इस महान दायित्व की पूर्ति में अभी सामने सुदीर्घ मार्ग प्रतीक्षा में है।"[8]

योरोप के देशों पर प्रभाव

(Impact on European Countries)

रूस में 1917 की साम्यवादी क्रान्ति विश्व इतिहास की एक महान घटना थी। ठीक इसी प्रकार की महत्वपूर्ण घटना थी अगस्त, 1991 में साम्यवादी व्यवस्था का पतन और सोवियत संघ के अस्तित्व की समाप्ति। यह घटना केवल एक देश की आन्तरिक राजनीतिक घटना नहीं थी और इस घटना का योरोप विशेषकर पूर्वी योरोप के देशों की राजनीति, अर्थव्यवस्था और सैनिक व्यवस्था पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। टी. आर. फॉक्स के अनुसार पुराने विश्व नेतृत्व करने वाले योरोप का नये समस्या ग्रस्त योरोप में परिवर्तन वर्तमान समय की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्रीय तथ्य है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अल्बानिया, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, पौलेण्ड, रोमानिया और युगोस्लाविया पूर्वी यूरोपीय देश के रूप में जाने जाते हैं। इनमें से अधिकांश आर्थिक दृष्टि से सोवियत संघ पर निर्भर है। यह निर्भरता कहीं कम और कहीं ज्यादा है। इसी कारण इन देशों का भाग्य शायद सोवियत संघ के भाग्य से जुड़ा रहा। सोवियत संघ के नेतृत्व में निर्मित 'वारसा सन्धि संगठन' के ये सभी देश सदस्य रहे हैं।

पूर्वी योरोप के देशों में साम्यवाद की स्थापना सोवियत रूस में साम्यवादी क्रान्ति के लगभग तीस वर्ष पश्चात हुयी। साम्यवाद की स्थापना के बाद रूस इन देशों के सामने धीरे-धीरे एक आदर्श के रूप में उभरकर आया था। यद्यपि इन देशों की जनता में साम्यवाद के प्रति पर्याप्त आकर्षण का अभाव था। रूस में जिन परिस्थितिओं में साम्यवादी क्रांति सफल हुयी थी इन देशों की परिस्थितियाँ उससे पर्याप्त भिन्न थी।

इन देशों में साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना स्वतः स्फूर्त परिस्थितियोंवश या वर्ग संघर्ष के कारण नहीं हुयी। इन सभी देशों में साम्यवादी दल अलग-अलग नामों से गठित हो चुका था जिन्हें सोवियत संघ का समर्थन प्राप्त था। समयान्तर में यहाँ साम्यवाद की स्थापना रूसी सेना की उपस्थिति में हुयी। इन

---

8. The Fall of Communism, P.6, www.cyberessays.com/History/105.htm

देशों की रूस से सीमागत निकटता, रूस की सामरिक सुविधा एवं रूस की विस्तारवादी नीति का परिणाम था यहाँ साम्यवाद का पनपना और फिर स्थापना।

पूर्वी योरोप के इन देशों में साम्यवाद की स्थापना के तीन चरण बताये गये है।[9] प्रथम चरण में साम्यवादी दल ने संयुक्त मोर्चा बनाया। जिसमें दक्षिण पन्थी भी शामिल थे। द्वितीय चरण में, मोर्चा से दक्षिणपंथियों को हटा दिया गया और तृतीय चरण में साम्यवादियों के अतिरिक्त सभी वामपंथी दलों को मोर्चे से बाहर निकाल दिया गया। पूर्वी यूरोप के सभी देशों में इसी प्रक्रिया द्वारा साम्यवाद की स्थापना हुई। स्टालिन ने पूर्वी योरोप के देशों पर प्रभाव स्थापना के लिये यहाँ के देशों में कठपुतली सरकार की स्थापना करवायी। इन देशों के माध्यम से द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्टालिन ने रूस एवं पश्चिमी योरोप के बीच एक बफर जोन (Buffer Zone) की स्थापना की।

बुल्गारिया में पहले 'स्वतंत्र जनवादी मोर्चा' बना और उसकी सरकार के अधीन देश में गिरफ्तारियाँ .एवं दमन प्रारम्भ हुआ। 1945 के चुनाव में साम्यवादियों को बहुमत मिला और दिसम्बर 1997 में बुल्गारिया को साम्यवादी देश घोषित कर दिया गया। इसी प्रकार 1948 में चेकोस्लोवाकिया में 'राष्ट्रवादी मोर्चा' की सरकार बनी। वहाँ भी आतंक और दमन का दौर चला। 1948 के चुनाव में केवल साम्यवाद के समर्थक ही खड़े हुये और सत्ता पर उनका वर्चस्व स्थापित हो गया। हंगरी में पहले पितृभूमि मोर्चा बनी फिर दमन ओर आतंक के वातावरण में चुनाव हुआ। विरोधियों का सुनियोजित ढंग से सफाया हुआ और 1949 तक एक दलीय साम्यवादी व्यवस्था लागू हो गयी।

इसी प्रकार रूमानियाँ में 'जनवादी लोकतांत्रिक मोर्चा' से साम्यवादी शासन की ओर यात्रा प्रारम्भ हुई। यही प्रक्रिया युगोस्लाविया और अल्बानिया में भी दोहरायी गयी।

1953 में पूवी जर्मनी में लगातार साम्यवादी सत्ता के खिलाफ हड़ताल एवं प्रदर्शन हुये। रूस ने शक्ति द्वारा इनका दमन किया। रूस को भय था कि संयुक्त जर्मनी पर साम्यवादी प्रभाव समाप्त हो जायेगा। 1956 में पौलेण्ड में दंगे हुये और हंगरी में भी रूसी नेतृत्व के विरूद्ध आन्दोलन चला और रूस ने सशस्त्र हस्तक्षेप किया। चेकोस्लोवाकिया में उदारवादी डुबचेक के शासन को गिरा दिया। 1961 में बर्लिन दीवार (Berlin Wall) का निर्माण करवाया।

इस प्रकार पूर्वी यूरोप के इन देशों में लगातार साम्यवादी एवं एक दलीय व्यवस्था सोवियत संघ द्वारा लादी जाती रही। रूस के नेतृत्व में ये सभी देश साम्यवादी खेमे में शामिल हो गये। यह शायद उनकी विवशता ही थी। "पूर्वी योरोप के देश एक तरह से एक 'अस्तित्वहीन वृहत्तर' सोवियत गणराज्य' के प्रान्त बन गये थे जिनकी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं वैदेशिक नीति मास्को के आकाओं के हाथ में

---

9. डॉ. ओम नागपाल, साम्यवादी देशों के समाजवादियों की क्रूर नियति, धर्मयुग 8 नवम्बर, 1981, पृ. 15

थी।''[10]

''एक लम्बे अन्तराल तक सोवियत खेमे में शान्ति बने रहने और समय के साथ सोवियत शक्ति के फैलाव के बावजूद पूर्वी योरोपीय देश, सोवियत नेताओं के लिये चिंता के विषय बने रहे।''[11]

यद्यपि ये देश अपनी अलग पहचान बनाने के प्रयास में लगे रहे, परन्तु सफल नहीं हुये। जैसे कि पौलेण्ड में 1980 में भीषण हड़ताले हुई और इन हड़तालों ने पौलेण्ड सरकार को इस बात के लिये मजबूर कर दिया कि वह उदार बने। ''पौलेण्ड के अनुभव न केवल पौलेण्ड को एक नयी राह पर ले जाने को उद्यत् है बल्कि आसपास कई देशों और उससे भी आगे समूचे साम्यवादी तामझाम को इकझोरने वाले अनुभव हैं।''[12] परन्तु रूस ने इन देशों के आन्तरिक मामलों में भी लगातार दबाव बनाये रखा।

1985 में सत्ता ग्रहण करने के बाद गोर्वाचेव ने जहाँ देश के आन्तरिक मामले में खुलेपन की नीति अपनायी। योरोप के देशों को भी उनकी आन्तरिक शासन व्यवस्था में स्वयं निर्णय लेने की अनुमति दी। गोर्वाचेव इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी देश की जनता पर किसी विशेष पद्धति के अधीन रहने के लिये दबाव डालने में सोवियत संघ की सुरक्षा निहित नहीं है। उसने स्पष्ट किया कि पूर्वी योरोप के देशों में स्वतंत्रता की दिशा में जो परिवर्तन किये जायेंगे वह उनमें बाधा नहीं डालेगा।

इसका परिणाम शीघ्र ही योरोप में देखने को मिला। सर्वप्रथम पौलेण्ड में 1980 में गठित सोलिडारिटी को 18 जनवरी, 1989 को वैधानिक स्तर दिया गया। साम्यवादी सरकार एवं सोलिडारिटी के मध्य हुये समझौते में स्वतंत्र निर्वाचन सम्पन्न कराने का निर्णय लिया गया। चुनाव में साम्यवादी पौलेण्ड की संसद के निचले सदन सेज्म (Sejm) से बाहर हो गये और 'रिपब्लिक आफ पौलेण्ड' की स्थापना हुयी।[13] 29 जनवरी 1990 में साम्यवादी दल के अन्तिम अधिवेशन में दल को भंग करने का निर्णय लिया गया।

चेकोस्लोवाकिया में जनवरी 1989 में सोलिडारिटी को वैधानिक घोषित करने का और स्वतंत्र बहुदलीय चुनाव कराने का निर्णय लिया गया। 24 नवम्बर, 1889 को प्राग में भारी प्रदर्शन के परिणामस्वरूप यहाँ की साम्यवादी सरकार गिर गयी एवं गैर साम्यवादी सरकार की स्थापना हुयी। प्रजातंत्र की पुर्नस्थापना एवं मानवाधिकारों की बहाली हुयी। 11 जून, 1990 में चेकोस्लोवाकिया में प्रथम स्वतंत्र चुनाव में नागरिक मंच आन्दोलन ने विजय प्राप्त की।

10 फरवरी, 1989 को हंगरी में साम्यवादियों ने बहुदल पद्धति को स्वीकृति दे दी। मार्च में यहाँ सोवियत संघ के खिलाफ भारी प्रदर्शन आरम्भ हो गये। साम्यवादी दल का नाम हंगेरियन समाजवादी दल

10. डी. एन. सिंह, पूर्वी योरोप में परिवर्तन, प्रगति मंजूषा, 162
11. विनोद रतूड़ी, पूर्वी योरोप सोवियत संघ का दामन नहीं छोड़ सकता, चौथी दुनिया, 29 मार्च, 1987
12. त्रिनेत्र जोशी, पौलेण्ड अपनी अलग पहचान बनाना चाहता है, जनसत्ता, 29 अगस्त, 1980
13. Hosking Geoffrey, A Histroy of Soviet Union, P. 245

रखा गया। बहुदलीय चुनाव में मार्च 1990 में हंगरी में प्रजातांत्रिक फोरम ने साम्यवादी दल का सफाया कर दिया।

बुल्गारिया में 10 नवम्बर 1989 को सरकार में परिवर्तन हुआ और उदारवादी दल सत्ता में आया। आन्दोलन के परिणामस्वरूप यहाँ जनवरी 1990 में संसद ने सत्ता पर साम्यवादियों के एकाधिकार को समाप्त कर दिया एवं साम्यवादियों ने बहुदलीय पद्धति पर स्वीकृति दी। जून, 1990 के चुनाव में बुल्गारियन सोशलिस्ट पार्टी सत्ता में आ गयी। सितम्बर 1990 में देश में पहला स्वतंत्र चुनाव हुआ और कारपोरेट प्रेसीडेन्सी सत्ता में आयी।

रूमानिया में परिवर्तन सर्वाधिक हिंसात्मक रहे। हिंसापूर्ण क्रान्ति के बाद यहाँ 'राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा' ने साम्यवादी शासन को 25 दिसम्बर 1989 को सत्ताच्युत करने की घोषणा की।[14] 23 मई 1990 के प्रथम स्वतंत्र चुनाव में राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा ने भारी विजय प्राप्त की।

11 सितम्बर, 1889 तक अस्ट्रिया और हंगरी ने पूर्वी जर्मनी के लिये सीमायें खोल दी। भारी संख्या में पूर्वी जर्मनी से लोग पश्चिमी जर्मनी जाने लगे। 8 नवम्बर को पूर्वी जर्मनी की साम्यवादी सरकार ने त्यागपत्र दे दिया और बर्लिन दीवार को खोल दिया गया। 18 मार्च 1990 को पूर्वी जर्मनी में स्वतंत्र चुनाव सम्पन्न हुआ। इसकी परिणति 3 अक्टूबर 1990 में जर्मनी के एकीकरण एवं गैर साम्यवादी संयुक्त जर्मनी के अस्तित्व में आना हुआ।

परन्तु बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया और रूमानिया में पुराने साम्यवादी दल ही भेष बदलकर पुनः सत्ता में आये। यह केवल व्यवस्था में परिवर्तन था। अतः इसका एक दूसरा पक्ष भी है जिसका कथन है कि पूर्वी योरोप में "समाजवाद के खात्मे का जो आरम्भिक जनून था, बड़ी तेजी से काफूर हो रहा है।"[15] वे इसके लिये योरोप के देशों के उदाहरण देते है। जैसे कि 1993 के चुनाव में पौलेण्ड में पूर्व साम्यवादी एवं उनके सहयोगियों को 2/3 बहुमत प्राप्त हुआ। लिथुआनिया में पूर्व साम्यवादियों की सरकार बनी। इसके अतिरिक्त रूमानिया, अल्बानिया, बुल्गारिया, इस्टोनिया, हंगरी, चैक गणराज्य, लेटेविया आदि में भी पूर्व साम्यवादी महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति के रूप में फिर से उभरे।

1998 के चुनाव में जर्मनी में सोलह वर्षों से सत्ता पर काबिज जर्मनी के चान्सलर की पराजय एवं सामाजिक प्रजातांत्रिक दल के विजय ने यहाँ वामपंथी रुझान प्रदर्शित की। 15 योरोपीय देशों में से नौ में समाजवादी सत्तारूढ़ है। बेल्जियम, इटली व लक्जेमवर्ग में सत्ता के साझेदार है। "इस सारे घटनाक्रम से कम से कम एक नतीजा जरूर निकलता है कि कम्युनिज्म खत्म नहीं हो गया है और समाजवादी ताकतें

---

14. वही, पृ. 466

15. सुनील मैत्र, समाजवाद की लड़ाई जारी है, लोक लहर, 3 अक्टूबर, 1993, पृ. 5

कमजोर भले हो गयी हैं, खत्म नहीं हुयी है।"[16]

योरोप के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि "सोवियत संघ के विघटन के बाद साम्यवाद विरोधी लहर को सहन नहीं किया जा सका और पार्टियों ने नाम बदल लिया। अनेक देशों जैसे इटली और जर्मनी में साम्यवाद बिखर गया।"[17]

इस सन्दर्भ में गोर्वाचेव तत्व (Gorvachev Factor) के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस क्षेत्र में साम्यवाद के पतन का मुख्य कारण था गोर्वाचेव की सुधारवादी एवं उदारवादी नीति तथा इन देशों के साम्यवादी दलों को सहायता न देना। साथ ही यहाँ जनता का लोकप्रिय समर्थन कभी साम्यवाद के प्रति नहीं रहा। केवल एक छोटा सा वर्ग यहाँ साम्यवाद का समर्थक रहा।

वास्तव में पूर्वी योरोप के इन देशों में जनता एवं शासन के साम्यवादी संस्कार नहीं थे। वे प्रजातांत्रिक मूल्यों को अपने देश में बनाये रखने के लिये सचेष्ट थे। प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही अपने शासन को चलाना चाह रहे थे। सोवियत संघ पर आर्थिक दृष्टि से निर्भर होने के बावजूद उसकी सर्वाधिकारवाद से मुक्ति की छटपटाहट उनमें वर्षों से पल रही थी। अतः इन देशों ने विघटन की पहली घड़ी में ही साम्यवादी बन्धन से अपने को मुक्त कर लिया। यहाँ के सभी देशों ने स्वतंत्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को लागू किया।

"यह परिस्थिति एक आग के पलीता के समान थी। गोर्वाचेव ने केवल उसमें माचिस लगाने का काम किया और आग को बुझाने से इन्कार कर दिया।"[18] "सोवियत संघ के तथाकथित पिछलग्गू देश अचानक ही अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम के केन्द्र में उपस्थित हो गये हैं। ये ऐसे परिवर्तन हैं जिनके दूरगामी प्रभाव और धीरे–धीरे स्पष्ट होंगे।"[19] बाद के समय में नवम्बर 1990 में नाटों एवं वारसा सन्धि के देशों ने समझौता किया एवं शीत युद्ध की स्थिति समाप्त करने की घोषणा की। जुलाई 1991 में वारसा पैक्ट समाप्त हो गया।

योरोप में साम्यवाद के विघटन के साथ इस महाद्वीप पर एक और महत्वपूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ इस महाद्वीप पर योरोपीय संघ का आधिपत्य जैसा कि इससे पहले कभी नहीं रहा। लेनिन ने बीसवीं सदी के प्रारम्भ में लिखा था योरोपीय संघ या तो असंभव है या फिर प्रतिक्रियावादी। पर आज जब हम देखते हैं कि विस्तार की प्रक्रिया शक्तिशाली हो रही है। इस विस्तार के युग में योरोपीय संघ असंभव नहीं है।

---

16. वही, पृ. 5
17. एक अनाम माकपा नेता का आत्मकथ्य, प्रासंगिकता पर प्रश्न, सहारा समय, 19 जुलाई 2003
18. Communism in East Europe, www.joesesays.from/history/14shtml
19. डी. एन. सिंह, पूर्वी यूरोप में परिवर्तन, प्रगति मंजूषा, अगस्तं 1990, पृ. 162

योरोपीय संघ अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण का ही एक प्रतिरूप है।[20] इस महाद्वीप के श्रमिक वर्ग के लिये यह विकास एवं इसका प्रभाव अत्यन्त महत्व का है। साथ ही योरोपीय संघ के देश महाशक्तियों के साम्राज्यवाद के अन्त के बाद विकासशील देशों से साधन, कच्चे माल आदि लेकर अपने भाग्य का पुनरुत्थान कर रहे हैं। इन देशों को अपने ऊपर पूर्णतया आश्रित बना रहे हैं। यह पूँजीवाद के विस्तार की एक प्रक्रिया है जिसके परिणाम स्वरूप में खतरनाक हो सकते है।

भारत एवं एशिया के देशों पर प्रभाव

(Impact on India and Asian Countries)

भारत में साम्यवादी दल की स्थापना 1924 में हुयी। उस समय भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कर रहा था। साम्यवादी दल ब्रिटिश साम्राज्यवाद का कट्टर विरोधी था। अतः शुरु में इसे गुप्त रूप से कार्य करना पड़ा। कुछ समय तक साम्यवादी कांग्रेस के वामपंथी गुट के रूप में रहे। 1934 में स्थापित समाजवादी दल भी कांग्रेस का वामपंथी अंग माना जाता रहा किन्तु समाजवादी दल का एक निश्चित आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक कार्यक्रम था। भारत का समाजवादी आन्दोलन रूस को अपना आदर्श मानता रहा। अतः भारत में साम्यवादी आन्दोलन के पोषण, विकास एवं निर्देशन के सूत्र भी रूस में ही रहे।

1935 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ने विश्व में सभी देशों के साम्यवादियों से फासीवादी शक्ति के विरूद्ध संगठित होने का निर्देश जारी किया तो भारत के साम्यवादी भी सतर्क होने लगे। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन से साम्यवादी पृथक रहे। यह उनका भारत देश के प्रति गैर वफादारी का कार्य था। भारत के साम्यवादी कांग्रेस को पूँजीपतियों का एजेण्ट एवं गाँधी जी को भारतीय बुर्जुआ वर्ग का नेता कहते रहे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रूस मित्र राष्ट्रों में शामिल हुआ। अतः भारत में साम्यवादी दल ब्रिटेन का समर्थक बन गया। "भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने साम्यवाद के कारण भारतीय स्वतंत्रता के लिये चल रहे संघर्ष में राष्ट्र की मुख्यधारा के विपरीत जाकर सोवियत संघ को अधिक प्राथमिकता दी।"[21]

भारत की स्वतंत्रता के बाद भारतीय साम्यवादी भारत की परिस्थितियों का आंकलन मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद के आधार पर करने लगे एवं स्टालिन की नीतियों के समर्थक बन गये। क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की नीतियों के आधार पर ही भारतीय साम्यवादी अपनी नीति निर्धारित करते रहे। "यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि भारतीय कम्युनिस्ट .... अपने देश पर गर्व करने की बजाय साम्यवाद में ही सिर

---

20. James Steward, The European Union and the Future & Socialism, People's Weekly Worldly - 22 May, 1995
21. Mohit Sen, A Traveller and the Road, The Journey of an Indian Communist, P. 27

खपाते रहे।"[22]

साम्यवादी भारत एवं उस समय की तीसरी दुनिया के देशों में उभरकर सामने आये जो हर मामले में रूस और चीन की नीतियों का ही अनुसरण एवं पालन करते रहे। इस सम्बन्ध में व्यंग्य के तौर पर कहा जाने लगा, मॉस्को और पैकिंग में बरसात होने पर भारत एवं तीसरी दुनिया के देश में साम्यवादी छाता लेकर निकलने लगते हैं।

सामान्यतया विभिन्न देशों में घटित होने वाली घटनाओं से किसी विशेष राजनीतिक दल की भूमिका का मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिये। "लेकिन भारत में उसी तरह जैसे दुनिया के दूसरे देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों और कम्युनिस्ट समर्थकों का असली स्वभाव दुर्भाग्य से रूस–चीन पूर्वी यूरोप आदि की घटनाओं से ही उद्घाटित होता रहा है। कम से कम भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन के जन्म से लेकर आज तक यही स्थिति है।"[23]

अगस्त 1991 में रूस में घटित घटनाओं का विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा। इन घटनाओं का दक्षिणी एशिया और विशेषकर भारत पर ही गहरा प्रभाव पड़ा। चूँकि भारतीय साम्यवादी रूसी और चीनी बैसाखी पर खड़े होने के आदी हैं, तभी अगस्त 1991 में रूस में साम्यवादी व्यवस्था के पतन के साथ ही वे भी हताश से होने लगे। उनकी दृष्टि में रूस में गोर्वाचेव द्वारा 'पेरेस्त्रोइका' एवं 'ग्लासनोस्त' की नीतियों को लागू किया जाना साम्यवाद विरोधी कार्य था और घोर अपराध था। भारतीय साम्यवादी यह मानने को तैयार नहीं थे कि ये सुधारवादी नीतियाँ जनता की इच्छा पर आधारित थी और वहाँ की जनता साम्यवादी शासन की कठोर नीति से उपजी घुटन भरे वातावरण से मुक्ति प्राप्त करना चाहती थी। उन्होंने गोर्वाचेव को "बीसवीं सदी का सबसे बड़ा शैतान" घोषित कर दिया। क्योंकि उसी के नेतृत्व में रूस में साम्यवादी व्यवस्था का विघटन हुआ।

भारत में साम्यवादियों के अनुसार 'स्टालिन द्वारा लादा गया आतंक जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति था। लेकिन गोर्वाचेव द्वारा लाये गये सुधार जनता की इच्छा के विरुद्ध थे।"[24] भारतीय साम्यवादियों के ये विचार उन्हीं के दृष्टिकोण के विरोधाभास को प्रदर्शित करते है। भारत में वे किसी राजनैतिक दल के या व्यक्तिगत अधिकारवाद का विरोध कर सकते है। किन्तु यदि रूस में जनता को अधिनायकवाद से कोई मुक्ति देने के लिये आगे बढ़ता है तो वह अमेरिका का एजेंट बन जाता है। यदि रूस में कोई प्रजातंत्र और स्वतंत्रता की बात करता है तो उन्हें वह पसन्द नहीं है। किन्तु भारत में संसदीय

---

22. बलवीर पुंज, एक कामरेड का कबूलनामा, सहारा समय, 1 अप्रैल, 2003
23. गिरधर राठी, देखिये माकपा का समाजवाद और लोकतंत्र, जनसत्ता
24. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ. 43

लोकतंत्र की पद्धति उन्हें स्वीकार है। इतना ही नहीं वे इस पद्धति में निर्वाचन भी लड़ते हैं और शासन का संचालन भी करते हैं।

भारतीय साम्यवादियों के बारे में सबसे बड़ी विडम्बना इस बात की है कि रूस में 19 अगस्त, 1991 को गोर्वाचेव के अपदस्थ होते ही साम्यवादी दल के दिल्ली कार्यालय में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है और 'शैतान' गोर्वाचेव के खात्मा के आन्दोलन में नेतृत्व में करने वाले येल्तसिन उनकी निगाह में 'हीरो' बन जाते हैं। गोर्वाचेव के पतन से भारतीय साम्यवादियों का खुश होना साम्यवादी दल की आन्तरिक नीति का मामला है ऐसा कहकर इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। क्योंकि इनकी इस नीति का असर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारतीय राजनीति पर भी पड़ता है। चाहे साम्यवादी दल सत्ता में हो या प्रतिपक्ष में हो।

रूस में गोर्वाचेव को अपदस्थ करने के लिये येल्तसिन ने जो प्रक्रिया अपनायी थी। वह किसी भी तरह से लोकतांत्रिक नहीं थी। 1985 से 19 अगस्त 1991 तक रूस में राष्ट्रपति गोर्वाचेव जनता द्वारा निर्वाचित संसद व साम्यवादी दल के स्पष्ट बहुमत से समर्थित नेता के रूप में शासन चला रहे थे। परन्तु उनको हटाने की प्रक्रिया में पुलिस के. जी. बी. और सेना को सम्पूर्ण अधिकार दे दिया गया तथा मीडिया के मुँह बन्द कर दिये गये। अचानक यह प्रचारित किया गया कि गोर्वाचेव अस्वस्थ हो गये हैं और सत्ता से पृथक हो रहे है। किन्तु भारतीय साम्यवादियों को इस अन्यायपूर्ण और गैर लोकतांत्रिक परम्परा पर कोई आपत्ति नहीं थी।

कुछ विचारकों के अनुसार भारत के साम्यवादी दल की इन नीतियों में कोई तत्व समाजवाद का नहीं दिखता है न ही रूस में साम्यवाद की समाप्ति के बाद दल द्वारा अपनायी गयी नीति कहीं से भी समाजवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है। वास्तव में भारत का साम्यवादी दल आज भी स्टालिनवादी प्रकृति के समाजवाद को ही आदर्श मानता है। जिन्हें स्टालिन की आलोचना नापसन्द है। वे समाजवाद के स्टालिनवादी रूप को तो सही मानते है और गोर्वाचेव के 'पेरेस्रोइका' एवं 'ग्लासनोस्त' पर आधारित समाजवाद को साम्यवाद का विरोधी।

जब भारत की वामपंथियों से मार्क्सवादी और साम्यवादी विचारधारा की असफलता पर प्रश्न किया जाता है। तो वे "पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ के घटना चक्र को विचारधारा नहीं व्यवस्था की पराजय मात्र मानते है।"[25] उनकी दृष्टि से अभी भी रूसी ओर चीनी साम्यवाद भारत के लिये आदर्श है। जबकि उनके द्वारा भारत में संसदीय प्रणाली को स्वीकृति देना ही उनकी विचारधारा की सबसे बड़ी पराजय है। क्योंकि भारत की जिस राजनैतिक व्यवस्था को बदलने के लिये वे संघर्षरथ रहे है। स्वयं उसी व्यवस्था का

---

25. सूर्यकान्त बाली, अब वाम को भारतीय परिभाषा दीजिये, नवंभारत टाइम्स, 23 अक्टूबर, 1991

अभिन्न अंग बन गये है। आज वे विचारधारा की सफलता और विफलता के बीच भटक रहे है।

भारतीयों ने संसदीय लोकतंत्र पर स्वीकृति दी। साम्यवादियों ने भी उसे स्वीकार कर लिया। उन्होंने चुनाव में भाग लिया, विधानसभा एवं संसद में बहस में भी हिस्सा लिया, पश्चिमी बंगाल में लगातार चौबीस वर्षों से भी अधिक समय तक सत्ता पर आरूढ़ है और शासन चला रहे हैं। भारत की विविध विपरीत परिस्थितियों से समझौते किये। जिन समझौतो के दौरान भारतीय साम्यवाद का स्वरूप विकृत होता गया। इसलिये कहा गया है कि "पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ में तो व्यवस्था पर काबिज होने के बाद कम्युनिज्म विफल हुआ है। जबकि भारत में वह व्यवस्था पर एक दिन के लिये काबिज हुये बिना ही जीर्णशीर्ण हो चुका है।"[26]

सोवियत विखराव एवं पन्द्रह गणराज्यों के महासंघ के विघटन से भारत पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा ऐसी भी आशंका भी प्रकट की गई। भारत द्वारा बाल्टिक गणराज्यों को मान्यता प्रदान कर दिये जाने से भी भारत में पंजाब और जम्मू कश्मीर में अलगाववाद को जोर मिलेगा यह आशंका भी की गई। जबकि ये आशंकायें बेबुनियाद साबित हुयी। क्योंकि भारत के संघ में शामिल राज्यों का इतिहास रूस के गणराज्यों के इतिहास से बिल्कुल पृथक है।

ऐतिहासिक रूप से वाल्टिक गणराज्य सोवियत रूस के भौगोलिक अंग नहीं थे। 1940 में रूस और जर्मनी के मध्य हुये समझौते द्वारा रूस ने इन्हें प्राप्त किया था ओर संघ में मिला लिया था। जबकि भारतीय संघ के कोई भी राज्य बलपूर्वक संघ में शामिल नहीं किया गया। इसी प्रकार सोवियत संघ के अन्य राज्य भी संघ से पृथक होने का वैधानिक अधिकार रखते थे। जबकि भारत का कोई राज्य ऐसा अधिकार नहीं रखता है। अतः भारतीय संघ से राज्यों से अलग होने की आशंका निर्मूल है।

वास्तव में भारत सहित तीसरी दुनिया के देशों के साम्यवादियों के सामने जो एक भ्रम की स्थिति उपस्थित हुयी है। इसका कारण यही है कि इन देशों के साम्यवादियों ने समाजवादी प्रयोग की असफलता को स्वयं नहीं झेला है। "इसलिये वे उस समाजवाद के शास्त्रीय रूप से चिपके रहे जिसका सपना 1917 में बोल्शेविकों ने दिखाया था।"[27] साथ ही विश्व साम्यवाद के किसी केन्द्र से उनके सामने दिशा निर्देश का अभाव भी रहा है।

यद्यपि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है। केवल एक या कुछ देशों में समाजवादी क्रांति के पूर्ण या आशिंक रूप से असफल हो जाने से एक क्रान्तिकारी विचारधारा के तौर पर मार्क्सवाद को अनुपयोगी सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि तीसरी दुनिया के देशों की निर्धन जनता के सामने साम्यवाद

---

26. वही, पृ. 4
27. यश चौहान, भारतीय साम्यवादियों की खुशफहमी, जनसत्ता, 15 जनवरी, 1994

एक बहुत महत्वपूर्ण विकल्प है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि प्रसिद्ध समाजवादी चिन्तक डॉ. राम मनोहर लोहिया ने साम्यवाद और पूँजीवाद को पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता की सगी सन्तानें कहकर दोनों की विचारधारा के स्तर पर तीसरी दुनिया के देशों के लिये अप्रासंगिक घोषित कर दिया था।

भारत सहित एशिया के इन विकासशील देशों में साम्यवादी गतिविधियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भारत में नक्सलवाद की गतिविधियाँ एवं साम्यवादी आन्दोलन में उभरते नेतृत्व, फिलिपाइन्स में प्रमुख विरोधी दल के रूप में साम्यवादी दल का उभरना, कम्बोदिया के स्वतंत्रता संघर्ष में साम्यवादी खमेर रूज की भूमिका और नेपाल में साम्यवादी दल की लोकतंत्र के समर्थक के रूप में शक्तिशाली भूमिका ये सभी ध्यानाकर्षणीय है। वास्तव में "आजादी स्वशासन और लोकतंत्र के लिये संघर्ष में से मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभुत्व को निकाल फेकने की कल्पना करना भी नामुमकिन है। तीसरी दुनिया के लिये मार्क्सवाद अभी भी क्रान्ति का औजार बना हुआ है।"[28] तीसरी दुनिया के देशों में अभी भी साम्यवादी लोकतंत्र, आजादी और स्वशासन के लिये संघर्ष जारी रखे हुये है।

तभी भारत एवं एशिया के देशों में साम्यवाद एवं समाजवाद के प्रति आज भी आकर्षण बना हुआ है। रूस में साम्यवाद के पतन के बाद भी एक बड़ा वर्ग मार्क्सवाद के प्रति अपनी भक्ति भावना छोड़ने के लिये तैयार नहीं है। भारतीय राजनीति में लोकतंत्र की सफलता का अर्थ सोवियत साम्यवाद की असफलता में खोजते हैं। परन्तु साम्यवाद को भारत में सफल बनाने की इच्छा रखने वालों ने स्टालिनवादी प्रणाली से अलग हटकर एक नवीन समाजवादी पद्धति पर कभी विचार करने का प्रयास नहीं किया। दिशा–निर्देशन के लिये हर समय रूस और चीन की ओर देखने वाले साम्यवादियों को अपनी विचारधारा को भारतीय परिस्थितियों के अनुसार ढालना होगा। क्योंकि भारत में रहकर भारत की परिस्थितियों को नकारना व्यवहारिक नहीं होगा।

जहाँ एक विचारधारा एवं व्यवस्था के रूप में साम्यवाद को भारतीय आज भी स्वीकृति दे रहे हैं। भारत–रूस सम्बन्ध पर भी सोवियत संघ के पतन का प्रभाव पड़ा है। आर्थिक एवं सैनिक क्षेत्र में भारत एवं रूस के मध्य हुये समझौतों के रूस द्वारा परिपालन को शंका की दृष्टि से देखा गया। "भारत कहाँ तक और कैसे सोवियत संघ में अपने हितों की रक्षा कर पायेगा। विशेषकर उस समय जब भारत को सोवियत संघ से अपनी सेना के तीनों अंगों के लिये सत्तर प्रतिशत हथियारों के लिये कल पुर्जे प्राप्त करना है और पेट्रोल, मिट्टी का तेल, डीजल, अखबारी कागज व अनेक खनिज पदार्थों का आयात करना है।"[29]

---

28. अभय कुमार दुबे, तीसरी दुनिया का भी मार्क्सवादी सपना है, जनसत्ता
29. राय सिंह, रूस बदल रहा है और हम अनिश्चय में हैं, जनसत्ता, 4 सितम्बर, 1991

रूस के राष्ट्रपति येल्तसिन ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट किया कि सोवियत संघ के भंग होने, शीतयुद्ध के समाप्त होने और अनेक विश्वव्यापी परिवर्तनों के बाद अब भारत–रूस सम्बन्ध में परिवर्तन लाया जायेगा। यह सम्बन्ध अब वास्तविकता पर आधारित होंगे। "अब भारत रूस सम्बन्धों में भावना का कम और व्यापार की भूमिका अधिक रहेगी।"(30)

बाद के समय में भारत एवं रूस के मध्य कई मैत्री एवं सहयोग सम्बन्धी समझौते हुये। दोनों देशों के राष्ट्राध्यक्षों के बीच मुलाकातें हुयी। कश्मीर समस्या पर रूस ने भारत का समर्थन करने का आश्वासन दिया। कारगिल युद्ध के समय रूस ने पाकिस्तान को नियंत्रण रेखा के सम्मान करने की सलाह दी।

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि विश्व की बदली हुयी परिस्थितियों में भारत आज भी अपनी सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये रूस पर निर्भर है। सोवियत संघ के विघटन के बाद भी रूस की सैनिक शक्ति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है। विश्व राजनीति में आगामी वर्षों में भी भारत सामरिक एवं सुरक्षा के मामलों में रूस की ओर देखता रहेगा। "भारत और रूस के मध्य मित्रता, विश्व के समस्त देशों के मध्य मित्रता की विशाल अवधारणा का एक भाग, एक बहुत महत्वपूर्ण भाग है और तीसरी दुनिया के देशों के मध्य मित्रता के विकास में बाधक नहीं है।"(31)

पूर्व सोवियत संघ की एशिया के विकासशील देशों के प्रति सहयोग की नीति रही है और यह मान्यता रही है कि इन्हें मित्रता एवं सुरक्षा के लिये पारस्परिक सन्धि में शामिल हो जाना चाहिये। वर्तमान में अफगानिस्तान, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया, मलेशिया, थाइलैण्ड इन सभी देशों से सम्बन्ध को सुधारने पर रूस को ध्यान देना चाहिये। फिलिपाइन्स सहित इन सभी देशों के साथ रूस के व्यापारिक, तकनीकी, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक सहयोग की भारी संभावनायें हैं।

पश्चिमी एशिया में रूस वहाँ के देशों को अमेरिकी प्रभाव स्थापना के विरोध में आर्थिक और सैनिक सहायता देती आयी है। परन्तु अब बदली हुयी स्थिति में रूस यहाँ के देशों इराक, इराक, सऊदी अरब आदि के साथ सम्बन्ध नये सिरे से बना सकता है। इराक पर अमेरिकी हमले में रूस की नीति मौन दर्शक और विवशता की रही है।

भारत और एशिया (विशेषकर पश्चिमी) के देशों के लिये भी यह एक सबक है कि वे अपनी आर्थिक एवं सैनिक सहायता के लिये केवल रूस पर ही निर्भर न करे। शक्ति संग्रह के लिये अन्य दिशायें भी खोजे। इन देशों के लिये विदेशी निर्भरता से आत्मनिर्भरता की ओर कदम उठाना आवश्यक है। निश्चित

---

30. राय सिंह, यथार्थ पर टिकेंगे भारत रूस सम्बन्ध, जनसत्ता, 9 फरवरी, 1993

31. T. N. Kaul, Stalin to Gorvachev, P. 209

रूप से सोवियत संघ के पतन से भारत सहित एशिया के देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर दृढ़ता से अपनी वकालत करने वाले एक सशक्त प्रवक्ता को खो दिया है।[32]

चीन एवं पूर्वी एशिया पर प्रभाव

(Impact on China and East Asia)

रूस में 1917 में साम्यवादी क्रांति की सफलता के लगभग तीन दशक बाद चीन में 1 अक्टूबर 1949 को साम्यवादी क्रान्ति सफल हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान चीन में उसके लिये परिस्थितियाँ बन रही थी। युद्ध के अन्त में जापान के आत्म समर्पण के कुछ समय बाद ही चीन के महान नेता माओत्से तुंग के नेतृत्व में लाल सेना ने च्यांगकाई शेक की सेनाओं को पराजित कर दिया और चीन में साम्यवादी जनवादी गणराज्य की स्थापना हुई। "चीनी क्रान्ति युद्धोत्तर विश्व की सबसे बड़ी घटना थी। .... चीन की क्रान्ति ने सिर्फ सत्ता हथियाने का रास्ता ही नहीं दिखाया, साथ ही साथ निर्माण का एक विकल्प भी रखा।"[33]

इससे पूर्व 1920 में मार्क्सवादी विचारों पर विश्वास घोषित करते हुये रूस की क्रान्ति से प्रेरणा लेकर माओ ने वहाँ साम्यवादी दल की स्थापना की थी। माओत्से तुंग ने रूसी क्रान्ति से पृथक हटकर चीन की ग्रामीण कृषक जनता को संगठित करके सैनिक शक्ति तैयार की थी। जबकि रूस में लेनिन ने क्रान्ति के लिये शहर के श्रमिकों को संगठित किया था। रूसी क्रान्ति में श्रमिकों की भूमिका महत्वपूर्ण रही परन्तु माओ के नेतृत्व में चीन की क्रान्ति में कृषकों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण रही है। कुछ विचारकों के अनुसार यह क्रान्ति "सही मायनों में क्रान्ति नहीं थी बल्कि च्यांग कोईशेक के कुशासन के खिलाफ गृहयुद्ध से हुआ सत्ता–पलट था।"[34] किन्तु मार्क्सवाद पर विश्वास रखने वाले माओ ने इसे चीन की साम्यवादी क्रान्ति ही कहा।

जबकि रूस की क्रान्ति को श्रमिक विद्रोह कहा गया, चीन की क्रान्ति को 'कृषक विद्रोह' कहा गया। माओ ने इसे 'जन साम्यवाद' कहा जिसमें श्रमिकों तथा कृषकों के अतिरिक्त समाज के विभिन्न क्रान्तिकारी वर्गों को भी शामिल किया गया। जिससे चीन में सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र के स्थान पर "विभिन्न क्रान्तिकारी वर्गों के अधिनायक तंत्र" की धारणा का प्रतिपादन माओ द्वारा किया गया। इस प्रकार माओ ने वर्गों के अस्तित्व एवं साथ ही वर्गों के सहयोग के नये विचार को रखा।

माओत्से तुंग ने इस बहुवर्गीय शासन के बारे में कहा "चीन का नवीन लोकतंत्र चार वर्गों

---

32. आफताब आलम, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का बदलता स्वरूप, प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी, 1991, पृ.–787
33. ए. के. राय, देंग के युग में भी माओ प्रासंगिक हैं, जनसत्ता, 14 जनवरी, 1994
34. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ.–19

श्रमिक, कृषक, लघु बुर्जुआ तथा राष्ट्रीय बुर्जुआ का सम्मिलित संगठन होगा।'' इसे ''जनवादी लोकतंत्र''(People's Democracy) कहा गया। जनता क़े लोकतंत्रीय अधिनायक तंत्र समाज में पूँजीपति वर्ग के अस्तित्व को भी स्वीकृति देते हुये माओ ने आर्थिक सुधार के लिये व साम्यवाद की स्थापना के लिये ''पूँजीपतियों के सामाजिक परिवर्तन'' (Mass Thought remoulding) एवं ''मस्तिष्क प्रक्षालन'' (Brain Washing) का मौलिक सुझाव प्रस्तुत किया। जिसके द्वारा माओ के अनुसार पूँजीपतियों को समाजवादी समाज का उपयोगी अंग बनाया जा सकता है।

कार्ल मार्क्स ने कहा था कि मजदूरों का कोई देश नहीं होता, किन्तु माओ ने राष्ट्रवाद को प्रमुखता दी। उसने अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी एकता के नाम पर चीन के राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा नहीं की। इस प्रकार से रूस और चीन के मध्य निरन्तर सैद्धान्तिक मतभेद सामने आते रहे और माओ पर मार्क्सवाद के चीनीकरण का आरोप लगाया जाता रहा।

फिर भी 1949 में चीन में साम्यवादी क्रांति की सफलता के बाद माओ ने रूस के साथ मैत्री समझौते किये। रूस के आदर्शों के आधार पर चीन में भी सामूहिक कृषि और उद्योग का आधार तैयार करने के लिये पंचवर्षीय योजनायें शुरू की गयी। चीन ने रूस से आर्थिक सहायता भी प्राप्त की। माओ चीन के साम्यवादी दल के अध्यक्ष के पद पर आसीन तो थे ही साथ में चीन के राष्ट्रपति भी बन गये। सत्ता दल एवं सेना पर अपना प्रभुत्व बनाते हुये उन्होंने चीन के साम्यवादी शासन को सैनिक तानाशाही में बदल दिया।

अपने शासनकाल में माओ ने चीन की स्थिति को सुधारने का हरसंभव प्रयास किया। ''सौं फूलो को खिलने दो' (Let Hundred Flowers Bloom) इस अभियान के द्वारा उन्होंने चीन की जनता को एक ओर कुछ स्वतंत्रतायें दी तो, दूसरी ओर अनुशासन के नाम पर उनकी आलोचना का कठोरता से दमन भी किया। चीन की अर्थव्यवस्था में तेजी से सुधार लाने के लिये उन्होंने 'उन्नति के लिये महान छलांग' का आन्दोलन (Great Leap Forward Movement) चलाया और कुछ ही वर्षों के भीतर चीन को विश्व की महाशक्तियों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया।

अपनी वृद्धावस्था को देखते हुये माओत्से तुंग ने स्वेच्छा से राष्ट्रपति के पद को छोड़ दिया और मृत्यु तक दल के प्रधान बने रहे। ''माओ की विकास नीति स्वनिर्भरता, सामाजिक न्याय एवं नैतिक प्रेरणा पर आधारित थी।'' उनका कहना था ''समाजवादी राज्य के लिये समाजवादी मनुष्य चाहिये।''(35) पर चीन में जनवादी लोकतंत्र के नाम पर स्थापित शासन सर्वाधिकारवादी बन गया था। चीन की राजनैतिक आर्थिक सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन पर शासन का कठोर नियंत्रण लागू था। एक दल की तानाशाही, विरोधी दल का अभाव, न्यायालय की स्वतंत्रता तथा प्रेस की आजादी का अभाव, शासन की विशिष्टतायें थी।

---

35. ए. के. राय, देंग के युद्ध में भी माओ प्रासंगिक हैं, जनसत्तां, 14 जनवरी, 1994

कठोर दमन के प्रतिक्रिया स्वरूप देंग की उदारवादी सुधार ने जनता की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कायम किया। परन्तु अगले सत्ता काल में चीन में देश के नवयुवक एवं युवतियों द्वारा स्वतंत्रता की माँग पर आवाज उठाये जाने पर सैनिक शक्ति के द्वारा थ्येन आनमन चौराहा पर उन्हें अमानवीय रूप से कुचल दिया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी चीन ने प्रारम्भ से ही हिंसात्मक एवं आक्रामक नीति अपनायी। इस नीति के अनुसार उसने तिब्बत पर अधिकार कर लिया एवं भारत पर आक्रमण करके उसके विशाल भू भाग को हथिया लिया। ख्रुश्चेव और ब्रेझनेव की शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति का विरोध किया।

प्रारम्भ में चीन में कुछ लोगों ने रूस में पेरेस्त्रोइका द्वारा लाये गये सुधारों की प्रशंसा की थी। उनकी दृष्टि से रूस पारम्परिक समाजवाद से आधुनिक समाजवाद की ओर अग्रसर हो रहा था। "ये परिवर्तन बहुत बड़े हैं जो इतिहास के महत्वपूर्ण चरणों के संकेत हैं।"[36] ऐसा उनका कहना था।

पर रूस में साम्यवाद के पतन के बाद प्रतिक्रिया स्वरूप चीनी साम्यवादी व्यवस्था में हलचल उत्पन्न होना स्वाभाविक था। सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप की घटनाओं का चीन की जनता पर जो प्रभाव पड़ा उससे भी चीनी शासन काफी परेशान रहा। चीनी साम्यवादी दल के अधिकारियों ने एक दस्तावेज जारी किया। उनका उद्देश्य था चीन की जनता को रूस में हो परिवर्तनों से अप्रभावित बनाये रखना और चीन में भी इस प्रकार के परिवर्तन के विचार को उभरने न देना।

चीनी अधिकारियों द्वारा जारी दस्तावेज में गोर्वाचेव को मार्क्सवाद के प्रति विश्वासघाती घोषित किया गया। उस पर आरोप लगाया गया कि वह पश्चिमी साम्राज्यवाद की सहायता से रूस में पूँजीवाद की पुर्नस्थापना करना चाहता है। पश्चिमी सहायता के कारण ही रूस में साम्यवादी दल को सत्ता से हटना पड़ा और सोवियत संघ में पश्चिमी उदारवाद की जीत हुई। "दरअसल, ये सब गोर्बाचेव के विश्वासघात और अमेरिकी हस्तक्षेप से ही सम्भव हुआ।"[37]

इस दस्तावेज में स्टालिनवाद की प्रशंसा के गीत गाये गये। निकेता ख्रुश्चेव को भी आलोचना का पात्र बनाया गया और कहा गया, कि जिस उदारवारदी धारा की शुरूआत खुश्चेव द्वारा 1950 के दशक में की गई थी और समाजवादी सुधारों की दिशा को विपरीत दिशा में मोड़ने का प्रयास किया गया था, उसी धारा को गोर्वाचेव ने आगे बढ़ाया।

गोर्वाचेव को अमेरिका का एजेन्ट घोषित करते हुये दस्तावेज में चीनी जनता को सचेत किया गया कि पश्चिमी साम्राज्यवादी प्रयासों का दबाव अब चीन पर भी पड़ सकता है। अतः चीनी जनता इसका

---

36. लू कांगमिंग एवं जाओ याओ, बीजिंग रिव्यू, 9–15 जनवरी, 1989

37. परदेस, गोर्बाचेव पर चीनी आरोप, नवभारत टाइम्स, 29 अक्टूबर, 1991

सामना करने के लिये तैयार रहे। उन्हें चीन की मजबूत सैनिक शक्ति का आश्वासन दिया गया कि शक्तिशाली चीनी सेना के "तीस लाख सैनिक किसी भी मुकाबले का सामना करने के लिये सक्षम हैं।"(38)

"चीन के अनुसार सोवियत संघ का आर्थिक संकट, राजनीतिक अराजकता और सोवियत विघटन के लिये सिर्फ विश्वासघाती और गद्दार गोर्वाचेव और उनकी नीतियाँ ही जिम्मेदार हैं।"(39)

चीनी सरकार द्वारा जारी इस दस्तावेज से स्पष्ट था कि वह काफी दबाव में है और भावी अनिष्ट की आशंका उन्हें भयभीत किये है। विश्व के अनेक मानवाधिकार संगठनों ने चीनी सरकार की आलोचना भी की जिसमें एमनेस्टी इण्टरनेशनल भी शामिल था। चीन की भयभीत सरकार लोकतंत्र के समर्थकों को जेल में डालने और उन्हें यातनायें देने की नीति को जारी रखे हुये थी। अतः इस दस्तावेज को लेकर चीन की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आलोचनायें भी हुई कि क्या इस प्रकार के दस्तावेजों द्वारा जनता की इच्छा और लोकतंत्रीय विचारों को बदला या दबाये रखा जा सकता है ?

सोवियत संघ के पतन के बाद कुछ समीक्षकों द्वारा यह प्रश्न उठाया गया, कि रूस में किन परिस्थितियोंवश यह घटना घटित हुयी। कुछ विचारकों का मत है कि यह देश आर्थिक दृष्टि से तो पर्याप्त आगे बढ़ा परन्तु राजनैतिक दृष्टिं से समय से काफी पीछे बना रहा। यहाँ स्वतंत्रताओं के अभाव के कारण जनता का आन्तरिक असंतोष धीरे–धीरे बढ़ता रहा। परन्तु चीन ने दूरगामी आर्थिक एवं राजनैतिक सुधार लागू किये।(40) सैद्धान्तिक दृष्टि से चीन एवं रूस के बीच मतभेद निरन्तर बने रहे। अमेरिकी खेमे के विरुद्ध दोनों देश एक जुट होने के स्थान पर परस्पर प्रतिद्वन्दिता में लगे रहे।

परन्तु अब सोवियत संघ के पतन के बाद एशिया में अमेरिका के प्रसार के प्रभाव के विरूद्ध चीन रूस का साथ चाहने लगा है। इसके पूर्व तक चीन अमेरिकी सम्बन्ध का उद्देश्य इस क्षेत्र में सोवियत संघ के प्रसार को रोकना था। परन्तु इस समय की बदली हुयी परिस्थिति में अमेरिका के लिये चीन की उस रूप में आवश्यकता नहीं रही। चीन के साथ व्यापारिक सम्बन्धों में भी अमेरिका की हानि होती रही। जिसे अमेरिका सहता रहा पर आज अमेरिका की नीति चीन विरोधी है। जिसका मुख्य कारण है चीन में साम्यवादी व्यवस्था सुदृढ़ रूप में कायम रहना।

आज चीन एशिया के देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाना चाह रहा है और चीन की गतिविधियों ने अमेरिका को एक नये गठजोड़ की संभावना से भयभीत कर दिया। परन्तु चीन व अमेरिका की इस नयी नीति का "दौर विश्व में क्या रूप लेगा इस सम्बन्ध में कुछ भी भविष्यवाणी नहीं की जा

---

38. वही

39. परदेस, गोर्वाचेव : चीनी आलोचना के अर्थ, नवभारत टाइम्स, 27 दिसम्बर 1991

40. V. P. Dutt, Return of Socialism in East Europe, Indian Express, 30 December, 1995

सकती।"[41]

बाद की बदली हुयी परिस्थितियों (1997) में चीन और अमेरिका न केवल ओपेक (OPEC) की बैठक में साथ बैठे वरन् सैनिक और व्यापारिक समझौते (1999) भी किये। चीन के राष्ट्रपति ने अमेरिका की यात्रा भी की।

साम्यवादी अर्थव्यवस्था होते हुये भी चीन ने आर्थिक क्षेत्र में खुलेपन की नीति अपनायी है। इससे चीन को दुनिया की अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ने का अवसर मिला है। विश्व की अर्थव्यवस्था से जुड़ने के परिणामस्वरूप चीन ने विदेशी पूँजी के लिये द्वार खोल दिया है। चीन की अर्थव्यवस्था में समाजवादी पद्धति के साथ पूँजीवाद की विशेषतायें शामिल हो चुकी है। हाँगकांग में सितम्बर 2002 में विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की बैठक में चीन के साम्यवादी दल के उदीयमान नेता झू ने कहा भी कि चीन एक राष्ट्र और दो अर्थव्यवस्थाओं को चलाने का अनोखा प्रयोग कर रहा है। चीन का अमेरीका और योरोप के देशों के साथ.अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो रहा है। पूँजीवाद की ओर अग्रसारित होती चीन की अर्थव्यवस्था में तेजी से परिवर्तन हो रहे है। कुछ विचारकों के मतानुसार यह चीन में एक प्रतिक्रान्ति के समान है। "हकीकत यह है कि प्रतिक्रान्ति की धूमहीन ज्वाला ने बिना शोर शराबा या विस्फोटक अवरोधों के चीन को अपनी लपेटों में समेट लिया है।"[42] पिछले बीस वर्षों की अवधि में चीन की व्यवस्था पूरी तरह बदल गयी है।

परिणामस्वरूप चीन को भी उन सभी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो विकासशील पूँजीवादी देशों में है। भारी मात्रा में बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है। शहरों में जनसंख्या का केन्द्रीयकरण हो रहा है। सम्पन्न लोगों की सम्पन्नता बढ़ रही है। इस प्रकार भले ही चीन में साम्यवादी दल के पास सत्ता हो और शासन में समाजवादी व्यवस्था के अनेक अवशेष विद्यमान हों पर आज चीन में जो व्यवस्था कायम है उसकी आत्मा पूँजीवादी ही है। चीन में ये परिवर्तन भी युगान्तकारी सिद्ध हो सकते हैं।

पूर्वी एशिया में जापान के साथ सोवियत संघ का सम्बन्ध सन्देह एवं अविश्वास का रहा है। परन्तु अब रूस एवं जापान के मध्य आर्थिक सहयोग की पर्याप्त संभावनायें हैं। लाओस, कम्पूचिया एवं वियतनाम के प्रति रूस की नीति का लक्ष्य रहा उनकी स्वतंत्रता को मजबूत बनाना और बाह्य हस्तक्षेप को रोकना। चीन की भाँति इस क्षेत्र के देशों विशेषकर वियतनाम के प्रति रूस की नीति सामान्य एवं सहयोग की हो सकती है। एक समाजवादी किन्तु तटस्थ वियतनाम अब इस क्षेत्र के लिये भय नहीं है।

---

41. अवधेश कुमार, अब चीन पर नजर है, नवभारत टाइम्स, 27 नवम्बर, 1991
42. सच्चिदानन्द सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, पृ.–96

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव

(Impact on International Politics)

25 दिसम्बर 1991 को रूस के सर्वोच्च सोवियत द्वारा संघ के विघटन की घोषणा कर दी गयी और विश्व के नक्शे से सोवियत संघ नामक महाशक्ति का नाम मिट गया व उसके स्थान पर ग्यारह स्वतंत्र गणराज्य अस्तित्व में आये। तेजी से घट रही इन घटनाओं ने सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य में डाल दिया।

''सोवियत रूस की घटनाओं ने तो विश्व का इतिहास ही नहीं बल्कि भूगोल भी बदल दिया है। जो देश सोवियत संघ कहलाता था वह लुप्त हो गया है।''[43]

अन्तिम सोवियत राष्ट्रपति मिखाइल गोर्वाचेव के त्यागपत्र के साथ केवल सोवियत संघ ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के इतिहास के एक युग का अवसान हो गया। 1985 में सत्ता ग्रहण के बाद गोर्वाचेव ने पेरेस्त्रोइका (आर्थिक पुनर्निर्माण) एवं ग्लासनोस्त (सामाजिक खुलापन) की जो नीतियाँ लागू की, वे सोवियत संघ की जनता के लिये ही नहीं वरन् विश्व के लिये युगान्तकारी सिद्ध हुई। इन सुधारों को लागू करते हुये उन्होंने बार–बार घोषणा की कि उनका लक्ष्य सोवियत संघ में समाजवाद को मजबूत करना है। परन्तु उनके सुधारों ने सोवियत संघ और समाजवाद दोनों को ही ध्वस्त कर दिया और जिन्हें बचाये रखने के लिये वह निरन्तर विरोधावासी प्रयास करते रहे उनके उत्तराधिकारी येल्तसिन द्वारा अनेकों आदेश जारी करके गोर्वाचेव से सब कुछ छीन लिया गया और गोर्वाचेव जैसे इतिहास पुरूष को इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिया गया।

सोवियत संघ का बिखरना, वहाँ साम्यवाद का ढहना, बीसवीं शताब्दी की वह महत्वपूर्ण घटना थी जिसने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक शून्य पैदा कर दी जब विश्व की सबसे शक्तिशाली पूँजीवादी ताकत (अमेरिका) के सामने समाजवादी प्रति सन्तुलनकारी शक्ति (सोवियत रूस) का अस्तित्व न रहा। क्योंकि ताकतवर समाजवादी संघ के अन्त हो जाने से अमेरिकी पूँजीवादी साम्राज्यवाद के हौसले बुलन्द हुये। केवल रूस ही नहीं वरन् पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों में भी पूँजीवाद की स्थापना की प्रक्रिया शुरू हो गयी और कुछ विचारकों की दृष्टि से रूस एवं पूर्वी यूरोप के देशों में एक प्रजातांत्रिक ढाँचा उभरने लगा। उनका तर्क था कि ''सोवियत संघ'' 'जनतांत्रिक समाजवाद' की खुराक पीकर नयी जान के साथ और कहीं ताकतवर होकर सामने आयेगा।''[44] व्यवहार में साम्यवाद के अन्त के साथ उसकी शक्ति का भी ह्रास हुआ।

रूस–अमेरिका सम्बन्ध में सुधार (Improvement in Russian-American Relations)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दो महाशक्तियों अमेरिका एवं रूस के मध्य

---

43. राय सिंह, दफन हो गया है सोवियत साम्राज्य, जनसत्ता, 27 दिसम्बर, 1991
44. सीताराम येचुरी, पिछले साल भर का लेखा–जोखा, लोकलहर, 6 दिसम्बर, 1992

निरन्तर शीतयुद्ध की स्थिति बनी रही। कई बार दोनों के बीच तनाव में चरम सीमा आयी। 1985 से 1991 की समयावधि रूस एवं अमेरिका के सम्बन्धों में एक विशेष सीमा चिन्ह के रूप में मानी जाती है। जब दोनों के मध्य शीत युद्ध का अन्त हुआ एवं कूटनीतिक सम्बन्ध में सुधार आया।

राष्ट्रपति गोर्वाचेव द्वारा अत्यधिक उदारवादी सुधार कार्यक्रम लागू किये जाने से एक ओर सोवियत संघ के आन्तरिक क्षेत्र में पिछले सात दशकों का पुराना अधिनायकतंत्रवादी शासन समाप्त हुआ और दूसरी ओर अमेरिका एवं पश्चिमी देशों के साथ उन्होंने मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया। अपने देश में राजनैतिक प्रणाली को नया रूप दिया। जनता को खुली बहस की अनुमति दी और येल्तसिन ने अमेरिका से अच्छा सम्बन्ध बनाने के लिये तत्कालीन राष्ट्रपति रोनॉल्ड रिगेन से लगातार मुलाकातें कीं। जार्ज बुश एवं गोर्वाचेव के मध्य हुयी बैठकों में बुश से स्पष्ट कहा कि अब हम अपने को एक दूसरे का शत्रु नहीं मानते। रूस एवं अमेरिका नये सम्बन्धों में बँध रहे हैं और ये आपसी विश्वास पर तथा आर्थिक एवं राजनैतिक स्वतंत्रता के लिये प्रतिबद्धता पर आधारित हैं।[45]

इसी प्रकार बाद में राष्ट्रपति येल्तसिन एवं अमेरिकी राष्ट्रपति की मुलाकातों के परिणामस्वरूप रूस एवं अमेरिका के मध्य सम्बन्धों में सुधार आया। "सोवियत संघ और अमेरिका के बीच सम्बन्ध सुधरना इस सदी की महान घटना मानी जाती है। .... दोनों महाशक्तियों के बीच सीधे टकराव की गुजांइश न रहने पर हथियारों की यह प्रतिस्पर्धा कम हो रही है।"[46] दोनों देशों के मध्य इस सिलसिले में दिसम्बर 1987 में मध्यम और कम दूरी के परमाणु प्रक्षेपास्त्रों को सीमित करने के लिये समझौते हुये। गोर्वाचोव ने रूस की सैनिक शक्ति एवं हथियारों में कटौती की घोषणा महासभा में की। वार्सा सन्धि के देशों के सोवियत संघ से अलग हो जाने से विश्व राजनीति में नाटो की भूमिका कम महत्वपूर्ण हो गयी। अमेरिका ने स्टारवार जैसी योजनाओं का उल्लेख करना कम कर दिया। 15 फरवरी 1989 को अफगानिस्तान से सोवियत सेना वापस बुला ली गई और जर्मनी का एकीकरण हो गया। 2 अक्टूबर 1989 को माल्टा प्रपत्र द्वारा गोर्वाचोव ने शीत युद्ध की समाप्ति की घोषणा की। "सोवियत संघ में प्रजातांत्रिक आन्दोलन का विकास .... इस बात की गारण्टी है कि महाशक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता कम हो रही है और शस्त्रों की दौड़ भी धीमी पड़ रही है।"[47]

यद्यपि रूस को नाटो का सदस्य बनाये जाने की प्रारम्भिक अपील को ठुकरा दिया गया था। जुलाई 1990 को नाटो के नेताओं ने शीत युद्ध की समाप्ति की घोषणा भी कर दी। जुलाई 1991 में वारसा पैक्ट समाप्त कर दिया गया। 6 नवम्बर 1991 को रूस नाटो का सदस्य बन गया। नाटो के शस्त्र भण्डार

---

45. नवभारत टाइम्स, 3 फरवरी, 1992, पृ. 10
46. माणिक भट्टाचार्य, एक ध्रुवीय विश्व में जीना सीखना होगा, जनसत्ता,, 28 अप्रैल 1992
47. Sunil Bhattacharya, Democracy, Socialism and Soviet Union, Radical Humanist, July 1991, P.-17

में 80 प्रतिशत कटौती की घोषणा की गयी। रूस ने नाटो के साथ 'शान्ति के लिये सहभागिता' का समझौता पर हस्ताक्षर किये (1–2 नवम्बर, 1997) एवं रूस योरोपीय खेमे में शामिल हो गया। ''लगता है कि गोर्वाचोव के मस्तिष्क में एक ऐसी धारणा काम कर रही थी जिसे उसने 'एक सामान्य योरोपीय घर, (A Common European Home) कहा।''[48] इस प्रकार साम्यवादी तंत्र के बिखर जाने के बाद एक एकीकृत योरोप का नया सपना सुरक्षा एवं आर्थिक क्षेत्र में जन्म ले रहा है।

दूसरे विश्व महायुद्ध की समाप्ति के बाद से लगभग आधी शताब्दी तक दुनिया की दो महाशक्तियों अमेरिका एवं रूस के बीच जो शीत युद्ध चलता रहा, जिसमें इन देशों की लाखों की सम्पत्ति शस्त्र प्रतियोगिता में नष्ट होती रही, उसमें विराम आया। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शीतयुद्ध की स्थिति को समाप्त करवाने में प्रमुख भूमिका निभाने वाले गोर्वाचेव यद्यपि अपने देश में अपने ही सुधारों के शिकार हुये पर विश्व नेताओं ने उनकी असीम सराहना की। यहाँ तक कि गोर्वाचोव को 1989 में नोबल शान्ति पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया। गोर्वाचेव की उदार, सौम्य एवं समझौतावादी नीति के कारण विश्व राजनीति में शान्ति को महत्व मिला।

एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था (Unipolar World System)

संघर्ष की राजनीति की समाप्ति के बाद रूस को यह आशा बँधी कि वह अपने आर्थिक संसाधनों का अब जनकल्याण में एवं देश की आर्थिक स्थिति सुधारने में प्रयोग करेगा। परन्तु महाशक्तियों के इस संघर्ष में केवल सोवियत संघ पीछे हटा है अमेरिका नहीं। अमेरिका को अपने सैनिक व्यय में कटौती करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ। अतः उसकी सैनिक शक्ति ज्यों की त्यों बनी रही। ''यानि शीतयुद्ध की समाप्ति का मतलब यह निकला है कि जो दुनिया अभी तक दो ध्रुवों के बीच टिकी हुयी थी वह अब एक ही ध्रुव पर निर्भर हो गयी।''[49]

इस एक ध्रुवीय राजनीति में शक्ति का सन्तुलन समाप्त हो गया है और ध्रुव के महानायक अमेरिका को मनमानी करने के अवसर अधिक मिल गये है। इसके परिणामस्वरूप अब अमेरिका एशिया और योरोप के विकासशील देशों के प्रति वृत्ताकरण की नीति का और अधिक विस्तार कर रहा है। साम्यवाद की समाप्ति से सम्पूर्ण योरोप में अब स्वतंत्र अर्थ व्यवस्था स्थापित हो रही है। अपने आर्थिक साम्राज्य के विस्तार द्वारा अमेरिका इन देशों के विकास की गति को प्रभावित करता रहेगा। सोवियत संघ के पतन के बाद से ''अमेरिका ने अपनी दादागिरी का खुला प्रदर्शन किया है। इराक पर डाले जा रहे ताजातरीन दबाव, लीबिया के खिलाफ लगातार जारी की जा रही धमकियाँ, क्यूबा की मुजरिमाना तथा अमानवीय नाकेबन्दी, अंगोला

---

48. R. L. Nigam, M. N. Roy and Russian Revolution, Radical Humanist, Feb. 1992, P.-9

49. माणिक भट्टाचार्य, एक ध्रुवीय विश्व में जीना सीखना होगा, जनसत्ता, 28 अप्रैल, 1992

तथा मोजांबिक में खुली दखलंदाजी तो अमेरिका की दादादिलेरी की चन्द मिसालें भर हैं।[50]

अभी हाल ही इराक पर अमेरिकी हमला उसकी चौतरफा हमले की रणनीति का हिस्सा है। जो सैनिक से लेकर आर्थिक क्षेत्र तक विस्तृत है। अधिकांश मुद्दों पर योरोप के देश उसका साथ देते हैं क्योंकि उनके हित एक समान हैं। जब अमेरिका ने रूस के विरोध के बावजूद 1999 में पौलेण्ड, हंगरी और चेक गणराज्यों को नाटो में शामिल किया तो इसे रूस ने भी अपने सैनिक घेरेबन्दी के रूप में देखा पर न चाहते हुये भी रूस नाटो के प्रसार का अमेरिकी सहायता की प्रत्याशा में मुखर विरोध नहीं कर पा रहा है। रूस के पूर्व सहयोगियों को नाटो में शामिल करने के पीछे अमेरिका की मंशा रूस के पुनः शक्ति केन्द्र में विकसित होने की किसी भी संभावना को जड़ से समाप्त करना है। एशिया के देश खुलकर अमेरिका के विरोध में सामने नहीं आ सकते हैं। खुले विरोध से भारत जैसे देशों के हित को क्षति पहुँच सकती है। इसी प्रकार आतंकवाद और भारत पाकिस्तान विवाद के मामलों में भी अमेरिका की भूमिका उचित नहीं रहती है। पाकिस्तान के माध्यम से अमेरिका हमेशा भारत पर दबाव बनाये रखना चाहता है।

इस प्रकार सोवियत संघ के पतन के उपरान्त अमेरिका निदेशित नयी विश्व व्यवस्था दुनिया में अपनी जड़े जमा रही है। इराक पर अमेरिकी हमले से यह प्रक्रिया चरम सीमा पर पहुँच गयी है। "अमेरिका ने बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ती स्वाभाविक प्रक्रिया को पलटकर एक ध्रुवीय व्यवस्था कायम करने का प्रयास किया है।"[51] वह दुनिया के समस्त देशों को अपने सामने नतमस्तक देखना चाहता है। विश्व की राजनीति एवं आर्थिक उन्नति अमेरिका के दृष्टिकोण पर निर्भर होती चली जा रही है।

इस नयी विश्व व्यवस्था में विजयी महानायक अमेरिका अपनी शक्ति के मद में चूर हो रहा है। ठीक इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का अनुमान लगाये हुये डॉ. राम मनोहर लोहिया ने एक लेख में कहा था, "............. यह बहुत अजीब और दुर्भाग्यपूर्ण बात होगी यदि एक पक्ष दूसरे को पूरी तरह पराजित करके सारे विश्व पर आधिपत्य स्थापित कर लेगा।" आज विश्व राजनीति अपने इसी दुर्भाग्य के दिन को देख रही है। यद्यपि लोगों की दृष्टि में अमेरिका योरोपीय जाति का ही विस्तार है पर योरोप के देश अपनी शक्ति में ही अपना व्यक्तित्व देखना चाहते हैं। जबकि अमेरिका का लक्ष्य एक ध्रुवीय विश्व की स्थापना की है। योरोप के देश आज भी बहुध्रुवीय विश्व की आकांक्षा रखते हैं।

शक्ति सन्तुलन का झुकाव—पूँजीवाद की ओर

(Balance of Power tilted towards Capitalism)

आज ऐसे विचारक भी है जो इस स्थिति को शीतयुद्ध की समाप्ति कहकर उसका स्वागत कर

---

50. सीताराम येचुरी, पिछले साल भर का लेखा–जोखा, लोकलहर, 6 सितम्बर, 1992

51. सीताराम येचुरी, और यह साम्यवादी शिखर, सहारा समय, 19 जुलाई, 2003

रहे है। यह आशा कर रहे है कि शस्त्रीकरण पर होने वाला खर्च अब जनकल्याण विकास कार्यों पर होगा। "दूसरी ओर पूँजीवाद के समर्थक इसे अपनी ओर अपने विचारों की जीत मान रहे हैं या कि इसे वे अपनी निर्णायक जीत बता रहे हैं।"[52] इसके विपरीत मार्क्सवादी उसे कुछ लोगों की भूल की वजह से हुयी गड़बड़ी बता रहे हैं। "कुछ ठीक आदमी मिल जाते तो शायद समाजवाद जी जीता।"[53]

वास्तविकता पर एक दृष्टिकोण यह है कि "अक्टूबर क्रान्ति के चौहत्तर वर्ष बाद, उस राज्य को ही खत्म कर दिया गया जिसकी स्थापना लेनिन और बोल्शेविकों ने की थी। पूर्वी यूरोप में कायम समाजवाद के पराभव के साथ जुड़कर इसने विश्व शक्तियों का सन्तुलन फिलहाल तो साम्राज्यवाद व विश्व पूँजीवाद के पक्ष में झुका दिया है।"[54]

इस विचार के अनुसार "समकालीन पूँजीवाद, अब भी साम्राज्यवाद ही है।"[55] साम्राज्यवाद मार्क्सवादी विचार वर्ग संघर्ष का स्पष्ट विरोधी है जैसे कि पूँजीवाद। अतः यदि समाजवादी व्यवस्था को आघात पहुँचा है तो विश्व राजनीति में शक्ति सन्तुलन निश्चित रूप से पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की ओर झुका है। विश्व में पूँजीपतियों का प्रभुत्व अधिक सुरक्षित हो रहा है। पर दुनिया के अन्य पूँजीवादी देश अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध सचेत हो रहे हैं।

नवीन ध्रुवीकरण की सम्भावना (Possibility of Neo-Polarization)

आर्थिक दृष्टि से भी सोवियत संघ का पतन एवं एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था योरोप के देशों के लिये लाभदायक सिद्ध हो रही है। योरोप के कई देश अब अपनी सुरक्षा के लिये अमेरिका पर निर्भर नहीं है। यद्यपि ब्रिटेन अपनी कुछ कमजोरियों के कारण अमेरिका का घोर समर्थक बना हुआ है लेकिन जर्मनी, फ्रांस, जापान आदि देश अब अमेरिका के अन्ध समर्थक नहीं रहे। अभी हाल ही की इराक लड़ाई इसी बात का उदाहरण है। "सामरिक रूप से विश्व भले ही एक ध्रुवीय हो गया है लेकिन आर्थिक रूप से अभी भी जापान और जर्मनी अपना अलग अस्तित्व बनाये हुये है।"[56] यह बात आज की स्थिति पर भी पूर्णतया लागू होती है।

बहुत पहले ही लन्दन के पत्र 'इकोनोमिस्ट' ने लिखा था कि 1989 में टोक्यो में बुश समेत 163 देशों की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि 'जापान ने महाशक्ति की जैसी हैसियत हासिल कर ली है।" उसका आर्थिक प्रभाव प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में बढ़ता ही जा रहा है। "टाइम" साप्ताहिक के कथनानुसार

---

52. राजेन्द्र धोड़पकर, पूँजीवादी रास्ते में साम्यवाद आ कैसे सकता है, जनसत्ता, 7 अक्टूबर, 1991
53. वही
54. प्रकाश कारात, साम्राज्यवाद की सच्चाई और समाजवाद का भविष्य, लोकलहर, 2 नवम्बर, 1997
55. वही
56. माणिक भट्टाचार्य, एक ध्रुवीय विश्व में जीना सीखना होगा," जनसत्ता, 28 अप्रैल, 1992

एशिया में लगी जापानी पूँजी ने वहाँ लगी अमरीकी पूँजी को भिखारी के समान बना दिया है।[57]

यही नहीं कुछ विचारकों के अनुसार "अमेरिका और जापान के बीच आर्थिक मतभेद शीतयुद्ध के स्तर तक जा सकते है।"[58] जर्मनी और जापान का सशक्त आर्थिक शक्ति के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उभरना विश्व व्यवस्था में नवीन ध्रुवीकरण की संभावना को उत्पन्न कर सकती है। अप्रैल 1997 में रूस एवं चीन के मध्य सम्पन्न समझौता भी अमेरिका द्वारा स्थापित की जा रही एक ध्रुवीय व्यवस्था को चुनौती है।

विकासशील देशों के मध्य स्पर्द्धा (Rivalry Among Developing Countries)

नयी विश्व व्यवस्था में तीसरी दुनिया के देशों पर आर्थिक एवं सामरिक क्षेत्र में दूरगामी प्रभाव पड़ा है। "बदलती विश्व व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि .... तीसरी दुनिया के राष्ट्रों के बीच स्पर्द्धा को मजबूत कर रही है।"[59] यही बात आज की स्थिति में भी सत्य सिद्ध हो रही है। विकसित देशों के लिये आज तीसरी दुनिया के देश हथियार बेचने की सबसे बड़ी मण्डी बन गयी है। ये देश दुनिया के विकसित देशों से भारी मात्रा में हथियार खरीद रहे हैं। आज योरोप के देश अपने सुरक्षा पर व्यय को कम कर रहे है परन्तु शीत युद्ध एवं तनाव की कमी से तीसरी दुनिया के देशों में तनाव में कमी आने के स्थान पर हथियारों की प्रतिस्पर्द्धा तीव्र हो रही है, क्षेत्रीय समस्यायें तनाव को बढ़ा रही हैं।

अर्थव्यवस्था के अन्तर्राष्ट्रीयकरण एवं बाजारीकरण के कारण तीसरी दुनिया के विकासशील राष्ट्रों को अनेक अपमानजनक एवं राष्ट्रहित के लिये हानिकारक समझौता करने के लिये बाध्य होना पड़ रहा है। जैसे गैट या डंकल प्रस्ताव। इन देशों के लिये अपने राष्ट्र हित को सुरक्षित रखना असम्भव सा प्रतीत हो रहा है। इस स्थिति में "वैश्वीकरण और उदारीकरण के नाम पर विकासशील देशों के खिलाफ आर्थिक हमला और बढ़ेगा।[60] वैश्वीकरण के बहाने अमेरिका सम्पूर्ण दुनिया में स्वतंत्र पूँजीवादी व्यवस्था का विस्तार करके फिर से साम्राज्यवादी व्यवस्था की स्थापना करना चाह रहा है।

अमेरिका अपनी आर्थिक सहायता की नीति के आड़ में तीसरी दुनिया के आर्थिक उपनिवेशीकरण का प्रयास कर रहा है। इसके बाद अमेरिका का अगला कदम होगा इन देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना। अमेरिका इस प्रकार से इन देशों के शासकों पर दबाव बनायेगा कि वे अपने आर्थिक मामलों पर निर्णय अमेरिका के हित में लें। जहाँ सोवियत संघ के बिखराव ने स्वयं सोवियत संघ को विभिन्न स्वतंत्र

---

57. गिरीश माथुर, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हो रही तब्दीलियाँ, विदेशिका, जून 1989
58. गिरिजेश पंत, नयी विश्व व्यवस्था में लाचार तीसरी दुनिया, जनसत्ता, 9 जनवरी, 1993
59. गिरिजेश पंत, नयी विश्व व्यवस्था में लाचार तीसरी दुनिया, जनसत्ता, 9 जनवरी, 1993
60. सीताराम येचुरी, और यह साम्यवादी शिखर, सहारा समय, 19 जुलाई 2003

राष्ट्रों में विभाजित किया वहाँ योरोप के कुछ अन्य देशों में भी विघटन की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है। युगोस्लाविया, क्रोशिया, स्लोवानिया, मैसोलोनिया, बोस्निया और युगोस्लाविया में विभाजित हो गया। चेकोस्लोवाकिया चेक गणराज्य और स्लोवाक राज्य में विभाजित हो गया। युगोस्लाविया का पुनः विभाजन सर्विया और मोन्टनिग्रो में हुआ।

संयुक्त राष्ट्र संघ की दयनीय स्थिति (Pitiable Position of U.N.O.)

एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अमेरिका उन अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों, नीतियों और संस्थाओं की पूरी उपेक्षा करने लगा है जिनको द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी विश्व स्थिति में मान्यता प्राप्त थी। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के निदेशन में अमेरिका संयुक्त राष्ट्र संघ का स्थान ग्रहण कर रहा है। अमेरिका विश्व व्यापार संघ को अपने प्रभाव में लाने में सफल हो चुका है जिसके माध्यम से वह अपनी ही आर्थिक नीति के विकासशील देशों के प्रति लागू कर रहा है। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अमेरिका इशारे पर काम कर रही है। इराक पर आक्रमण के मामले में जिस प्रकार अमेरिका ने मनमानी की और संयुक्त राष्ट्र संघ की उपेक्षा की वह चिन्तनीय है। इराक में पुर्ननिर्माण के कार्य में अमेरिका को अपना समर्थन देने के लिये संघ को बाध्य होना पड़ा। 'अमेरिकी राष्ट्रपति बुश यहाँ तक कह चुके हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ तभी प्रांसगिक रह सकता है जब तक कि वह अमेरिकी गतिविधियों को अपना समर्थन देता रहे वरना यह विचार विमर्श का एक क्लब मात्र बनकर रह जायेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ के इतिहास में उसकी वर्तमान स्थिति सबसे दुर्बल एवं विवशता की है। संघ का महासचिव भी निरुपाय प्रतीत हो रहा है। अमेरिका की अति महत्वाकांक्षी मनोवृत्ति के सामने विश्व संगठन का अस्तित्व ही न केवल व्यर्थ व संदिग्ध सिद्ध हो रहा है वरन् उसकी नकारात्मक भूमिका के प्रति विश्व में निराशा व्याप्त है। विश्व राजनीति जिस प्रकार अमेरिकी एकाधिकार की ओर सरकती जा रही है। उससे संयुक्त राष्ट्र संघ के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो सकता है।

यद्यपि अब भी रूस और चीन के पास वीटो का अधिकार है पर अब वे अमेरिका की इच्छा के विरूद्ध इसका प्रयोग नहीं कर सकते। वीटो का प्रयोग अब अमेरिका की इच्छा से ही होगा। "इस तरह संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका के हित साधन का औजार बन गया। सभी अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर संघ ने अमेरीका की इच्छा के अनुसार कार्यवाही की है या चुप्पी प्रदर्शित की है। संघ के अंग विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन भी अमेरिका की व्यापारिक और आर्थिक नीति के क्रियान्वयन के सक्रिय साधन बन गये हैं। अब अन्य देशों पर अधिकार स्थापना के साधन केवल अमेरीका की सैनिक शक्ति नहीं है वरन् आर्थिक एवं व्यापारिक माध्यम द्वारा अमेरिका अन्य देशों पर नियंत्रण स्थापित कर रहा है जिसमें विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष उसकी सहायक संस्थायें हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका

की विदेश नीति को लागू करने का अंग मात्र बनकर रह गया है। अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद से लड़ने के बहाने भी दुनिया के अनेक देशों में हस्तक्षेप कर रहा है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थिति दिन पर दिन दयनीय होती जा रही है।

✦✦✦

पंचम अध्याय

साम्यवाद का भविष्य

- क्या साम्यवाद असफल ?
- क्या साम्यवाद अवैज्ञानिक ?
- क्या साम्यवाद का विकल्प सम्भव ?
- क्या साम्यवाद प्रासंगिक है ?
- साम्यवाद का भविष्य
- वैश्वीकरण एवं नव अमेरिकनवाद की चुनौतियाँ
- उपसंहार

पंचम अध्याय

साम्यवाद का भविष्य—कुछ प्रश्न

(Future of Communism - Some Questions)

"यह मान लेना कि साम्यवाद और समाजवाद की दुनिया समाप्त हो गयी है, भ्रमपूर्ण है और यह सोचना कि समाजवाद पूँजीवाद का दफन करेगा या पूँजीवाद समाजवाद का, विशुद्ध गर्वोक्ति है एवं आधुनिक विश्व में सम्भव नहीं है। दोनों का एक समिश्रण, जैसा कि किसी देश के अनुकूल हो, संभव है और आवश्यक भी।"[1] टी. एन. कौल का यह कथन यदि समाजवाद के भविष्य के प्रति यदि आशावादी नहीं है तो निराशावादी भी नहीं।

विगत शताब्दी के अन्तिम दशक के प्रारम्भ में ही साम्यवादी विश्व का उच्चतम शिखर ढह गया। साम्यवादी देशों में जन आन्दोलनों के दौर ने क्रमिक सफलतायें भी प्राप्त की जिसने विश्व के राजनीति शास्त्रीयों एवं बुद्धिजीवी वर्ग को चिन्तन का एक नया क्षेत्र प्रदान किया और उन्हें साम्यवाद का पुनर्विलोकन करने के लिये बाध्य किया।

विभिन्न वर्ग के चिन्तक, विषय विशेषज्ञ और लेखक विश्व इतिहास के इस युगान्तकारी घटना का अपने अपने तरीके से विश्लेषण करने में लग गये। सोवियत संघ एवं पूर्वी योरोप के देशों में साम्यवाद के विघटन के बाद जो नयी राजनैतिक संस्कृति पनपी उसे ध्यान में रखते हुये साम्यवाद पर नये सिरे से विचार प्रारम्भ हुआ। साम्यवाद की प्रकृति, उसकी कमियाँ, उसके क्रियान्वयन की पद्धति, उसकी वैज्ञानिकता एवं उसके भविष्य पर चर्चा, परिचर्चा तर्क वितर्क का एक दौर चल पड़ा।

मार्क्सवाद एवं साम्यवाद के बारे में सामान्यतया बुद्धिजीवियों एवं शिक्षाविदों में यही अवधारणा प्रचलन में है कि यह समानता के सिद्धान्त को धरती पर व्यवहारिक रूप में स्थापित करने की एक उच्चकोटि की विचारधारा है। सोवियत रूस में 1917 की अक्टूबर क्रान्ति की सफलता के बाद विश्व में यह विचारधारा और अधिक लोकप्रिय हुयी जब रूस की जनता ने वहाँ की पूँजीवादी एवं सामन्तवादी व्यवस्था को अस्वीकार कर एक वर्गविहीन, शोषण रहित एवं समानतावाद पर आधारित नवीन समाज की स्थापना की दिशा में प्रयास शुरू किया।

साम्यवाद की पितृ भूमि सोवियत संघ में वहाँ की जनता ने एक नवीन जीवन पद्धति की नींव के निर्माण करने में जिस तरह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से जिस

---

1. T. N. Kaul, Stalin to Govachev, P. 246

तरह करोड़ों श्रमजीवी वर्ग ने उत्साहपूर्वक अपने देश को उन्नति के पथ पर ले जाने में सफलता प्राप्त की उसका उदाहरण दुनिया के इतिहास में दूसरा नहीं मिलता। यह अभूतपूर्व घटना थी, परन्तु समय के साथ–साथ सोवियत अर्थव्यवस्था एवं शासन व्यवस्था में नौकरशाहीकरण, सत्ता का केन्द्रीयकरण तथा लौह–आवरण की नीति ने समाजवादी लोकतंत्र के आदर्श को एक पराधीन एवं बन्द समाज में कैद कर दिया। अपने साम्यवाद के आदर्श की रक्षा के लिये देश के भीतर नियंत्रण पर नियंत्रण लगाये जाते रहे, और बाह्य सुरक्षा के लिये देश का बेमिसाल सैन्यीकरण किया गया। जब रूस में गोर्बाचेव ने सत्ता ग्रहण करने के बाद 'पेरेस्त्रोइका' एवं 'ग्लासनोस्त' के द्वारा आर्थिक और लोकतांत्रिक सुधारों का बीड़ा उठाया तो नियंत्रणों के नींव पर टिके विश्व के महान शक्तिशाली देश सोवियत संघ की जनता ने न केवल सुधारों का उत्साहपूर्वक स्वागत किया वरन् साम्यवाद को ही अस्वीकार कर दिया।

यह एक ऐतिहासिक विडम्बना ही थी कि अपने अस्तित्व के चौहत्तर वर्षों के भीतर ही सोवियत संघ में साम्यवाद का यह प्रयोग असफल सिद्ध हुआ शायद "साम्यवाद से मोह भंग पूर्वी यूरोपीय देशों की अनिवार्य नियति थी।"[2]

"गोर्बाचेव के सुधारों ने सोवियत संघ और इसके समाजवाद दोनों को ही ध्वस्त कर दिया जिन्हें बचाने के लिये उसने निरन्तर जी तोड़ विरोधाभासी कोशिशें भी की।"[3] क्या यह केवल गोर्बाचेव की सुधार नीति की असफलता थी या समूची साम्यवादी व्यवस्था की असफलता या केवल मार्क्सवादी चिन्तन की विफलता ? प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया जायेगा।

क्या साम्यवाद असफल ?

(Is Communism A Failure ?)

जिस साम्यवादी क्रान्ति की सफलता ने सोवियत संघ को विश्व राजनीति में एक महाशक्ति की स्थिति प्रदान की, पूँजीवादी ध्रुव के अजेय प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मान्यता दी वही साम्यवादी व्यवस्था क्या वास्तव में सोवियत संघ के विघटन का कारण सिद्ध हुई ? तो क्या यह व्यवस्था एक असफल चिन्तन एवं पद्धति पर आधारित थी। वास्तव में हमे इसके लिये साम्यवाद के पतन के कारणों पर विचार करना होगा। जिसके बारे में विभिन्न विचारकों ने भिन्न–भिन्न मत प्रकट किये हैं।

साम्यवादी व्यवस्था के पतन के कारण (Causes of Fall of Communist System)

साम्यवादी व्यवस्था के पतन के कारणों में एक पक्ष का विचार यह है कि "इसका कारण उसकी

---

2. चेलप्पा अय्यर, भ्रामक विवेचन का शिकार मार्क्सवादी दर्शन, जनसत्ता, 7 फरवरी, सन् 1992
3. सम्पादकीय, नवभारत टाइम्स, लखनऊ 23 दिसम्बर, 1991

आन्तरिक कमजोरियाँ हैं। अगर उसकी उपलब्धियाँ उसी व्यवस्था की देन थी, उसकी असंगतियाँ भी उस व्यवस्था की उपज थीं।"[4] पश्चिमी यूरोप के देशों की भाँति सोवियत संघ में भी शासन व्यवस्था का नौकरशाहीकरण हुआ जिसका स्वाभाविक परिणाम था। लाल फीताशाही जिसने अर्थतंत्र एवं शासन को अकुशलता की ओर धकेला। इस मामले में यूरोप के देश एवं सोवियत संघ में अन्तर यह था कि पश्चिमी यूरोप में नागरिक स्वतंत्रतायें कायम रही जबकि सोवियत संघ में दल एवं शासन का कठोर नियंत्रण लागू रहा। साम्यवादी आदर्श सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र के स्थान पर रूस में साम्यवादी दल ही नहीं वरन् दल के कुछ गिने चुने नेताओं के तानाशाही की स्थापना हुई और शासन धीरे–धीरे अकुशलता का पर्याय बन गया।

स्टालिन के शासनकाल में साम्यवादी दल की तानाशाही व्यक्तिगत तानशाही में बदल गयी न केवल दल के भीतर विचार विभेद को बलपूर्वक दवा देने की परम्परा चल पड़ी वरन् सम्पूर्ण देश के भीतर भी लौह नियंत्रण की प्रथा लागू की गयी। लोकतंत्रीय स्वतंत्रता के दमन से स्वतंत्र चिन्तन और लेखन पर कड़ी पाबन्दी लग गयी और इस निरकुंश तंत्र के अनेकों अहितकर परिणाम सामने आते गये।

दल के नेतृत्व में साम्यवाद के प्रति आकर्षण जहाँ धीरे–धीरे कम होता गया वहीं स्वार्थी एवं जनता से पृथक नौकरशाही वर्ग में भी समाजवाद के प्रति विश्वास कम होता गया नौकरशाही यूरोपीय सभ्यता के आकर्षण से तो प्रभावित थी, परन्तु जनता को विचारगत नयी संस्कृति प्रदान करने में असफल रही। नौकरशाही की प्रमुख सफलता थी दल के नेताओं को प्रसन्न रखना एवं उनकी दमनकारी नीतियों को बिना विरोध के लागू करना।

दल के नेताओं के आसपास एक ऐसा अवचेतन शासन तंत्र विकसित हुआ जिसने जनता के जीवन स्तर को विकास की ओर ले जाने की ओर कम ध्यान दिया। एक ओर जन सामान्य के सामने 'सादा जीवन उच्च विचार' का आदर्श थोपा गया। रूसी जनता लौह पर्दे की सात दशकीय अवधि में देश में वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद सादगी और स्वावलम्बन का जीवन जीती रही।" दूसरी ओर दल के नेताओं एवं उच्च अधिकारियों के लिये उच्च वेतनमान और पश्चिमी संस्कृति के विलासितापूर्ण जीवन पर कोई पाबन्दी नहीं थी। शासन एवं सत्ता से बाहर तथाकथित रूढ़ीवादी विचारधारा के लोगों का दल एवं शासन पर प्रभाव दबा दिया गया था। उनकी स्थिति देश में उपेक्षित अल्पसंख्यकों की सी थी। स्वतंत्र चिन्तन करने वालों को के. जी. बी. का आतंक भयभीत किये रहता था। आधुनिक समाजों में लोकप्रिय समता रूसी समाज में दिखावे के लिये थी और स्वतंत्रता नाम मात्र के लिये भी नहीं। शायद स्वतंत्रता की आकांक्षा ने ही रूस में साम्यवाद को जड़ से उखाड़ फेंका।

---

4. अजय तिवारी, समाजवाद का पतन क्यों हुआ, नवभारत टॉइम्स, 10 जनवरी, 92

विश्व राजनीति में शोषण पर आधारित पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद के सामने शोषण को समाप्त करने वाला समाजवाद या साम्यवाद क्यों नहीं टिक सका इसके पीछे और भी कुछ कारण है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सोवियत संघ को स्वयं केवल अपने राष्ट्रीय एवं प्राकृतिक संसाधनों के बल पर ही अपना आर्थिक विकास करना पड़ा, अन्य समाजवादी देशों से सहायता प्राप्त करने के स्थान पर सोवियत संघ को ही उन देशों को आर्थिक विकास के लिये सहायता प्रदान करना पड़ा।

इसके अलावा तीसरी दुनिया के विकासशील देशों को भी पूँजीवादी ध्रुव से स्वतंत्र विकास के मार्ग पर ले जाने के लिये उनसे मैत्री अनुबन्ध करने पड़े। अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिये संघर्षशील देशों को भी सहयोग देना पड़ा। पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी देशों द्वारा प्रारम्भ शस्त्र प्रतियोगिता के दौड़ में भी सोवियत संघ को शामिल होना पड़ा। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दबावों ने भी सोवियत संघ के सामने अनेक विपरीत परिस्थितियाँ प्रस्तुत की जिसने भी साम्यवादी महाशक्ति को कुछ सीमा तक दुर्बल बनाया। 1989 में केवल छैः मास की अवधि के भीतर योरोप के समस्त देशों में साम्यवाद का अस्तित्व मिट गया।

कुछ परिस्थितिगत दबाव और उससे अधिक आन्तरिक दुर्बलतायें एवं व्यवस्था से उत्पन्न विसंगितयाँ सोवियत संघ के पतन के कारण बने। ऐसे विचारकों का कहना है कि समाजवादी प्रयोग के दौरान कुछ भूले हुयीं, उन्हीं भूलों ने विसंगतियों को जन्म दिया जिसके कारण साम्यवाद का सोवियत प्रयोग असफल हो गया और तथाकथित पूँजीवादी या संशोधनवादी विजयी हो गये।

इसी के पक्ष में तर्क यह भी दिया जाता है कि यह साम्यवादी विचारधारा की असफलता नहीं है वरन् व्यवस्था की असफलता है। कुछ लोगों की गलतियों ने व्यवस्था को असफल बना दिया। पर क्या यह कथन भी उचित नहीं है कि "अगर समाजवादी व्यवस्था के शीर्ष पर सब गलत लोग ही बैठ जाते है। तो इसका मतलब यह है कि उस व्यवस्था में यह गड़बड़ तो है ही कि उसके शीर्ष पर गलत लोग बैठ जाते हैं।"(5) पहले सत्तासीन कुछ गलत व्यक्तियों ने दमन और नियंत्रण का रास्ता अपनाया और जिसका लम्बे समय तक देश की जनता दमित मन से अनुसरण करती रही। इन बुराइयों को कम करने या कुछ सीमा तक हटाने के लिये 'पुनर्निर्माण'और 'खुलेपन' की नीति अपनायी गयी जिसका अन्तिम परिणाम था साम्यवाद का विघटन।

समाजवादी देश एवं सोवियत संघ के पतन का एक यह भी कारण बताया गया कि वे समय के साथ–साथ अपनी पद्धति में सुधार लाने में असफल रहे। सोवियत संघ में साम्यवाद के पतन के पीछे "मुख्य समस्या थी कि समाजवादी देशों की पद्धति आर्थिक दृष्टि से समय से काफी आगे थी और राजनैतिक

---

5. राजेन्द्र धोड़पकर, 'पूँजीवादी रास्ते में समाजवाद आ कैसे सकता है', जनसत्ता, 7 अक्टूबर, 91

दृष्टि से समय से काफी पीछे।"[6] योरोप के देशों के सामने पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि प्रजातंत्र एवं बहुलवाद ने मारक चुनौती प्रस्तुत की। समाजवादी अर्थव्यवस्था में समाज के प्रति जिस निःस्वार्थ सेवा की आवश्यकता होती है उसका वहाँ अभाव था। राजनीति एवं शासन में भी बहुमत के स्थान पर व्यक्तिगत तानशाही कायम रही। इन देशों में समय रहते आर्थिक एवं राजनैतिक पद्धति में सुधार नहीं लाये गये जिसका मूल्य उन्हें साम्यवाद के पतन के रूप में चुकाना पड़ा। प्रजातंत्र के युग में रहते हुये, समानता के उद्घोषक साम्यवाद की साया में निवास करते हुये ऐसी व्यवस्था को जारी रखा गया जो स्वतंत्रता, समानता और प्रजातंत्र के विपरीत थी।

यह भी तर्क रखा जाता है कि किसी देश में कोई ऐसी पद्धति ही सफल हो सकती है जिसके बीज वहाँ पहले से मौजूद हों, जो पद्धति परम्पराओं द्वारा धीरे–धीरे विकसित हो परन्तु सोवियत संघ में 1917 की क्रान्ति के बाद स्थापित समाजवादी पद्धति के लिये वहाँ उपर्युक्त भूमि नहीं थी न ही वहाँ साम्यवादी पद्धति का क्रमिक विकास हुआ। वहाँ की प्राचीन व परम्परागत पद्धति तो सामन्तवादी थी। इसलिये क्रान्ति द्वारा परिवर्तित एवं स्थापित साम्यवादी व्यवस्था वहाँ नहीं टिक पायी। "साम्यवादी देशों ने अपने समाज के लिये जो ढाँचा तैयार किया था उसे उन्होंने स्वयं तोड़–मरोड़ कर फेंक दिया। ऐसा लगता है मार्क्सवाद का जामा जरूरी पहन लिया गया था लेकिन सामन्तवाद और प्रतिक्रियावाद के कीटाणु पूरी तरह मर नहीं पाये थे।"[7]

रूस की जनता ने क्रान्ति के बाद एक स्वतंत्र और सम्पन्न जीवन की आशा की थी। किन्तु साम्यवादी शासन में रूसी जनता को भ्रम में डालकर रखा गया और भ्रमों का टूटना सोवियत संघ के टूटने का भी कारण बना। प्रथम तो वहाँ यह भ्रम पाला गया कि या तो भूख मिटाओ या फिर स्वतंत्रता का उपभोग करो। एक साथ दोनों की उपलब्धता सम्भव नहीं। दूसरा भ्रम था क्षेत्रीयता या नस्ल और संस्कृति की संकीर्ण निष्ठाओं को राष्ट्रीयता का नारा दिया गया। "............. इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि रोटी आजादी का पर्याय नहीं है और संकीर्ण निष्ठायें राष्ट्र नहीं बनाती।"[8]

"यह एक विशाल देश–दुनिया के विशालतम देश और उसकी जनता के पुंजित दमन का परिणाम था।" "यह वास्तव में एक नया आन्दोलन है।"[9] या फिर "यह सोवियत इतिहास का दूसरा महान आन्दोलन है।"[10] क्योंकि दमन और घुटन से मुक्ति दिये जाने की गोर्वाचेव की भावनायें वास्तव में रूसी

6. V.P. Dutt, Return of Socialism in East Europe, Indian Express, 30 December, 95
7. गिरिराज किशोर, न गाँधी खलनायक थे, न मार्क्स, जनसत्ता, 4 अप्रैल 1994
8. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ. 32
9. T. N. Kaul, Stalin to Gorvachev, P. 235
10. वही

जनता के समस्त वर्गों की आन्तरिक इच्छाओं का प्रतिनिधित्व कर रही थी। लम्बे समय समय बाद देश के वातावरण में नया और असीम उत्साह दिखाई पड़ रहा था। सभी इस आशा में थे कि भविष्य में जल्दी ही कुछ अच्छा होने वाला है।

टी. एन. कौल के अनुसार "ग्लासनोस्त के माध्यम से गोर्वाचेव ने दमित जनमत के प्लावन ग्रस्त द्वारों को खोला जिसने ऐसी धारा को जन्म दिया जिसे सहजता से नियंत्रित नहीं किया जा सका।" जो सोवियत संघ को अन्ततः साम्यवाद को विघटन की ओर ले गया।

साम्यवाद के पतन के विश्लेषण के लिये उत्तरदायी एक विचार यह भी है कि साम्यवाद के पतन का वास्तविक कारण आध्यात्मिक है। राष्ट्रसंघ में बुल्गारिया के राजदूत डॉ. पचोवस्की के अनुसार इसने मानवीय प्रकृति को ही गलत समझा। इनके सामने सबसे बड़ी चुनौती थी समाज का पुनर्निर्माण और उनका साधन था बीसवीं शताब्दी का अधिनायकतंत्र। उन्होंने धार्मिक विश्वास को मुख्य बाधा माना "मार्क्सवाद डार्विन के विकास सिद्धान्त का नास्तिकवादी रूपान्तरण था।"(11) साम्यवादी पद्धति में धर्म का बहिष्कार किया गया जो केवल मानवता के विरूद्ध ही नहीं वरन् मानवीय स्वतंत्रता के भी विरूद्ध था। "सोवियत संघ एवं पूर्वी योरोप में साम्यवाद केवल आर्थिक एवं सामाजिक विघटन के कारण असफल नहीं हुआ वरन् मुख्य कारण था आध्यात्मिक कैन्सर जिसने सम्पूर्ण मानवता के ढाँचे को ही नष्ट कर दिया।"(12)

इस प्रकार साम्यवाद के पतन के विश्लेषण के लिये विभिन्न चिन्तकों एवं लेखकों द्वारा विविध प्रकार के तर्क एवं मत प्रस्तुत किये गये। इस बिन्दु पर सभी विश्लेषक लगभग एकमत हैं। कि सोवियत संघ में साम्यवादी व्यवस्था की असफलता स्वयं व्यवस्थागत दुर्बलताओं, उसकी असंगतिओं एवं अन्तर्विरोधों के कारण सामने आयी।

"साम्यवाद का जो किला टूटा वह अपने ही अन्तर्विरोधों से खोखला हो चुका था। साम्यवाद मनुष्य की मुक्ति के एक मुकम्मिल स्वप्न के रूप में आया लेकिन उसने मनुष्य को उससे कहीं ज्यादा पराधीन बनाया जितना वह पूँजीवादी व्यवस्था में दिखाई पड़ता है।"(13)

'शोषण से मुक्ति एवं समानता का आश्वासन किन्तु व्यवहार में दमन एवं नियंत्रण इस अन्तर्विरोध की ओर सत्तासीनों का ध्यान नहीं गया। मार्ग की रुकावटों को दूर करने के स्थान पर शासन तंत्र की सुरक्षा के लिये दमन और नियंत्रण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची और इस अति का परिणाम था चोटी से नीचे गिरना। आवश्यकता इस बात की थी कि समय के साथ व्यवस्था में प्रविष्ट दोषों को दूर किया जाये पर व्यवस्थासीन

---

11. Dr. Slavi Pachovski, Global Voice, May 2000
12. वही
13. राजकिशोर, समाजवाद का भविष्य, जनसत्ता, 30 नवम्बर 98

लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया।

"साम्यवाद ने अपने को परिष्कृत या विकसित नहीं किया, इसलिये वह स्वयं तो नष्ट हुआ ही, शेष दुनिया की निगाह में भी पूँजीवादी का विकल्प नहीं बन सका।"[14]

समानता एवं शोषण विहीन समाज की स्थापना के लिये जिस साम्यवाद की प्रतिष्ठा पूँजीवाद के विकल्प के रूप में हुयी थी। आज सोवियत संघ के पतन के बाद उस व्यवस्था की असफलता पर दुनिया के चिन्तक आश्चर्य स्तम्भित है। "निश्चय ही यह समाजवाद की अब तक की सबसे बड़ी पराजय है।"[15]

समाजवादी अर्थव्यवस्था के पतन के कारण

(Causes of Fall of Socialist Economy)

सोवियत संघ में समाजवादी अर्थव्यवस्था का विघटन उसी समय प्रारम्भ हो चुका था जब स्टेलिन ने वृहद् रूप में औद्योगीकरण को अपनाया। विघटन की यह प्रक्रिया पतन की ओर अग्रसरित होते हुये 1990 में एक आश्चर्यजनक घटना के रूप में सामने आयी। इस घटना के आर्थिक पक्ष की विभिन्न विचारकों ने अनेक प्रकार से व्याख्यायें की।

समाजवाद के समर्थक एवं प्रसिद्ध विद्वान निर्मल कुमार चन्द्रा का कहना है कि सोवियत संघ में समाजवादी अर्थव्यवस्था के पतन का एक मुख्य कारण था "उपभोक्ता सब्सीडी का टाइम बम।"[16] रूसी अर्थव्यवस्था में पूँजी और बाजार की भूमिका बहुत कम थी। इसी कारण वहाँ मूल्य पद्धति बाजार के नियमों के अनुकूल नहीं थी। परन्तु फिर भी इस व्यवस्था की सबसे बड़ी सफलता थी कि इसने जनता की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने पर सर्वाधिक बल दिया। अतः यदि उपभोक्ता सामग्रियों को कम मूल्य में प्रदान करना यहाँ के समाजवादी ढाँचे का ही भाग था तो यह कैसे समाजवाद के ध्वस्त होने का कारण हो सकता है।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुये स्वयं प्रो. चन्द्रा कहते है कि मार्क्स के विचारानुसार समाजवाद सर्वहारा वर्ग के द्वारा सत्ता प्राप्ति के उपरान्त साम्यवाद की ओर संक्रमण का समय है। ऐसे संक्रमण काल में न तो यह सम्भव है। और न ही बुद्धिमतापूर्ण कि सबको उनकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाये। वास्तव में साम्यवादी समाज के प्रथम चरण में (सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद के बाद) जनता के जीवन की समस्त जरूरतों की पूर्ति होती है। और साम्यवादी समाज की उच्चतर अवस्था में 'प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' लागू होता है। सोवियत संघ अभी

---

14. राजकिशोर, समाजवाद का भविष्य, जनसत्ता, 30 नवम्बर 98
15. रेतमार, ऐसे ही समय में हमें जीना है, संकट के बावजूद, पृ. 95
16. Nirmal K. Chandra, Economics as Ideology and Experience, Frontline, March 12, 1999

साम्यवाद की ओर संक्रमण काल में ही था परन्तु वहाँ जनता की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के स्थान पर जनता को जीवन निर्वाह के लिये पर्याप्त आर्थिक सहायता या सब्सीडी देने का कार्य किया गया। इससे जन कल्याण की आवश्यकता पूरी होने के स्थान पर सरकार पर उपभोक्ता सब्सीडी का आर्थिक दबाव बढ़ता गया। यही आगे चलकर सोवियत अर्थव्यवस्था के पतन का कारण बना।[17]

सोवियत संघ में यद्यपि प्रति व्यक्ति आय कम थी पर प्रति व्यक्ति प्रोटीन एवं कैलोरी का उपभोग अधिक था। खाद्य सामग्री का मूल्य, मकान का किराया आदि भी कम थे। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक यातायात, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि में भी सरकारी सहायता उपलब्ध थी। सरकार की ओर से भारी आर्थिक अनुदान (सब्सीडी) देने का परिणाम था जनता द्वारा उपभोक्ता सामग्रियों का अत्यधिक उपभोग एवं अपव्ययी उपभोग। इस व्यय भार के साथ में सुरक्षा पर व्यय भार भी अधिक था। यही स्थिति सोवियत संघ को विनाश की ओर ले गयी। निश्चित रूप से यह सोवियत संघ के पतन के अनेक कारणों में से एक है।

इस विषय में प्रो. अमित भादुड़ी का कहना है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था श्रम का पूरा सदुपयोग चाहती है, बेरोजगारी श्रमिकों को काम देती है, उपभोक्ता सामग्रियों का रोजगार एवं बेरोजगार श्रमिकों में पुर्नवितरण करती है; इस पुर्नवितरण द्वारा लागत एवं संचित पूँजी की बचत होती है।[18] परन्तु उपभोक्ता सामग्री या खाद्य सामग्री के उत्पादन में वांछित वृद्धि नहीं हो पाती है।

प्रो. भादुड़ी के मतानुसार समाजवादी कार्यक्रम के प्रथम चरण में यह पद्धति सफल हो सकती है जहाँ क्रान्ति के द्वारा इस नयी पद्धति की स्थापना हुयी है। जैसा कि सोवियत संघ में हुआ। परन्तु समय के साथ सोवियत संघ में समाजवादी पद्धति को दोहरे दबाव का सामना करना पड़ा। प्रथम तो निवेश के लिये धन का प्रबन्ध करना और द्वितीय उपभोक्ता सामग्रियों की कमी। क्योंकि निवेश कार्यक्रम नौकरशाही द्वारा संचालित था। परिणामस्वरूप, केन्द्रीय योजनाकार नौकरशाही वर्ग (जो पूँजी निवेश करता है) एवं सामान्य उपभोक्ता वर्ग (जो माँग के स्वरूप को निर्धारित करते है) के मध्य अलगाव उत्पन्न हो गया था। समाजवादी पद्धति इस दोष को दूर नहीं कर सकी इसलिये ढह गयी और समाप्त हो गयी।

प्रो. भादुड़ी कहते हैं एक 'बेहतर समाज' के निर्माण की सामाजिक पद्धति का प्रयोग तब तक सफल नहीं हो सकता है जब तक कि एक स्वतंत्र एवं आत्म सुधार करने वाली आर्थिक या राजनैतिक मशीनरी न हो जो दलगत ढाँचे से पूर्णतया असम्बद्ध हो। यह मशीनरी विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करने वाली बाजार पद्धति हो या समाजवादी प्रजातंत्र के रूप में राजनैतिक पद्धति हो जो केन्द्र से शक्ति को विलग रखे। सोवियत संघ में ऐसा नहीं हो पाया। वहाँ पद्धति असफल हुयी इसलिये कि सैद्धान्तिक कठोरता ने सुधार

---

17. वही

18. Amit Bhaduri, Economics as Ideology and Experience, Frontline, March 12, 1999

के गम्भीर प्रयासों को नकार दिया।[19] अर्थ तंत्र पर भी दल की तानाशाही का होना सैद्धान्तिक कठोरता का ही एक रूप था।

प्रो. सी. पी. चन्द्रशेखर का कथन है कि समाजवादी पद्धति में लागत पूँजी एवं क्रिया के मध्य एक सामंजस्यता होनी चाहिये। परन्तु सोवियत संघ में केन्द्रीकृत योजना की पद्धति ने ही मूलभूत समस्यायें उत्पन्न की। इस प्रकार की योजना आवश्यक रूप से केन्द्रीकृत नहीं होनी चाहिये। केन्द्रीकृत योजना की प्रक्रिया वस्तुओं के मूल्य को स्थिर रख सकती है परन्तु यह जरूरी है कि नौकरशाही एवं प्रबन्धक योजनाबद्ध निर्णयों को विकेन्द्रीकृत रूप में लागू करें।[20]

सोवियत संघ में समाजवादी अर्थव्यवस्था ने यद्यपि सम्पूर्ण जनता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति को सर्वाधिक प्राथमिकता दी। वहाँ इस व्यवस्था के सामने मुख्य समस्या थी। ऐसी उपयुक्त संस्थाओं की जो योजना प्रक्रिया में केन्द्रीयकरण के साथ विकेन्द्रीयकरण की पद्धति को समन्वित करें। समन्वय स्थापित करने के प्रयास में समस्या आयी क्योंकि आदर्श प्रतियोगी बाजार में एवं वास्तविक जीवन की स्थिति में विकेन्द्रीकृत निर्णय व्यवस्था बिल्कुल भिन्न थी। इससे बाजार में वस्तुओं की स्थायी कमी उत्पन्न हो गयी। इसे जानोस कोर्नाई ने 1980 में 'मृदु बजट का दबाव' कहा। सरकारी सहायता से उत्पादन की वृद्धि को प्रोत्साहित किया गया, उत्पादन में वृद्धि हुयी परन्तु भारी मात्रा में जमाखोरी के कारण पुनः कमी उत्पन्न हुयी। इस प्रकार की पद्धति मूलक कमी के कारण सोवियत संघ की समाजवादी व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल सकी।[21]

सोवियत संघ में साम्यवादी व्यवस्था के पतन के इन आर्थिक कारणों के अतिरिक्त अन्य अनेक कारणों पर पहले भी विचार किया जा चुका है। प्रदीप बोस का कहना है कि जब 1989 में पूर्वी योरोप में और 1991 में सोवियत संघ में साम्यवाद का पतन हुआ तो साम्यवाद के समर्थकों को यह घटना इस शताब्दी की सबसे बड़ी पहेली प्रतीत हुयी। पश्चिमी दुनिया में साम्यवाद के विशेषज्ञ साम्यवाद की समस्याओं एवं कठिनाइयों का विश्लेषण करते हुये भी इस पद्धति के संभावित पतन का अनुमान नहीं लगा पाये थे।

परन्तु बोस का कहना है कि यह न तो कोई रहस्य था और न ही कोई पहेली। उनके विचारानुसार यह पतन एक तर्क संगत विकास था।[22] 1978 में ही सोवियत पद्धति एवं अर्थव्यवस्था में असंगतियाँ दृष्टिगोचर होने लगी थी एवं परिवर्तन की अवश्यम्भाविता अनुमानित थी। जब पोलैण्ड में श्रमिक

---

19. वही
20. C. P. Chandra Shekhar, Economics as Ideology and Experience, Frontline, March 12, 1999
21. C. P. Chandra Shekhar, Economics as Ideology and Experience, Frontline, March 12, 1999
22. Pradip Bose, Communism and Communist System - Some Reflections

वर्ग के प्रति सहानुभूति का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तभी यह समझा जा चुका था कि योरोप की सर्वाधिकारवादी पद्धति को विकलांग बनाने और पूर्णतया समाप्त करने की क्षमता इस आन्दोलन में निहित है। केवल पोलैण्ड में ही नहीं वरन् पूर्वी योरोप एवं सोवियत संघ में भी। इसका परिणाम था सोवियत संघ में साम्यवाद का पतन।

इस विषय में सच्चिदानन्द सिन्हा का विचार है कि सोवियत संघ में समाजवादी व्यवस्था का ढह जाना वास्तव में उस द्वन्द्व और संघर्ष में अर्न्तनिहित था जो एक औद्योगिक पद्धति और समाजवादी पद्धति की परम्परा के मध्य था। ''औद्योगिक आचार व्यवहार और प्रकृति का समाजवादी परम्परा की समतावादी और मानवीय आकांक्षाओं से मेल नहीं बैठाया जा सका। इस मेल के अभाव में समाजवादी व्यवस्था कायम नहीं रह सकती थी।''(23) सोवियत संघ में समाजवादी परम्परा की समानतावादी और मानवीय आकांक्षाओं की उपेक्षा की गयी और प्रतियोगात्मक औद्योगिक व्यवस्था को अपना लिया गया। परन्तु औद्योगिक व्यवस्था में जो कार्यकुशलता एवं क्षमता चाहिये उन माँगों की पूर्ति नहीं हो पायी। सोवियत संघ उस स्तर तक नहीं पहुँच सका जो औद्योगिक पद्धति में आवश्यक था। अतः वह पतन की ओर आगे बढ़ता गया।

इन विचारकों ने समाजवादी अर्थव्यवस्था के पतन के बारे में जो कारण बताये हैं। ये सिद्ध करते है कि 'समाजवाद असंभव नहीं है। जबकि सोवियत संघ में सोवियत व्यवस्था के पतन पर अनेक विचारकों ने इसे असंभव सिद्ध करने का प्रयास किया।'' यदि समाजवादी अर्थव्यवस्था का अर्थ वह अर्थव्यवस्था है जो स्पष्ट रूप से मानव के नियंत्रण में हो और मानव के हितों की पूर्ति के लिये हो तो इस प्रकार की व्यवस्था की संभावना बीसवीं सदी के दौरान दुनिया के कई हिस्सों में दिखायी पड़ती है और जिनमें से कुछ आज भी मौजूद है।''(24)

संक्षेप में औद्योगीकरण और औद्योगिक क्रान्ति के आगमन ने स्वतंत्रता, समानता एवं राज्यवाद के उन अर्थों को पूर्णतया बदल दिया है जो साम्यवाद के प्रारम्भिक युग में था। पूर्व औद्योगिक युग में राज्यवाद एवं निरंकुशवाद सभी पर नियंत्रण रख सकता था पर उद्योगवाद ने सभी पुरातन सारणियों को बदल दिया है। सोवियत संघ के प्रयोग ने यह प्रमाणित कर दिया है कि समाजवाद में औद्योगिक पद्धति के चलने की संभावना नहीं है। यह भी धीरे–धीरे स्पष्ट हो रहा है कि नववणिकवाद भी किसी एक औद्योगिक पद्धति को नहीं चला सकता।(25) अतः रूस सहित सभी पूर्व साम्यवादी देश स्वतंत्र बाजार पद्धति को अपना रहे हैं। यह पद्धति अधिक उत्पादनकारी और आज के औद्योगिक युग में अधिक व्यवहारिक सिद्ध हो रही

---

23. सच्चिदानन्द सिण्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, पृ.–23
24. C. T. Curien, The Collapse of Soviet Economics, Frontline, March 12, 1999
25. Murray N. Rothbard, Future of Peace and Capitalism, P. 7, Reprinted by The Mises Review, August 3, 2004

है। आज के उदारीकरण के युग में विश्व अर्थव्यवस्था में तेजी से हो रहे विकास के कारण, दुनिया के अन्य देशों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के लिये उन्हें इसी पद्धति को अपनाना पड़ रहा है जो समय की माँग भी है।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जाना स्वाभाविक है कि औद्योगिक पद्धति एवं बाजार तकनीक समाजवाद के प्रति भय क्यों पैदा करता है ? समाजवाद में केन्द्रीकृत नियोजन होता है और नियोजन का लक्ष्य है समानता की स्थापना – एक आदर्श समाज की स्थापना जिसमें मानव के साथ सदव्यवहार हो, जीवन में अवसरों की समानता हो एवं सम्पत्ति का वितरण समान हो। परन्तु बाजार पद्धति असमानता के साथ जुड़ी हुयी है। स्वतंत्र बाजार पद्धति के अपनाने के साथ सोवियत संघ में विदेशी पूँजी का आगमन हुआ। डा. रामविलास शर्मा का कथन है कि सोवियत संघ का विघटन विदेशी पूँजी की देन है। "सन् 1980 से सोवियत संघ में विदेशी पूँजी आई और आज उसका दुष्परिणाम सामने है।"[26]

सोवियत प्रयोग यही बताता है कि औद्योगिक पद्धति एवं बाजार पद्धति ने समाजवाद के लिये समस्या उत्पन्न की है। बाजार पद्धति में सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण होगा, जो चतुर होगा वह एक उच्च स्तर का जीवन बितायेगा और जो कम चतुर होगा उसका जीवन स्तर भी निम्न होगा भले ही वह समाजवाद के प्रति अधिक निष्ठावान हो।[27] इसमें आय की असमानता होगी। पूँजीवाद का विकास होगा।

"समाजवाद को अभी बाजार पद्धति और केन्द्रीकृत योजना में से किसी एक के साथ स्थान बनाना है।" इसके लिये मार्क्स के ही शब्द का सही प्रयोग किया गया है कि यहाँ "विरोधाभास" है। यह विरोधाभास उतनी गहराई से समाजवादी योजना के विचार एवं संस्थाओं में है जितनी गहराई से पूँजीवादी बाजार पद्धति के क्रियान्वयन में है। इन विरोधाभासों का समाधान तब तक नहीं हो पायेगा जब तक समाजवाद एक ओर अभावों की दुनिया में उत्पादन एवं वितरण के कार्य दिवस की समस्याओं से सम्बन्धित नहीं होगा और दूसरी ओर मानवीय समानता एवं भ्रातृत्व के आदर्शों को क्रियान्वित करने से भी सम्बन्धित होगा।[28]

अतः यह जरूरी है कि आज विश्व की बदली हुयी परिस्थितियों के अनुसार समाजवादी पद्धति का पुनर्मूल्यांकन हो क्योंकि दुनिया की पीड़ित जनता की मुक्ति के लिये आज भी इस पद्धति का महत्व बना हुआ है।

---

26. डा. रामविलास शर्मा, सदी के अन्त में एक सपने का टूटना, जनसत्ता, 1 सितम्बर 1991
27. Robert L. Heilbroner, Between Capitalism and Socialism, Chapter 5
28. Robert L. Heilbroner, Between Capitalism and Socialism, Chapter 5

क्या साम्यवाद अवैज्ञानिक है ?

(Is Communism Unscientefic ?)

प्रकाश कारत का दावा है "मार्क्सवाद ऐसी एकमात्र वैज्ञानिक पद्धति है जिसके जरिये विश्व पूँजीवाद की लुटेरी व शोषणकारी प्रकृति के सार तक पहुँचा जा सकता है और ऐसी पद्धति हासिल की जा सकती है जो बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में लाये गये रूपान्तरणों की समझ को एकदम समीचीन बना सकती है।"[29]

परन्तु सोवियत संघ में साम्यवादी व्यवस्था के विघटन ने जहाँ निर्विवाद रूप से साम्यवाद के सोवियत प्रयोग को असफल सिद्ध कर दिया वही मार्क्सवादी दर्शन की वैज्ञानिकता पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया क्योंकि साम्यवाद मार्क्सवाद का ही व्यवहारिक रूप है। उन्नीस सौ सत्रह की अक्टूबर क्रान्ति ने अतीत से टूटकर अलग होने का ऐलान किया था और पूँजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण के एक नये युग को धरती पर उतारा था। इस क्रान्ति में मार्क्सवाद लेनिनवाद का सिद्धान्त अमल में आया था।"[30]

सोवियत संघ की साम्यवादी क्रान्ति दुनिया की प्रथम सफल समाजवादी क्रान्ति थी, परन्तु उसके पतन से विश्व में प्रचार का एक नया दौर शुरू हुआ की मार्क्सवाद की मृत्यु हो चुकी है और मार्क्सवाद की वैज्ञानिकता पर अनेक शंकायें उठायी गयी। उन्हीं में से कुछ शंकाओं पर विचार प्रस्तुत हैं।

"आज साम्यवाद के बारे में एक दृष्टिकोण यह है कि 'एक व्यवहार्य विश्व दृष्टि तथा वैज्ञानिक सिद्धान्त के तौर पर मार्क्सवाद की विश्वसनीयता समाप्त हो गयी है और उसका समय खत्म हो गया है।" मार्क्स और उसके साथी एंगिल्स ने अपने विचारों के माध्यम से विश्व को सामाजिक विकास का एक नया दर्शन प्रदान किया। दोनों ही चूँकि पश्चिमी यूरोप के समाज में पले और बढ़े थे। अतः उनके विचार एवं दर्शन पर पश्चिमी संस्कृति और परिस्थितियों का प्रभाव रहना स्वाभाविक था। इन्हीं परिस्थितियों ने अनेक विचारों में एक सीमा रेखा खींच दी जिससे उनके दर्शन में कुछ कमियाँ दृष्टिगोचर होती है।

सर्वप्रथम मार्क्स ने सामाजिक विकास के सम्बन्ध में कुछ ऐसे स्थिर नियम प्रस्तुत किये जो समस्त देशों पर समान रूप से लागू नहीं हो सकते। चूँकि उन्होंने पश्चिमी समाज को ही अपना आदर्श माना इसलिये उनके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक विकास का सिद्धान्त पश्चिमी समाज के ही अनुरूप तैयार किया गया। इसे विशुद्ध योरोपीय चिन्तन मानने वालों की संख्या पर्याप्त है। किन्तु उन्होंने विकास के सिद्धान्त को "इतना स्थिर सार्वदेशिक और सार्वकालिक बना दिया गोया सारे विश्व की स्थितियाँ मार्क्स की कल्पना के

---

29. प्रकाश कारात, "साम्राज्यवाद की सच्चाई और समाजवाद का भविष्य", लोकलहर, 2 नवम्बर 1997, पृ. 5
30. हरकिशन सिंह सुरजीत, सामाजिक क्रान्ति का रास्ता दिखाती रहेगी महान अक्टूबर क्रान्ति, लोकलहर, 2 नवम्बर, 1997, पृ. 3

अनुसार ही बने बदलेगी।"[31] जबकि यह आवश्यक नहीं कि समस्त देशों में वर्ग संघर्ष के परिणाम एक समान होंगे। "वर्ग संघर्ष का अन्त निश्चित रूप से पूँजीवाद का विनाश और समाजवाद की स्थापना में ही होगा। यह हर परिस्थिति में जरूरी नहीं है।

कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो की घोषणा कि "पूरा मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है"[32] भ्रामक प्रतीत होता है। वर्ग संघर्ष मानव सभ्यता के विकास का एकमात्र आधार नहीं है। विश्व के इतिहास में समस्त "क्रान्ति औद्योगिक शक्तियों के परिपक्व होने या वर्ग संघर्ष के बदौलत नहीं हुयी।"[33] वर्ग संघर्ष हर परिस्थिति में आवश्यक नहीं है। इसलिये मार्क्स द्वारा परिस्थितियों को ज्यादा महत्व देने से उनके दर्शन को नियतिवादी दर्शन कहा गया। वास्तव में यह सिद्धान्त विकसित पश्चिमी देशों की भाँति पिछड़े हुये देशों पर भी उसी रूप में लागू नहीं हो सकते।

मार्क्स ने अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त में भौतिक तत्व को अधिक महत्व दिया। वास्तव में पूँजीवादी समाज के परिवर्तन एवं विकास में तथा उसकी चरम अवस्था में पहुँचने के बाद साम्यवाद की स्थापना में जो भी परिवर्तन होंगे वे मानव के द्वारा ही होंगे। किन्तु मार्क्स के विचारों में मानवीय तत्वों का अभाव दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य पशु से भिन्न एक विकसित प्राणी है जिसके जीवन का लक्ष्य केवल भौतिक समृद्धि या पेट भरना ही नहीं है। समाज को निरन्तर गतिशील बनाये रखने वाला मानव चिन्तनशील, बुद्धिमान और सृजक भी है। जिन्हें साम्यवादी समाज में श्रमजीवियों की तुलना में महत्वहीन समझा गया।

मार्क्स एवं एंगिल्स ने श्रमिकों एवं कृषकों के तत्कालीन एवं भविष्य की समस्याओं के समाधान में जो विचार प्रस्तुत किये वे द्वैध प्रकृति के है राजनैतिक भी एवं आर्थिक भी।[34] राजनैतिक विचार यह था कि उन्नीसवीं शती में पश्चिमी योरोप के निरंकुश शासन का आधार था कृषक समाज का समर्थन (जिनके साथ श्रमिक भी शामिल थे) और आर्थिक यह कि क्या एक सामान्य किसान उत्पादन के नये साधनों को और वैज्ञानिक उपलब्धियों को अपना पायेगा। किन्तु मार्क्स ने आर्थिक विचार को ही ज्यादा महत्व दिया।

मार्क्स ने विकास के लिये क्रान्ति को आवश्यक माना। पूँजीवादी अवस्था से साम्यवादी अवस्था की ओर प्रगति के लिये हिंसक क्रान्ति तथा बल के प्रयोग को अनिवार्यता प्रदान की। जबकि मानव समाज का निरन्तर विकास आदिम अवस्था से सामन्तवादी अवस्था की ओर और पुनः पूँजीवादी व्यवस्था की ओर बिना हिंसक क्रान्ति के ही हुआ। मानव विवेकशील एवं सभ्य प्राणी है। अतः उसके लिये हिंसक क्रान्ति जैसे

---

31. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ.–11
32. Manifesto of the Communist Party, P. 39
33. बनवारी एक कथानायक कार्ल मार्क्स, जनसत्ता, 29 दिसम्बर, 83
34. Pantin and E. Plimak, The Ideas of Karl Marx, Summer, 1991, P.-42

विवेकहीन एवं निर्दयी साधन का प्रयोग अपरिहार्य नहीं हो सकता। अतः मानव समाज के इतिहास के लिये शक्ति और हिंसा एक मात्र परिचालक शक्ति नहीं हो सकती।

मार्क्स की द्वन्द्वात्मक पद्धति के अनुसार यह जरूरी माना गया है कि "एक उच्च स्तर पर राजनीतिक क्रान्ति के विरोध में सामाजिक क्रान्ति होगी।"[35] जब वर्ग संघर्ष या द्वन्द्व का लक्ष्य वर्गहीन समाज की स्थापना करना है तो फिर क्या वर्गहीन समाज की स्थापना के साथ ही वर्ग संघर्ष की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया रुक जायेगी ? मार्क्स के अनुसार मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। तो वर्गविहीन समाज की स्थापना के साथ इतिहास ही समाप्त हो जायेगा। यदि यह माना जाये कि यह द्वन्द्व या क्रान्ति की प्रक्रिया चलती रहेगी तो पूँजीवाद या सामन्तवाद से साम्यवाद तक पहुँचने के बाद क्या पुनः साम्यवादी समाज में क्रान्ति नहीं होगी। क्या पदार्थों में अन्तर्निहित गतिशीलता के कारण साम्यवादी व्यवस्था भी विघटित नहीं हो जायेगी ? क्या रूस में यही स्थिति नहीं आयी।

मार्क्स की यह धारणा भी अनुचित प्रतीत होती है कि उत्पादन के साधनों से उत्पादन के सम्बन्ध तय होते है। इसलिये सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिये उत्पादन के साधनों में एवं सम्बन्धों में भी परिवर्तन आवश्यक है। परन्तु आधुनिक औद्योगिक युग में सभी देशों में उत्पादन के साधन लगभग एक समान है पर उत्पादन के सम्बन्ध एक समान नहीं है। मार्क्स ने पूँजीवादी उत्पादन के साधनों पर तो स्वीकृति दे दी पर उत्पादन के सम्बन्ध को नहीं। जबकि साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के लिये मार्क्स ने उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन पर बल दिया। उसका लक्ष्य है पूँजीवादी व्यवस्था में निहित पूँजीपति और श्रमिकों के मध्य, शोषक और शोषितों के मध्य सम्बन्ध को सुधारना।

मार्क्स का यह कथन भी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है कि आर्थिक तत्व ही इतिहास का एकमात्र निर्णायक तत्व है। इन्होंने इतिहास की व्याख्या में केवल आर्थिक तथ्य और आर्थिक शोषण को ही महत्व दिया। इतिहास की व्याख्या केवल आर्थिक नहीं वरन् नैतिक राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक या धार्मिक सभी रूप में सम्भव है। प्रत्येक परिवर्तन का केवल एक कारण नहीं होता। उन्होंने सभी मानवीय परिवर्तनों की जड़ आर्थिक बताकर अपना संकुचित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। "उन्होंने पूँजीवाद को समाप्त करने के उत्साह में अन्य तत्वों को पूर्णतया उपेक्षित बना दिया।"

इतिहास की आर्थिक व्याख्या में धर्म को अत्यधिक हेय बना दिया जाना अनुचित है। जबकि धर्म ही मानव में उच्चकोटि के नैतिक मूल्यों का विकास के लिये उत्तरदायी है। मार्क्स धर्म को अफीम के नशे के समान कहकर उसके प्रति अविश्वास प्रकट करता है। धर्म का बहिष्कार मानव की धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का निषेध है। जो प्रत्येक मानव को जन्म से प्राप्त होना चाहिये।

---

35. सेबाइन, राजनैतिक दर्शन का इतिहास, पृ.–710–711

मार्क्स का कथन था कि कोई सामाजिक व्यवस्था तब तक समाप्त नहीं होती जब तक उसमें उत्पादन के तत्व पूर्णतयाः विकसित नहीं हो जाते। इस विचार के अनुसार पूँजीवादी देशों में पूँजीवादी के चरम अवस्था पर पहुँचने पर क्रान्ति अपरिहार्य है। जबकि विश्व के समस्त पूँजीवादी देशों में विकास की संभावनाओं में तेजी से वृद्धि हो रही है और वहाँ कोई क्रान्ति नहीं जन्म ले रही। मार्क्स पूँजीवादी विकास का परिणाम निर्धनता को मानता है। मार्क्स ने यह भी कहा कि पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति अधिक धनी होते जायेंगे और श्रमिक वर्ग निर्धन होता चला जायेगा। वास्तविकता पर दृष्टि डालने पर हम पाते हैं कि आधुनिक पूँजीवाद के विकास के साथ श्रमिकों की दशा में सुधार आया और विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के द्वारा उनका जीवन स्तर ऊपर उठ रहा है। अतः निर्धनता कोई पूँजीवादी विकास का परिणाम नहीं है।

मार्क्स ने मानव में निहित जातीय एवं राष्ट्रीय निष्ठा की भावनाओं की भी उपेक्षा की। उसका यह विचार कि "श्रमिकों का कोई राष्ट्र नहीं होता"[36] काल्पनिक है। क्योंकि न तो सम्पूर्ण संसार के पूँजीपति एक ही प्रकार के हित रखने वाले होते है और न ही समस्त देशों के श्रमिकों की निष्ठा एक समान होती है। उनमें जातीय एवं राष्ट्रीय निष्ठायें भी प्रबल होती है। तभी विश्व युद्धों के दौरान श्रमिकों ने अपने राष्ट्रीय हितों को नहीं त्यागा एवं "दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ" के नारे से वे अप्रभावित रहे।

मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त यांत्रिक है। मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त में श्रमिकों को ही मूल्य निर्धारण का एक मात्र तत्व समझा, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उत्पादन में श्रम ही एक मात्र सक्रिय और आवश्यक तत्व हो। श्रम के अतिरिक्त उत्पादन को कच्चे माल की प्रकृति, कार्य करने की दशा आदि भी उत्पादन को प्रभावित करती है। इसी प्रकार मार्क्स ने मानसिक श्रम की उपेक्षा की जिसे पूँजीपति करता है। आधुनिक उत्पादन पद्धति में पूँजी प्रबन्धन, अन्वेषण आदि का भी विशेष महत्व है। उसने पूँजीपति के मानसिक श्रम को नकारा और श्रमिकों के शारीरिक श्रम को ही महत्व दिया। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम का रूप बदल गया है और मानसिक श्रम करने वालों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही है। जो अपनी स्थिति में संतुष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। मार्क्स लाभ और हानि के पीछे अनुमान और खतरे से भी अनभिज्ञ प्रतीत होता है। मूल्य की गिरावट एवं वृद्धि के लिये उत्तरदायी बाह्य तत्वों को वह महत्व नहीं देता है। यह खेदजनक है कि मार्क्स अपने सिद्धान्त को एक तार्किक निष्कर्ष तक नहीं पहुँचाता। जब पूँजीपति को नुकसान होता है तो क्या इसका अर्थ यह नहीं कि श्रमिकों को अतिरिक्त मजदूरी दी गई है।

मार्क्स द्वारा समाज में केवल दो वर्गों का अस्तित्व स्वीकारना भी तर्कपूर्ण नहीं है। सेबाइन के मतानुसार यदि मार्क्स इंगलैण्ड को अपना आदर्श मानता तो संभवतया उसका वर्ग विश्लेषण यह न होता क्योंकि इंगलैण्ड में मध्यम वर्ग की भी प्रधानता रही है। मार्क्स को यह भविष्यवाणी भी गलत साबित हुयी कि

---

36. Manifesto of the Communist Party, P. 70

निम्न मध्यम वर्ग श्रमजीवी वर्ग में मिल जायेंगे।[37]

मार्क्स ने साम्यवादी समाज में अर्थव्यवस्था के गठन पर कम प्रकाश डाला है। इस दृष्टि से मार्क्सवादी सिद्धान्त अपूर्ण प्रतीत होता है। सोवियत संघ में साम्यवाद के पतन के बाद प्रारम्भ विचार विमर्श में भी मार्क्सवाद अथवा साम्यवाद के आर्थिक पहलू को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है। मार्क्सवादी दर्शन में समाजवादी दर्शन कम और पूँजीवाद का विश्लेषण अधिक है। दास कैपिटल में मार्क्स स्वयं किसी देश के आर्थिक विकास में पूँजीवाद के महत्व को स्पष्ट स्वीकार करता है। वह कहता है "पूँजीपति समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रेरित करता है।" वह इस तथ्य को मान लेता है कि पूँजीवाद में व्यापार के विस्तार से रोजगार का भी विस्तार होता है। "मेन्युफैक्चर में श्रम विभाजन श्रमिकों की संख्या की वृद्धि को एक प्राविधिक आवश्यकता बना देता है।"[38] साथ ही वह कहता है कि "श्रम विभाजन में प्रत्येक प्रगति के लिये प्रत्येक पूँजीपति के हाथ में पूँजी की वृद्धि की आवश्यकता होती है।"[39] अन्त में वह पूँजीवादी व्यवस्था के पतन को अवश्यंभावी घोषित कर देता है।

"अतः मार्क्स का सिद्धान्त समाजवाद का सिद्धान्त न होकर पूँजीवाद और उसके गुण—दोष, उसके अनिवार्य पतन तथा नये समाजवादी समाज की स्थापना की अग्रघोषणा करने वाला सिद्धान्त'[40] ही अधिक प्रतीत होता है।" इस प्रकार मार्क्स द्वारा प्रस्तुत सामाजिक विकास की अवधारणा अपने आप में अस्पष्ट एवं भ्रामक है। जिसके कारण आगे चलकर उसके अनुगामियो को कठिनाईयों का सामना करना पड़ा तथा उसमें संशोधन और परिवर्धन करने पड़े। इससे मार्क्सवादी यथार्थवादी सिद्धान्त नहीं सिद्ध होता। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि मार्क्स के पूँजीवाद सम्बन्धी आर्थिक सिद्धान्तों में अनेक कमियाँ हैं जिनके कारण पूँजीवाद के सम्बन्ध में उसकी भविष्यवाणियाँ समय की परीक्षा में सफल सिद्ध नहीं हो पाई। "वास्तव में दास कैपिटल उतनी अजेय कृति नहीं है जितनी कि लोगों ने कल्पना की।"[41]

कुछ विचारकों के अनुसार मार्क्स ने साम्यवादी क्रान्ति के लिये जिन परिस्थितियों को आवश्यक माना था। वे परिस्थितियाँ रूस में थी ही नहीं। रूस की क्रान्ति वास्तव में जार वंश के निरंकुश तन्त्र के विरूद्ध क्रान्ति थी। "रूसी क्रान्ति मार्क्सवादी इतिहास व्याख्या के लिये मूलभूत चुनौती थी।" यह "किसी ऐतिहासिक अनिवार्यता के कारण नहीं, बल्कि बोल्शेविकों की कुशल रणनीति और लेनिन के तेजस्वी नेतृत्व

---

37. सेबाइन, राजनैतिक दर्शन का इतिहास, पृ. 719
38. पूँजी, खण्ड 1, पृ. 385
39. पूँजी, खण्ड 1, पृ. 384
40. चेलप्पा अय्यर, भ्रामक विवेचन का शिकार मार्क्सवादी दर्शन, जनसत्ता, 8 फरवरी
41. T.M. Rao, Re-reading of Das Capital, Illustrated Weekely of India, Sept. 14, 1975

के कारण हुयी।''[42] आलोचक तो यहाँ तक कहने से नहीं चूकते कि रूस में तो साम्यवाद आया ही नहीं तो उसका पतन कैसे हुआ ?

एक महान दार्शनिक के रूप में मार्क्स ने मानव कल्याण के लिये अपने विचार या दर्शन रखे, उस पर अपने ढंग से चिन्तन किया और विश्लेषण भी किया, परन्तु उसे अपने दर्शन को व्यवहारिक रूप देने का अवसर नहीं मिल पाया। मार्क्स के अनुगामियों के पास कोई पूर्व सिद्ध मार्ग या मानदण्ड नहीं था जिसके द्वारा साम्यवाद को धरती पर मूर्त रूप से उतारा जा सके। साम्यवादी व्यवस्था सोवियत संघ में मार्क्स के बाद ही अस्तित्व में आयी किन्तु साम्यवाद का यह सोवियत प्रयोग असफल रहा।

मार्क्स के बाद उसके अनुयायी लेनिन ने जब रूसी क्रान्ति का नेतृत्व किया, तो उसे रूस की परिवर्तित परिस्थिति में मार्क्स के विचारों में संशोधन करना पड़ा। कुछ लोगों ने इससे उन्हें संशोधनवादी कहा और कुछ लोगों ने मार्क्सवाद को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करके योगदान देने वाला भी कहा, किन्तु व्यवहारिक अनुभव के अभाव से मार्क्सवाद के सिद्धान्तों पर लेनिन आदि अनुगमियों का कुछ अधिक विश्वास रहा। जिससे मार्क्सवाद जन सामान्य से अलग होता चला गया ''जब कोई दर्शन उद्धरणों के बल पर चलने लगता है। तब वह सामान्य आदमी का दर्शन नहीं रह जाता। वह कुलीनों का दर्शन हो जाता है। यही मार्क्सवाद के साथ हुआ।''[43] मार्क्स के सर्वहारा वर्ग के हाथों में शासन सत्ता रहने के आदर्श को लेनिन ने दलगत सत्ता में बदल दिया जिसमें दल के कुछ शीर्षस्थ नेताओं के हाथों में शासन की सत्ता केन्द्रित हो गयी।

लेनिन ने मार्क्सवाद में जो संशोधन किये उन पर प्रथम अध्याय में विचार किया जा चुका हैं अधिकांश संशोधन लेनिन ने अपने द्वारा अपनाये गये साधनों को उचित ठहराने एवं साथ ही मार्क्सवाद के सुविधाजनक बनाने के लिये किये। लेनिन ने कहा कि यह जरूरी नहीं है कि क्रान्ति औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों में ही हो। रूस जैसे औद्योगिक क्षेत्र में पिछड़े देश में भी क्रान्ति हो सकती है। उसने कहा कि क्रान्ति के लिये श्रमिकों में चेतना उत्पन्न करनी होगी वह स्वतः स्फूर्त नहीं होगी और क्रान्ति का नेतृत्व साम्यवादी दल के द्वारा किया जायेगा।

लेनिन ने क्रान्ति के दौरान सर्वहारा वर्ग के मार्ग निर्देशन के लिये भी दल को आवश्यक माना। यद्यपि मार्क्स का कहना था कि ''क्रान्ति केवल एक पार्टी नहीं कर सकती, बल्कि पूरा राष्ट्र क्रान्ति करता है।[44] उसने दल व शासन में केन्द्रवाद को लागू किया और शालीनता से इसमें लोकतांत्रिक शब्द जोड़

---

42. गणेश मंत्री, कार्ल मार्क्स : पिछड़े हुये देशों के लिये कितना प्रासंगिक, धर्मयुग, 4 मई 1986
43. गिरिराज किशोर, न गाँधी खलनायक थे, न मार्क्स, जनसत्ता, 4 अप्रैल, 1994
44. शिकागो ट्रिब्यून के संवाददाता का कार्ल मार्क्स से साक्षात्कार, संकट के बावजूद, पृ.–44

दिया। उसने कहा "दल या सर्वहारा की गतिविधियाँ .... समाज के विकास के नियमों और इन नियमों के अध्ययन से चलनी चाहिये।"[45] इस प्रकार लेनिन ने मार्क्स के मूल सिद्धान्तों पर विश्वास रखते हुये समय के अनुकूल उसे लचीला बनाया।

परन्तु लेनिन के परिवर्धनों में सबसे बड़ी कमी थी कि उसने साम्यवाद की स्थापना के लिये हिंसात्मक क्रान्ति को अनिवार्य माना और सामाजिक परिवर्तनों के लिये प्रजातांत्रिक साधनों के महत्व को स्वीकार नहीं किया। रूस के बाद योरोप के देशों में परिस्थितियों के अनुसार साम्यवादी दल ने हिंसक क्रान्ति के साधन को त्यागकर प्रजातांत्रिक साधन अपनाया है।

लेनिन द्वारा रूस में लागू लोकतांत्रिक केन्द्रवाद का सिद्धान्त केवल दिखावे के लिये लोकतांत्रिक रहा। जन सामान्य का स्वतंत्र चिन्तन के अधिकार से वंचित रखकर सम्पूर्ण सत्ता साम्यवादी दल के शिखर पर स्थित नेताओं के हाथों में केन्द्रित रही जिसने दल के निरंकुशतंत्र को जन्म दिया। दल के आदेशों का बिना किसी विरोध के विनम्रतापूर्वक पालन करना जनता का कर्त्तव्य घोषित किया गया।

मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र के सिद्धान्त के स्थान पर लेनिन ने साम्यवादी दल के अधिनायकतंत्र की स्थापना की। क्रॉटस्की ने इसे मार्क्सवाद के साथ विश्वासघात करना कहा। क्योंकि दल के हाथों में सत्ता के आने का तात्पर्य था सर्वहारा वर्ग एवं सामान्य जनता की उपेक्षा। लेनिन के इस सुधार को माध्यम बनाकर स्टालिन ने व्यक्तिगत निरकुशतंत्र की स्थापना कर डाली और अपने सामने आये समस्त विरोधियों का निर्दयतापूर्वक दमन किया।

इस प्रकार रूस में शोषण से मुक्त जन कल्याणकारी समाज की स्थापना का जो आदर्श साम्यवादी क्रान्ति के द्वारा रखा गया था वह कहीं दूर आकाश में विलुप्त हो गया और इन संशोधनों ने रूस की साम्यवादी व्यवस्था को निरंकुशतंत्र में बदल दिया और स्टालिन ने तो हत्या, यातना शिविर, सैन्यतंत्र और के. जी. बी. के आतंक के द्वारा शासन को निर्दयी निरंकुशतंत्र बना दिया। गोर्वाचेव की सुधार नीतियों ने रूस की तृषित जनता को अमृतवर्षा से तृप्त किया और साथ ही साम्यवाद को असफल और अवैज्ञानिक भी घोषित कर दिया। "सोवियत रूस में साम्यवाद का पतन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। यह 70 साल की लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था।" शायद यही मार्क्सवाद की नियति थी।

इसके लिये परिस्थितियाँ शनैः शनैः तैयार हो रहीं थीं। कुछ विचारकों के अनुसार रूस में साम्यवाद के विघटन की प्रक्रिया की शुरुआत उसी समय हो चुकी थी जिस समय लेनिन अल्पसंख्यक मेन्शेविकों की उपेक्षा करके साम्यवादी दल का गठन किया और मार्क्सवाद में संशोधन किये। लेनिन द्वारा दिखाये गये मार्ग का उसके परवर्ती शासकों ने भी अनुगमन किया। संशोधनवाद का यह युग निरन्तर चलता

---

45. लेनिन, मैटीरियलिज्म एण्ड इम्पीरियल क्रिटिसिज्म

रहा साम्यवाद के ध्वस्त होने तक सोवियत साम्यवाद एक कथा बन गयी और मार्क्स एक कथानायक।

"महान कहे जाने वाले लोग अपनी मृत्यु के बाद कथानायक बनते गये। उनका ज्ञान या बोध एक नित नयी होकर फैलने वाली कथा की तरह समय और काल के अनुरूप ढलते हुये हवा में तैरता रहा।"(46)

क्या साम्यवाद का विकल्प सम्भव ?

(Is there any Alternative for Communism ?)

"जिस अन्याय और उदासीनता की दुनिया में हम जीते है। उससे मुक्ति पाने का विकल्प कहीं अवश्य होगा, होना चाहिये" .... "जिस विराट मानवीय स्वप्न को लेकर सोवियत क्रान्ति हुई थी वह वास्तव में उसी विकल्प को पाने की लालसा से जुड़ी थी। यह लालसा कब आत्म छलना में बदल गई और मानव मुक्ति का यह विकल्प कैसे झूठा पड़ गया यह हमारी शती का सबसे त्रासद अध्याय है।"(47) मानव मुक्ति के साम्यवादी विकल्प के मिथ्या सिद्ध होने के बाद आज हमारे सामने नवीन विकल्प को खोजा है।

यदि साम्यवाद को असफल मान लिया जाये और उसके आधारभूत विचार मार्क्सवाद को अवैज्ञानिक स्वीकार कर लिया जाये तो आज की दुनिया में न्याय, समानता और आशा की स्थापना के लिये किस विकल्प पर भरोसा किया जाये ! 1917 में रूस में साम्यवादी क्रान्ति की सफलता के बाद मान लिया गया कि साम्यवाद, पूँजीवाद का विरोधी है और मार्क्सवाद ने रूस में पूँजीवाद विरोधी संस्कृति की स्थापना की है। सोवियत संघ का विश्व राजनीति में साम्यवादी देश के शक्तिशाली नेता एवं पूँजीवाद के महान प्रतिद्वन्द्वी के रूप में अवतरण हुआ।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सम्पूर्ण दुनिया साम्यवादी एवं पूँजीवादी विचारधाराओं के आधार पर दो ध्रुवों में विभाजित हो गयी। साम्यवाद एवं पूँजीवाद विश्व जगत में वैचारिक सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आधार पर एक दूसरे से पूर्णतया दो भिन्न–भिन्न विचारधाराओं के रूप में निर्विवाद रूप में स्वीकार कर ली गई। अमेरिका के नेतृत्व में पूँजीवादी ध्रुव एवं रूस के नेतृत्व में साम्यवादी ध्रुव परस्पर कट्टर प्रतिद्वन्द्वी बन गये और दोनों के बीच नदी के दो किनारों की भाँति स्थायी दूरी स्थापित हो गयी।

यद्यपि बाद के वर्षों में पूँजीवादी एवं साम्यवादी दोनों ध्रुवों के मध्य तनाव एवं शीत युद्ध की स्थिति में कमी आयी किन्तु दोनों विचारधारायें व्यापक स्तर पर परस्पर विरोधी ही बनी रही। कुछ विचारकों का दावा रहा 'जहाँ पूँजीवाद का अन्त होता है वहाँ साम्यवाद की शुरूआत होती है।' इसी वाक्य को हम

46. बनवारी, एक कथानायक कार्ल मार्क्स, जनसत्ता, 29 दिसम्बर, 83

47. निर्मल वर्मा, समाजवाद का स्वप्न .... और दु:स्वप्न, नव भारत टाइम्स, 4 जून, 1992

उलटकर पढ़े तो तात्पर्य होगा जहाँ साम्यवाद का अन्त होता है वहाँ पूँजीवादी की शुरूआत होती है।

पूँजीवाद (Capitalism)

इस विचार के अनुसार ही रूस में साम्यवाद के पतन के बाद यह कहा जाने लगा कि शक्तिशाली साम्यवादी संघ अब समाप्त हो चुका है। विरोधियों का तर्क था "सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों में पूँजीवादी की बहाली की प्रक्रिया चल रही है।" आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में जो परिवर्तन लागू किये गये उन्हें पूँजीवाद और जनतंत्र का दिशा सूचक परिवर्तन के रूप में देखा गया। तात्पर्य यह कि यह मान लिया गया कि रूस में साम्यवाद की समाप्ति का सीधा अर्थ है वहाँ पूँजीवाद एवं जनतन्त्र की स्थापना की प्रक्रिया की शुरुआत।

वास्तव में सोवियत समाजवाद की विफलता पूँजीवाद को वरेण्य सिद्ध नहीं करती। लेकिन न केवल सोवियत संघ में यही हो रहा है बल्कि पूरी दुनिया में इस विफलता का निहितार्थ यही माना जा रहा है। जैसे अब पूँजीवादी प्रक्रिया के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा है।"[(48)] यदि साम्यवाद सही विकल्प नहीं दे सका तो इसका मतलब पूँजीवादी व्यवस्था अपरिहार्य है।

"इस तर्क की जड़ में एक विचार है वह यह कि दुनिया में दो ही विकल्प है, साम्यवाद और पूँजीवाद। पूँजीवाद के समर्थकों का तो कहना यह है कि विकल्प भी नहीं है, एक ही सड़क है जो सीधे व्हाइट हाउस जाती है।"[(49)]

आधुनिक युग में चूँकि साम्यवाद के आलोचक पूँजीवाद के समर्थन में ही बोल रहे है इसलिये उनका सोचना है सोवियत संघ एवं पूर्वी यूरोप के साम्यवादी देशों में, वहाँ की जनता में स्वतंत्रता के प्रति जो लालसा दिखाई पड़ रही है। उसका झुकाव पश्चिमी पूँजीवादी लोकतंत्र के प्रति ही है। पश्चिमीवादी लोकतंत्र उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा की पूर्ति करेगा। तो क्या रूस में लोकतंत्र की बहाली हुई है ? सोवियत संघ से 1974 में निष्कासित नोबल पुरस्कार विजेता रूसी साहित्यकार अलेकजन्डर सोल्झेनित्सिन ने स्वदेश लौटने के बाद कहा कि रूस अभी भी लोकतंत्र से दूर है।

उन्होंने कहा "हमारा लोकतंत्र कहाँ है ? जनता तो सत्ता से अलग ही है। जनता अपने भाग्य को नियंत्रित नहीं कर रही, उसका किसी भी चीज पर नियंत्रण नहीं है। हमारे यहाँ लोकतंत्र नहीं है। जैसा कि मैं कई मर्त्तवा कह चुका हूँ, यह नकली लोकतंत्र है।"[(50)] उन्होंने यह भी कहा कि जिस तरह के लोकतांत्रिक संस्थान पश्चिमी देशों में है वैसे ही अब रूस में कायम किये जा रहे हैं। लेकिन मुझे इस बारे

---

48. नन्द किशोर आचार्य, दोनों चेहरे एक ही सभ्यता के हैं, नव भारत टाइम्स, 5 अक्टूबर, 1991
49. राजेन्द्र धोड़पकर, पूँजीवादी रास्ते से समाजवाद आ कैसे सकता है, जनसत्ता, 7 अक्टूबर, 91
50. जनसत्ता, दिल्ली 30 मई, 1994 पृ.–10

में आशंकायें है। वास्तव में उनकी ये आशंका निर्मूल नहीं है। क्योंकि यह तो पश्चिम की नकल होगी। किसी देश की शासन व्यवस्था वहाँ की परम्पराओं, चिन्तन एवं वातावरण पर ही आधारित होनी चाहिये।

वास्तव में "पूँजीवाद एक आर्थिक व्यवस्था है जिसमें पूँजी के निजी स्वामित्व, उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत नियंत्रण, स्वतंत्र औद्योगिक प्रतियोगिता तथा उपभोग की पदार्थों के अनियंत्रित वितरण की व्यवस्था रहती है। .... पूँजीपति वर्ग का उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर और इसलिये समाज की सारी आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण होता है। श्रमिक वर्ग को पूँजीपति वर्ग की अधीनता में काम करना पड़ता है।[51] मार्क्स ने इस पूँजीवाद को मानवीय तत्व से रहित एवं शोषण के प्रतीक एक निकृष्ट व्यवस्था माना है।

मार्क्स से पहले पूँजीवाद की अधिक कटु आलोचना किसी ने नहीं की। 1776 में एडम स्मिथ ने सबसे पहले पूँजीवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। 18वीं शती में योरोप में औद्योगिक क्रान्ति होने से वहाँ की आर्थिक और व्यापारिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना हुयी और उनमें काम करने वाले श्रमिकों का उद्योगपति शोषण करने लगे।

मार्क्स ने "1867 में अपने महान ग्रंथ 'दास कैपीटल' में वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था का मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किया और पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध में वैज्ञानिक समाजवाद' अथवा साम्यवाद का प्रवर्तन किया।"[52] मार्क्स का मानना था कि पूँजीवादी व्यवस्था की समस्त बुराइयों को साम्यवाद के द्वारा समाप्त किया जायेगा। साम्यवादी व्यवस्था में "मार्क्स का विश्वास था कि योजनाबद्ध और समाजीकृत अर्थव्यवस्था में लोगों की आवश्यकतानुसार पदार्थों का वितरण हो सकता है।"[53]

रूस में 1917 में साम्यवादी क्रान्ति की सफलता के बाद पूँजी एवं उद्योगों के व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करके राज्य द्वारा नियंत्रित पद्धति अपनायी गयी। पर नियोजित अर्थव्यवस्था को लागू करके नागरिक स्वतंत्रताओं का दमन किया गया, नागरिकों के स्वतंत्र विकास को रोका गया।

अनेक विचारकों का दावा है कि पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों आधुनिक उद्योगीकरण की ही दो प्रक्रियायें है। इन दोनों को विचारधारा या दर्शन कहना उचित नहीं होगा। दोनों में स्वतंत्रता या समानता वास्तविक स्तर पर नाम मात्र की होती है। "सोवियत समाजवादी व्यवस्था में जैसे समानता एक आभास मात्र थी वही स्थिति पूँजीवादी लोकतंत्रों में स्वतंत्रता की हो जाती है।[54] क्योंकि आधुनिक पूँजीवादी लोकतंत्र में स्वतंत्रता नागरिकों के लिये एक सुविधा मात्र है, वास्तविक नहीं है।

---

51. डा. सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश गुप्त, राजनीति कोश, पृ.–45
52. डा. सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश गुप्त, राजनीति कोश, पृ.–46
53. सेबाइन, राजनीति दर्शन का इतिहास, पृ.–736
54. नन्द किशोर आचार्य, दोनों चेहरे एक ही सभ्यता के हैं, नवभारत टाइम्स, 5 अक्टूबर, 1991

मार्क्स ने स्वयं समाजवादी क्रान्ति की सफलता के लिये पूँजीवादी विकास को एक आवश्यक स्तर माना किन्तु साम्यवाद की स्थापना के बाद आर्थिक विकास के लिये पूँजीवादी प्रोद्योगिकी एवं प्रबन्ध व्यवस्था को ही स्वीकारा और जारी रखा। किसी वैकल्पिक साधन पर चिन्तन नहीं किया। कुछ विचारकों के अनुसार सोवियत संघ में साम्यवादी प्रयोग की असफलता और पूँजीवादी प्रयोग की सफलता में अन्तर केवल तुलनात्मक ही है। क्योंकि नयी व्यवस्था में पूँजीवाद के दोषपूर्ण रूप में विद्यमान होंगे।

"हाल ही में पश्चिमी समाज शास्त्री कहने लगे है कि इन दोनों में कोई मौलिक भेद नहीं है। क्योंकि दोनों औद्योगिक क्रान्ति के गर्भ से निकली सगी संताने है।"[55] साम्यवाद में भी पूँजीवादी व्यवस्था की अनेक विशेषतायें है। जैसे–उद्योगवाद, अधिक उत्पादन, अधिक उपभोग, प्रतियोगिता आदि; केवल इसमें लोकतंत्र का अभाव है। पश्चिमी लोकतंत्र ने सिर्फ स्वतंत्रता को ही ग्रहण किया, सोवियत साम्यवाद ने केवल समानता को। दोनों में यही एक मात्र अन्तर है। ऐसे विचारकों का कहना है कि साम्यवाद के विकल्प के रूप में पूँजीवाद पर भरोसा करने के लिये केवल एक ही मूल्य शेष बचा है। वह है लोकतंत्र, यह लोकतंत्र भी समानता के अभाव में प्रभावहीन सिद्ध हो रहा है। अतः समाजवाद का पतन हो गया इसका अर्थ यह नहीं कि पूँजीवाद अच्छा है या पूँजीवाद समाजवाद का सच्चा विकल्प है।

लोकतांत्रिक समाजवाद (Democratic Socialism)

इस विषय में कुछ विचारक ऐसे भी है जो साम्यवाद को असफल और पूँजीवाद को अवांछनीय घोषित करके यह सिद्ध करना चाहते है कि अब एक मात्र विकल्प है लोकतांत्रिक समाजवाद। इस व्यवस्था में समाज के क्रमिक विकास पर बल दिया जाता है और साम्यवाद की क्रान्तिकारी पद्धति को नहीं स्वीकारा जाता है। इसके "अन्तर्गत मात्र समाजवाद की ही व्यवस्था नहीं आती प्रत्युत सहकारितावाद, निगमवाद, राज्य नियंत्रण तथा आर्थिक जीवन का सामान्य समन्वय भी आ जाता है।"[56]

लोकतांत्रिक समाजवाद पर यह आरोप लगाया जाता है कि यह अनेक विचार धाराओं का एक संयोग है। इसके पीछे कोई मौलिक दर्शन नहीं है। समाजवाद की भाँति इसमें अस्पष्टता और अनिश्चिता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति पर किस सीमा तक नियंत्रण हो इस पर मतभेद है। राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर भी इसमें एकमतता नहीं है। यह भी कहा जाता है कि इस व्यवस्था में उत्पादन के किसी वैकल्पिक साधन पर विचार न करके साम्यवादी और आधुनिक पूँजीवादी विकास के साधनों पर ही बल दिया जाता रहा है। इसका परिणाम यह सामने आया कि लोकतांत्रिक समाजवाद ने पूँजीवाद का विकल्प प्रस्तुत करने के लिये उसी अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकी को आधार बनाया जो पूँजीवादी व्यवस्था के आधार थे। अतः लोकतांत्रिक

---

55. मस्तराम कपूर, साम्यवादी विश्व का विघटन, पृ. 45

56. डॉ. सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश गुप्त, राजनीति कोश, पृ. 59

समाजवाद द्वारा पूँजीवाद का विकल्प प्रस्तुत करने के स्थान पर पूँजीवादी व्यवस्था का ही विकास किया गया। विचारक के अनुसार लोकतांत्रिक समाजवाद "अधिक से अधिक पूँजीवाद का ही एक अपेक्षाकृत उदार और मानवीय भंगिमा ओढ़े चेहरा है।"[57]

लोकतांत्रिक समाजवाद में जन कल्याणकारी कार्यों के कारण राज्य की शक्तियाँ अधिक हो जाती हैं जिससे नौकरशाही का प्रभाव बढ़ता है और सम्पूर्ण व्यवस्था में नौकरशाही के दोष दृष्टिगोचर होते हैं। वास्तव में इस शासन की कमी यही है कि जन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये सम्पूर्ण दायित्व शासन पर सौंप दिया जाता है। इस व्यवस्था के व्यवहारिक रूप में जनता की अधिकतम भागीदारी होनी चाहिये।

आलोचकों का यह भी कहना है कि शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा परिवर्तन की बात केवल सैद्धान्तिक रूप से ही उचित प्रतीत होती है। परन्तु किसी देश या समाज की सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन के लिये केवल शान्तिपूर्ण और वैधानिक साधनों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

फिर भी लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रशंसकों का कहना है कि इस व्यवस्था की कमियाँ मानव स्वभाव की कमियाँ हैं। जिन्हें समाप्त या कम करना संभव है। "समाजवाद मानव इतिहास में पहली अर्थव्यवस्था है जो अपने अनुरूप आर्थिक मानव को अनायास ही पैदा नहीं करती .... इसलिये समाजवादी जनतंत्र का कार्य है अपने सदस्यों को समाजवाद की ओर बढ़ने के लिये ठीक से शिक्षित करना।"[58]

जिस प्रकार प्रजातंत्र का कोई विकल्प नहीं है उसी प्रकार प्रजातांत्रिक समाजवाद निश्चित रूप से पूँजीवाद का एक सही विकल्प नहीं हो सकता है। लूकाच कहते हैं कि लोकतांत्रिक समाजवाद की सफलता के लिये आज पुनर्जागरण की जरूरत है। 'लेकिन ऐसा बहुत शीघ्र नहीं होगा।'

गाँधीवाद (Gandhism)

यदि पूँजीवाद और लोकतांत्रिक समाजवाद को भी पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता की उपज कहकर साम्यवाद के विकल्प के रूप में नकार दिया जाता है। क्योंकि औद्योगीकरण के समस्त दोष इन व्यवस्थाओं में भी होंगे। समाजवादी लोकतंत्र द्वारा एक वैकल्पिक समाज बनाने का प्रयास पूँजीवादी व्यवस्था के ही पुनः विकास में परिणत होंगे तो विकल्प के रूप में एक ही दर्शन हमारे सामने आता है वह है गाँधीवाद।

गाँधी जी ही बीसवीं शताब्दी के एकमात्र और प्रथम व्यक्ति है जिन्होंने आधुनिक औद्योगिक सभ्यता को कभी आदर्श की दृष्टि से नहीं देखा। उन्होंने आधुनिक उद्योगवाद पर आधारित सभ्यता को 'शैतानी सभ्यता' कहा क्योंकि इस औद्योगिक विकासवाद की प्रक्रिया का अनिवार्य अंग पूँजीवाद है। उन्होंने

---

57. नन्द किशोर आचार्य साम्यवादी व्यवस्था का विकल्प पूँजीवादी नहीं, जनसत्ता, 21 नवम्बर, 1990

58. जार्ज लूकाच, विकल्पों की धारणा, मानवीय श्रम के अर्थ का आधार है, संकट के बावजूद, पृ. 55

इस शैतान सभ्यता को मशीनी सभ्यता कहकर इसे मनुष्य की प्राकृतिक क्षमताओं को नष्ट करने वाला कहा। उन्होंने प्रकृति पर मनुष्य के अधिपत्य को भी नहीं स्वीकारा और निर्बलों के जीवित रहने के अधिकार को जोरदार समर्थन दिया।

गाँधी जी का वास्तविक उद्देश्य केवल भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के लिये सत्य अहिंसा के आदर्शों के आधार पर एक नवीन विश्व का, नये तौर पर निर्माण करना था। गाँधी जी के शिष्यों ने उनके विचारों को यद्यपि पूर्णतयाः नहीं स्वीकारा। भारत के समाजवादियों ने गाँधीवाद को आगे बढ़ाने का प्रयास जारी रखा। 'गाँधीवाद' शब्द पर स्वयं गाँधी जी को आपत्ति थी उनका कहना था "गाँधीवाद नाम की कोई वस्तु नहीं है और मैं अपने बाद कोई सम्प्रदाय छोड़ना नहीं चाहता"[59] फिर भी समय–समय पर अपने भाषणों, लेखों और पत्राचार में उन्होंने एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था के बारे में जो विचार प्रकट किये उन्हीं को गाँधी दर्शन या गाँधीवाद की संज्ञा दी गई।

गाँधी जी ने सामाजिक विकास के लिये पश्चिमी सभ्यता के स्थान पर प्राचीन भारतीय संस्कृति के आदर्श को प्रस्तुत किया। आधुनिक औद्योगिकीकरण के स्थान पर वैकल्पिक साधनों का जो सुझाव दिया वह गाँधी जी की मौलिक देन है। उनका कहना था पश्चिमी सभ्यता एवं आधुनिक औद्योगिकीकरण के माध्यम से न्यायपूर्ण, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की कोई संभावना नहीं है। समानता की स्थापना के लिये उन्होंने पूँजीवादी प्रौद्योगिकी के विकास पर विश्वास नहीं किया।

गाँधी जी ने अपने आदर्श राज्य में आधुनिक प्रौद्योगिकी विकास के स्थान पर देशी प्रौद्योगिकी पर आधारित विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था को आधार बनाया। आधुनिक मशीनरी के प्रयोग के स्थान पर हाथ के काम एवं श्रम पर जोर दिया। अतः बड़े–बड़े उद्योग धन्धों की स्थापना न करके ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग पर बल दिया। अर्थव्यवस्था के इस विकेन्द्रित स्वरूप के साथ उन्होंने जन अभिमुख लोकतंत्र की कल्पना रखी जिसमें जनता की शासन में अधिकतम भागीदारी हो।

गाँधी जी ने मनोवृत्ति पर विशेष बल दिया और सामाजिक विवेक पर आधारित विकेन्द्रीकृत राजनीति व्यवस्था को आदर्श माना। जिसमें राष्ट्र की समृद्धि का मापदण्ड जनता की समृद्धि को माना। उन्होंने पूँजीवादी सिद्धान्त 'अधिकाधिक उत्पादन' के स्थान पर अपनी आवश्यकताओं को कम करने तथा सादा जीवन बिताने पर बल दिया। इस प्रकार "आदर्श जनतंत्र का सामाजिक व आर्थिक संगठन अपरिग्रह, शरीर श्रम, स्वदेशी और विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित होगा।[60]

गाँधी जी की सबसे बड़ी देन है हिंसात्मक साधनों के प्रयोग के स्थान पर अहिंसात्मक सत्याग्रह

---

59. महात्मा गाँधी, हरिजन, 2 मार्च, 1934

60. डा. सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश, गुप्त राजनीति कोश, पृ. 292

का विचार। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिये उन्होंने अहिंसात्मक असहयोग एवं निष्क्रिय प्रतिरोध के दर्शन को केवल प्रस्तुत ही नहीं किया वरन् व्यवहारिक धरातल पर भी उसका सफल प्रयोग करके दिखाया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रयोग उनका अनुपम योगदान है।

गाँधी जी के आलोचक गाँधी जी को पूँजीवाद का समर्थक कहते हैं। जबकि पूँजीवाद के केन्द्रीयकरण के स्थान पर उन्होंने स्थानीय विकेन्द्रीकरण को समर्थन दिया। बड़े उद्योगों के स्थान पर लघु उद्योगों की स्थापना की बात कही और मशीनीकरण के स्थान पर शारीरिक श्रम पर बल दिया। उन्होंने 'ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त' के द्वारा पूँजीपतियों में विवेक एवं न्याय की भावना जागृत करना चाहा। इसके अनुसार पूँजीपति अपनी पूँजी को जनता की पूँजी समझकर जनहित में उसका प्रयोग करेंगे।

गाँधी जी के औद्योगिकीकरण के विरोधी सिद्धान्त को पिछड़ा हुआ कहकर भी आलोचना की गयी जबकि आधुनिक औद्योगिकीकरण ने यंत्रवाद को प्रोत्साहन देकर मनुष्य को निष्क्रिय बनाया। गाँधी जी में 'रोटी योग्य श्रम के सिद्धान्त' की स्थापना की एवं उदरपूर्ति के लिये प्रत्येक मनुष्य के लिये शारीरिक श्रम को आवश्यक कहा।

गाँधी जी के दर्शन को काल्पनिक और अति आदर्शवादी कहने वाले आलोचकों की कमी नहीं है। पर आज भी अपने देश एवं विदेश में गाँधी जी के अहिंसात्मक सिद्धान्तों के प्रयोग को अपनाया जा रहा है। इसलिये मार्क्सवादी समाजवादी व्यवस्था के ध्वस्त होने का मतलब यह नहीं है कि अब पूँजीवाद या उसके उदार संस्करण लोकतांत्रिक समाजवाद के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं बचा है।(61)

वास्तव में गाँधीवाद में साम्यवाद के विकल्प बनने की संभावना सदैव बनी रहेगी। 'यद्यपि स्वयं गाँधी जी का लक्ष्य ऐसा कोई विकल्प प्रस्तुत करना नहीं था।'(62) वी. के. आर. वी. राव का कहना है कि गाँधीवाद पश्चिमी विचारकों द्वारा प्रस्तुत वैज्ञानिक समाजवाद या साम्यवाद के लिये निश्चित रूप से एक विकल्प प्रस्तुत करता है। इसमें वर्तमान समाज एवं राजनीति की अनेक समस्याओं का हल निहित है।

मार्क्स एवं गाँधी दोनों ही पूँजीवादी समाज के दोषों के आलोचक थे। दोनों का ही लक्ष्य था वर्गहीन समाज। किन्तु दोनों ने ही अपने आदर्श समाज को विस्तृत रूप में प्रस्तुत नहीं किया। "मार्क्स एवं गाँधी दोनों ने ही स्वीकार किया कि वर्तमान परिस्थिति संघर्ष एवं तनाव से परिपूर्ण है।(63) दोनों ही शोषित वर्ग के हितेच्छु हैं एवं दोनों का दर्शन मानवतावादी है। आदर्श समाज में दोनों ने श्रम करने पर बल दिया। दोनों राज्य व्यवस्था के अन्त के समर्थक हैं। गाँधी जी का आदर्श समाज 'राम राज्य' राज्य रहित जनतंत्र

---

61. नन्द किशोर आचार्य, साम्यवादी व्यवस्था का विकल्प पूँजीवाद नहीं, जनसत्ता, 21 नवम्बर, 1990
62. Mohit Sen, Outed in the Essay, Marx and Gandhi : A Comparison by S. Mukherjee, P. 58
63. Subrato Mukherjee, Marx and Gandhi : A Comparision, P.-66

है। परन्तु महत्वपूर्ण अन्तर दोनों में यही है कि गान्धी जी हिंसा एवं नियंत्रण के सख्त विरोधी थे। वर्तमान समाज के विकल्प के रूप में गान्धीवाद का महत्व सदैव बना रहेगा।

सर्वोदय (Sarvodaya)

हम जब विकल्प के रूप में गाँधीवाद पर विचार करते हैं तो गान्धी जी के अन्र्तदर्शन पर आधारित सर्वोदय के राजनीति दर्शन पर भी एक दृष्टि डालना समीचिन होगा। सर्वोदय राजनीतिक तथा सामाजिक पुर्ननिर्माण की एक योजना है और गान्धीवाद को ही विकसित करने का एक प्रयास है।

सर्वोदय मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त का विरोधी है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह शोषण की स्थिति का समर्थक है। यह निर्बलों के हित एवं अल्पसंख्यकों के अधिकारों का रक्षक है तथा इसका मूल सिद्धान्त है सबके लिये सुखी एवं उन्नत जीवन प्राप्त करना। यह सामाजिक एवं आर्थिक समानता का भी समर्थक है। यह स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा भाईचारे के आदर्शों को अत्यधिक महत्व देता है। इसलिये वह राज्य व्यवस्था का विरोधी है क्योंकि "राज्य की शक्ति में वृद्धि करके किसी प्रकार की सफलता प्राप्त करना संभव नहीं है।"[64]

सर्वोदय पश्चिमी लोकतंत्र का कटु आलोचक है। यह दलविहीन लोकतंत्र की योजना प्रस्तुत करता है एवं बहुमत की धारणा का विरोधी है। गान्धीवादी शक्ति के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त, एवं ग्राम राज्य की परिकल्पना का व्यवहारिक साक्षात्कार पर विश्वासी है। सत्याग्रह एवं भूदान के साधनों द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में शान्तिपूर्ण ढंग से परिवर्तन करना चाहता है। बिनोबा के अनुसार सर्वोदय के द्वारा गाँधीवादी आदर्श को साकार रूप देने का प्रयास असंभव नहीं है। "हो सकता है कि हम अनेक दशकों तक इस दर्शन को व्यवहारिक रूप न दे सकें, फिर भी .... बीसवीं शताब्दी में संभवतया यही एक ऐसा राजनैतिक दर्शन है। जिसका आग्रह है कि लोकतंत्र तथा करोड़ों लोगों के स्वशासन को वास्तविकता का रूप देना है।"[65] इसका सबकी उन्नति का संकल्प और स्वशासन को व्यवहार में लागू करने का स्वप्न प्रेरणा एवं स्फूर्तिदायक है।

नव मानववाद (New Humanism)

यहाँ पर एम. एन. राय के नव मानववादी विचारधारा पर भी दृष्टि डालना अप्रासंगिक नहीं होगा। प्रारम्भ में मार्क्सवाद पर विश्वास रखने वाले एम. एन. राय बाद में मार्क्सवाद के आलोचक बन गये थे। "वे मार्क्सवाद को आर्थिक नियतिवाद की कट्टरता से मुक्त करके उसके 'मानववादी, स्वतंत्रतवादी तथा

---

64. Jai Prakash Narayan, A Picture of Sarvodaya Social Order, P. 43
65. वी. पी. वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन, पृ. 582

नैतिक' सार की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते थे।"(66)

राय के नव मानववादी दर्शन में सर्वोदय की भाँति शान्तिपूर्ण साधनों के प्रयोग का समर्थन किया गया। सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने विकेन्द्रीकरण का पक्ष लिया, दलविहीन लोकतंत्र को आदर्श माना तथा स्थानीय संस्थाओं को शक्ति का वास्तविक स्थान माना। पर मार्क्सवाद के इस विकल्प को कभी व्यवहारिक रूप नहीं दिया जा सका। राय रूसी आन्दोलन के प्रति आशावादी थे। यह भी कि "योरोप पहुँचकर आन्दोलन का निश्चित रूप से प्रजातंत्रीकरण होगा।"

राय को विश्वास था कि "नव मानववाद से प्रेरित प्रजातंत्र का पुनरुत्थान रूसी क्रान्ति की विजय होगी। यदि वह संभव होता है तो पश्चिमी गुट हमारे समय की सफल क्रान्ति का घर होगा।"(66A) अभी इस कथन की वास्तविकता भविष्य के गर्भ में है।

जैसा कि लोकतांत्रिक समाजवाद की सफलता के लिये कहा गया है कि इसके अनुरूप मानव चाहिये। उसी प्रकार गाँधीवाद, नव मानववाद एवं सर्वोदय दर्शन के लिये भी यह आवश्यक है कि नागरिक चरित्रवान एवं अनुशासनबद्ध हो, ग्रामों में पंचायते लोकतंत्र के प्रशिक्षण केन्द्र बनें तथा जनता का अपनी आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासकीय समस्याओं को योग्यतापूर्वक समाधान करें। इसके लिये जनता को प्रबन्ध कला का प्रशिक्षण दिया जाये तभी जनभागीदारी के माध्यम से ये शासन सफल हो सकते हैं।

यूरो–कम्यूनिज्म (Euro-Communism)

आधुनिक युग में साम्यवाद के विकल्प के रूप में योरोप नें एक नवीन विचारधारा का विकास हुआ है जिसे यूरो साम्यवाद (Euro-Communism) कहते है। 1976 में स्पेन के साम्यवादी दल के नेता सेन्टियागो कैरिल्लो ने योरोपीय साम्यवादी दल के सम्मेलन में इस पर संक्षेप किन्तु स्पष्ट रूप में प्रकाश डाला था। उसके बाद में यह एक प्रचिलत शब्द बन गया। यह पश्चिमी मार्क्सवादी की नयी प्रकृति है जिसके अनुसार पश्चिमी समाज के मानकों के अनुसार साम्यवाद को ढालने का प्रयास किया गया है।

यूरो साम्यवाद के समर्थकों ने एक लोकतांत्रिक समाजवाद की कल्पना की हैं इनका कहना है कि लोकतंत्र के बिना समाजवाद अधूरा है। रूस में समाजवाद को लोकतंत्र से नहीं वरन् तानाशाही से जोड़ा गया। यूरो साम्यवादी एक दमन एवं शोषण रहित राज्य की कल्पना करते हैं जिसमें सार्वजनिक कार्य एवं प्रतिनिधि प्रजातंत्र के कार्य समन्वित होंगे। इस लोकतंत्र में प्रभावी शक्ति लोकतंत्र के अंगों में निहित होगी।

यह मिश्रित अर्थव्यवस्था का समर्थक है जिसमें निजी सम्पत्ति एवं सार्वजनिक सम्पत्ति का सह–अस्तित्व होगा। इसमें नागरिक स्वतंत्रतायें सुरक्षित ही नहीं रहेंगी वरन् उनका विस्तार होगा। विचार,

---

66. वही, पृ. 509

66A. Independent, London, 13 September, 1989

अभिव्यक्ति, संगठन, प्रकाशन, प्रदर्शन व धार्मिक हर प्रकार की स्वतंत्रताओं पर स्वीकृति होगी। यह नये समाज की स्थापना के लिये लोकातंत्रिक विधि के उपयोग को अत्यधिक महत्व प्रदान करता हैं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में विदेशी पूँजी की भूमिका को मान्यता प्रदान करता है। यूरो साम्यवाद विश्व शान्ति का समर्थक है और शीत युद्ध के वातावरण की आलोचना करता है। यह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सजीव लोकतंत्र की स्थापना का समर्थक है।

इस प्रकार योरोपीय समाज की परिस्थितियों में समाजवाद एवं लोकतंत्र दोनों के समन्वय से यूरो साम्यवाद एक स्वतंत्र समाज की स्थापना चाहता है। "यह सुनिश्चित हो कि हमारे कार्य समाज को समाजवाद की ओर ले जायें तथा हमारे कार्य लोकतंत्र व देश के समस्त लोकतांत्रिक जीवन के हेतु हमारे संघर्ष के अन्तर्वस्तु एवं प्रभावशीलता प्रदान करें।"[67] पर यूरो साम्यवाद में स्पष्ट व्याख्या का अभाव है और इस आन्दोलन का व्यवहारिक पक्ष निराशाजनक रहा है। उपरोक्त समस्त विकल्पों के बावजूद मुख्य विवाद पूँजीवाद एवं साम्यवाद के बीच है जो आज भी सबसे महत्वपूर्ण है।

पूँजीवाद बनाम समाजवाद—बहस एवं विकल्प

(Capitalism Versus Socialism - A Debate and Alternative)

मार्क्स ने पूँजीवाद की आलोचना करते हुये कहा था कि पूँजीवाद एक ऐसी पद्धति है। जो थोड़े से लोगों द्वारा एक विशाल जन समूह के शोषण पर आधारित होता है। उसने दावा किया कि वर्तमान पूँजीवादी राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था को क्रान्ति द्वारा उखाड़ फेंकने के माध्यम से ही मानव की मुक्ति संभव है। मार्क्स ने मानव की मुक्ति के संघर्ष के लिये और इसे संभव बनाने के लिये एक वैज्ञानिक पद्धति की व्याख्या की जिसके द्वारा समाजवाद को प्राप्त किया जा सकता है।

परन्तु मार्क्स की व्याख्या को अनेक विचारकों, एवं राजनीतिज्ञों विशेषकर पूँजीवादियों ने कभी पसन्द नहीं किया। उनका कहना था कि दुर्भाग्य से पूँजीवाद शब्द की व्याख्या उसके महान विरोधी एवं परम शत्रु मार्क्स ने जिस रूप में की वह उत्तम और सही नहीं है। इसलिये हम उन पर इस व्याख्या के लिये पूर्णतया निर्भर नहीं रह सकते। उन्होंने मार्क्स के समय में भी मार्क्स की आलोचना की और दावा किया कि पूँजीवादी पद्धति की असमानतायें अन्तर्जात नहीं है और पूँजीवाद के माध्यम से मानव को विकास करने एवं अधिकारों के उपभोग के असीम अवसर मिलते हैं।

तब से लेकर अब तक 150 वर्ष बाद भी पूँजीवाद एवं समाजवाद के मध्य विवाद गर्म है। आज औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप पर्यावरण के संकट एवं आर्थिक संकट के बावजूद तथा दुनिया के लोगों के

67. Santiago Carrillo, Euro Communism and State, P. 7

संकटों के बढ़ने के बावजूद यह माना जा रहा है कि पूँजीवाद हमें मुक्ति प्रदान करने में सक्षम है। "यहाँ तक कि जो लोग यह सोचते हैं कि पूँजीवाद में अनेक कमियाँ हैं, इसका अन्त होना चाहिये उनमें से बहुत कम यह विश्वास करते हैं कि एक ऐसा समय आयेगा जब जनता का अधिकतम भाग जाग उठेगा एवं अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करेगा।"[68]

वास्तव में समाजवाद के सोवियत प्रयोग की असफलता ने समाजवाद बनाम पूँजीवाद के विवाद को अधिक गर्माया है। जब दुनिया ने लाखों, करोड़ों लोगों को योरोप के समाजवादी देशों में एक दुःस्वप्न से भागने के लिये संघर्ष करते हुये देखा। ऐसे में यह विश्वास करना कठिन हो गया कि समाजवाद समानता पर और लोगों के कल्याण की इच्छा पर आधारित शासन हैं। कुछ विचारकों का यहाँ तक कहना है कि साम्यवादी पद्धति केवल भ्रष्ट ही नहीं वरन् एवं एक प्रकार की अत्याचारपूर्ण पद्धति है। साम्यवाद के सोवियत प्रयोग में सरकार सम्पूर्ण जनता का नियंत्रण करती रही और उसका निर्दयतापूर्वक शोषण करती रही।

दूसरी ओर पूँजीवाद व्यक्तिगत अधिकारों की मान्यता पर आधारित एक आर्थिक पद्धति है जिसमें सभी की सम्पति का स्वामित्व व्यक्तिगत होता है। पूँजीवादी विचारक दावा करते हैं कि यही एक मात्र पद्धति है जो जनता को उनके अधिकार एवं स्वतंत्रताओं से वंचित नहीं करता। इसमें जीवन का अधिकार, स्वंतत्रता का अधिकार एवं सम्पत्ति का अधिकार मान्य है। मानव स्वेच्छा से अपनी जीवन पद्धति को चुनने के लिये स्वतंत्र होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम एवं काम के मूल्य को प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

समाजवाद में सभी सम्पत्ति का स्वामी सरकार होती है। सरकार शक्ति द्वारा सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार छीन लेती है। सरकार धन एकत्र करके उसे निर्धनों को देती है। सभी अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करते हैं परन्तु पाते है अपनी आवश्यकता के अनुसार। आलोचकों का यहाँ तक कहना है कि यह एक 'भिखारियों का समाज' तैयार करती है। क्योंकि वितरण अयोग्य एवं श्रम न करने वालों में होता है न कि योग्य एवं श्रम करने वालों में। यद्यपि समाजवाद में असमानता को समाप्त करने के लिये निर्धनों को आर्थिक सहायता दी जाती है। परन्तु वह अल्पकालीन होती है। मूरे के अनुसार समाजवाद में एक के बाद एक अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती है। जिनका समाधान नहीं हो पाता है। एक समस्या के समाधान के प्रयास में दूसरी समस्यायें सामने आती है। जिससे बार–बार शासन के हस्तक्षेप की आवश्यकता उत्पन्न होती है। जब तक कि शासन सर्वाधिकारवादी, समष्टिवादी और तानाशाह न हो जाये। इससे जनता के सामने कोई अन्य मार्ग चुनने का विकल्प उपस्थित होता है।[69] जैसा कि पूर्वी योरोप एवं सोवियत संघ में हुआ।

पूँजीवाद द्वारा निर्धनता की समस्या का स्थायी समाधान खोजा जाता है। इसके सामाजिक

68. Wendy Robertson, Captalism versus socialism : What would Marx say today ? P.1, GLW, 1999
69. Murrary N. Rothbard : A Future of Peace and Capitalism, P.7, Reprinted by The Mises Review, August 03, 2004

कार्यक्रम लोगों के लिये स्थायी महत्व के होते हैं। यह समाज की विभिन्न दशाओं को सुधारता है, निर्धनता को कुशलतापूर्वक दूर करता है; जनता के जीवन स्तर को विविध तकनीकों के सहारे ऊपर उठाता है। लोगों को रोजगार के नये अवसर देता है। व्यक्ति को अपने श्रम एवं काम का प्रतिदान मिलता है। पूँजीवाद पर यह आरोप लगाया जाता है कि यह लालच पर आधारित है। पर धन ही मानव जीवन की प्रथम आवश्यकता है। इसी धन के लिये ही व्यक्ति श्रम करता है और अधिक उत्पादन करता है। यही व्यक्ति की उन्नति का भी माध्यम है। अतः मानवीय लोभ या धन की इच्छा ही मानव को श्रम करने के लिये और उन्नति के लिये प्रेरित करती है।

श्रमिकों का शोषण पूँजीवाद का बहुत बड़ा दोष बताया जाता है। पूँजीपति श्रमिकों को अपना दास बना लेते हैं। जबकि समाजवाद में मानव राज्य के दास बन जाते हैं, राज्य के हित के लिये मानव का बलिदान लिया जाता है। पूँजीवाद में व्यक्ति के अधिकारों का सम्मान किया जाता है। प्रत्येक को स्वेच्छा से काम करने की स्वतंत्रता है। परन्तु साम्यवाद केवल सिद्धान्त में ही काम करता है। जहाँ व्यक्ति की कार्य करने की स्वतंत्रता छीन ली जाती है, उसका व्यक्तिगत हित उपेक्षित होता है, उसे अपने श्रम का लाभ नहीं मिलता है तो बल पर आधारित यह शासन व्यवहार में अधिक दिनों तक काम नहीं कर पाता है। जनता अन्य विकल्प खोजने के लिये बाध्य होती है।

पूँजीवाद में अधिक से अधिक उत्पादन करने के लिये प्रतिस्पर्द्धा होती है। जिसका सीधा परिणाम है प्रगति। प्रतिस्पर्द्धा ही मानव को विकास की ओर ले जाती है। व्यक्ति जितना श्रम करता है उतना ही पाता भी है। अतः पूँजीवाद न केवल स्वतंत्रता का पोषक है वरन् यह प्रगतिकारक भी है। समाजवाद में प्रतियोगिता के अभाव में प्रगति धीमी होती है। पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक अमेरीका ने विगत एक शताब्दी के दौरान अबाध गति से उन्नति की है। संसार में वहाँ की जनता का जीवन स्तर सबसे ऊँचा है। अमेरीका की पूँजीवादी व्यवस्था ने अपने को केन्द्रीकृत, अनुत्तरदायी एवं प्रतियोगिता विरोधी सामाजिक व्यवस्था से कहीं अधिक उत्तम सिद्ध किया है।

जर्मन समाजवादी विचारक फ्रैन्ज ओपनहेमर पूँजीवादी स्वतंत्र बाजार के समर्थक है। वे कहते हैं कि सम्पत्ति अर्जित करने का प्रथम मार्ग है कोई वस्तु उत्पादित करना या कोई सेवा करना और विनिमय में धन प्राप्त करना। इसी पद्धति को उन्होंने 'स्वतंत्र बाजार पद्धति' कहा है। यह पद्धति रचनात्मक एवं उत्पादन में वृद्धि करने वाला है। परन्तु दूसरी पद्धति है किसी की सम्पत्ति पर कब्जा कर लेना जैसा डकैती या लूट। यह पद्धति उत्पादन पर रोक लगाती है।[70]

ओपन हेमर के समर्थक एवं महान उदारवादी विचारक अल्बर्ट जेनॉक ने पूँजीवाद एवं समाजवाद की अवधारणाओं को 'सामाजिक शक्ति' एवं 'राज्य शक्ति' कहकर पुकारा है। इनके अनुसार

70.. Franz, Oppenheimer, State

'सामाजिक शक्ति' से तात्पर्य है वह उत्पादक शक्ति जो स्वैच्छिक विनिमय के माध्यम से स्वतंत्र बाजार से निकलती है। दूसरी शक्ति 'राज्य शक्ति' राज्य द्वारा शोषण पर आधारित है, यह पराश्रयता है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद राज्य शक्ति क्षीण हुयी है। और समाज शक्ति को उभरने का अवसर मिला है। आज ऐसे विचारकों की कमी नहीं है जो कहते हैं कि स्वतंत्र बाजार पूँजीवाद का भविष्य बहुत उज्जवल है। पूँजीवादी पद्धति आज से सौ, दो सौ वर्ष पूर्व भी भविष्य की आशा थी और यह आज भी मानव भविष्य की आशा है।

यद्यपि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूँजीवादी व्यवस्था उपभोक्ताओं को भारी मात्रा में विभिन्न प्रकार की सुविधाजनक वस्तुयें देने में सफल हुयी है। पर ये सुविधायें केवल समाज के सम्पन्न वर्ग को प्राप्त हुयी है निर्धनों को नहीं। क्योंकि इस व्यवस्था में निर्धनों के लिये नहीं वरन् उच्च आय वाले लोगों के लिये ही बाजार बनाया जाता है।

इसके विपरीत समाजवादी व्यवस्था में सम्पूर्ण जनता के लिये बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था की जाती है। जैसे भोजन, निवास, वस्त्र, शिक्षां, चिकित्सा आदि। जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रारम्भिक अवस्था में उत्पादन में तेजी से वृद्धि होती है। परन्तु औद्योगिक विकास के साथ समाजवादी देश अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्द्धा में शामिल हो जाते हैं। यहाँ तक कि सैनिक शक्ति के होड़ में भी। इस प्रकार इस पद्धति में उत्पन्न दोष पद्धति को पतन की ओर ले जाते हैं। जैसा कि सोवियत संघ में हुआ।

साम्यवाद के सोवियत प्रयोग की असफलता के कारण ही फ्रांसिस फुकुयामा 'टाइम' पत्रिका में लिखते हैं कि पूर्ण विकसित समाजवाद मृत हो चुका है सुदूर भविष्य के लिये भी। अब यह कभी वापस नहीं आयेगा। अब आगे इस दिशा में कोई प्रयास नहीं होंगे – चाहे वह उत्पादन के साधनों का समूहीकरण हो या व्यापार और पूँजी के लागत को समाप्त करने की हो या फिर श्रम विभाजन की हो।

लेवेलिन एच रॉकवेल का कथन है कि फुकुयामा का विश्लेषण संकीर्ण है। आज के समाजवादियों का कार्यक्रम अधिक विस्तृत है। वे पर्यावरण के प्रति जागरूक हैं। इसमें नागरिक अधिकार आन्दोलन भी शामिल है। वे समाज का पुर्ननिर्माण चाहते है। नवीन तकनीकों की गुणवत्ता के नाम पर राष्ट्रीयकरण चाहते है। ये शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, सुरक्षा और अनेक प्रकार के समाजवादी सुधार के लिये तत्पर है। परन्तु राकवेल पुनः प्रश्न करते हैं कि क्या ये वास्तव में समाजवादी है ?

रॉकवेल के मतानुसार 1917 से 1990 तक सोवियत संघ में वास्तविक समाजवाद नहीं था। वहाँ इस अवधि में मार्क्स के विचार पूर्ण प्रभावी नहीं रहे। वहाँ व्यवहार में ''पारम्परिक आर्थिक तानाशाही का चरम रूप था।''[71] जिस व्यवस्था में पूरा प्रतिबन्ध था कि निर्धन जो उत्पादन करते है उसे अपनी सम्पत्ति के रूप

---

71. Llewellyn H. Rockwell, The Future of Socialism, The Free Market August, 2000

में रख सके। यह कहना ही सही है कि वहाँ पूर्ण विकसित समाजवाद नहीं था। वैसे एक पूर्ण समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना असम्भव प्रतीत होती है। व्यवहार में उत्पादन रूक जाता है, लोग भूखों मरते हैं और प्रयोग का बहुत जल्दी अन्त हो जाता है। यह एक ऐसी विचारधारा है जिसमें सरकार का अर्थ एक आर्थिक संगठन है जो बाजार साधनों से भी उच्च है। रॉकवेल समाजवाद के बारे में यहाँ तक टिप्पणी करते है कि "यह कुछ नहीं वरन् तुच्छ विद्वेष की एक भव्य एवं तर्कपूर्ण व्याख्या है।[72] और ये विद्वेष दुनिया भर में व्याप्त है। सार्वजनिक जीवन का कोई क्षेत्र आज इस निम्न समाजवाद के विष से बचा हुआ नहीं है।[73]

प्रसिद्ध अमेरिकी अर्थशास्त्री जॉन ई. रोमर यह स्वीकार करते हैं कि "साम्यवादी समाज का सोवियत मॉडेल भर चुका है।" परन्तु आगे वह दृढ़ विश्वास के साथ कहते हैं कि "इसका अर्थ यह नहीं कि समाजवाद के अन्य अक्रियान्वित रूपों को भी मृत मान लिया जाये।"[74] केवल सोवियत संघ के पतन के कारण ही समाजवाद को नकार देना एक महत्वपूर्ण सत्य की उपेक्षा करना है। मानव इतिहास में बोल्शेविक क्रान्ति, फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद, सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक घटना थी क्योंकि इसने लाखों या करोड़ों लोगों को प्रथम बार एक ऐसे समाज का सपना दिखाया था। जो लोभ के मानक पर नहीं वरन् समानता के मानक पर आधारित था।[75]

सोवियत संघ में समाजवादियों ने उत्पादन के साधन के सार्वजनिक स्वामित्व को स्वीकार किया परन्तु सार्वजनिक स्वामित्व का सिद्धान्त असफल रहा और समाजवाद भी। ऐसे में लाखों या करोड़ों लोगों के सपनों का भी अन्त हो गया क्योंकि समानता के सिद्धान्त को लागू करके ही 'समाजवाद के सपने' को पाया जा सकता है। अतः रोमर अवसरों की समानता को ही समाजवाद का मुख्य लक्ष्य मानते हैं। अवसरों की समानता में वे 'आत्मबोध' (Self-Realization) को सर्वाधिक महत्व देते हैं। आत्मबोध जो मानवीय समृद्धि की एक विशिष्ट मार्क्सवादी अवधारणा है जिसके अन्तर्गत लोगों को अपनी क्षमताओं के विकास का इतना अवसर मिलता है कि उनके जीवन को एक अर्थ मिल सके।[76]

राबर्ट एल. हेलब्रोनर का कथन है कि समाजवाद की व्याख्या बर्नर्ड शॉ ने भी की और माओत्से तुंग ने भी। हेल ब्रोनर पोलैण्ड के अर्थशास्त्री हर्बर्ड लेन्ज के विचार का उल्लेख करते हैं। कि समाजवाद का मुख्य खतरा है आर्थिक जीवन का नौकरशाहकरण। क्योंकि इसका कुपरिणाम होता है केन्द्रीकृत नियंत्रण। बाजार पद्धति के प्रयोग से निश्चित रूप से समाजवाद को एक भीषण कार्यात्मक संकट से बचा

---

72. वही
73. Llwellyn H. Rockwell, The Future of Socialism, The Free Market August, 2000
74. John E. Roemer, A Future of Socialism, P.-1
75. John E. Roemer, A Future of Socialism, P.-25
76. John E. Roemer, A Future of Socialism, P.-11

लिया गया है। परन्तु आज समाजवाद को बाजार पद्धति या केन्द्रीकृत नियंत्रण में से किसी एक के साथ अपना स्थान बनाना है।[77]

यह संभव है कि समाजवाद इस समस्या का सामना पूँजीवाद के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से करेगा और मानव एवं प्रकृति के मध्य एक सम्भव संतुलन स्थापित करेगा। समाजवाद ने हमेशा मानव की पूर्णता पर दृढ़ विश्वास रखा है। समाजवाद ने हमेशा स्वीकारा है कि मनुष्य परिस्थिति की उपज है। मानव प्रकृति वही होगी जैसी कि समाजवाद की माँग है।

यह माना जाता है कि प्रत्येक आक्रमण सफल होता है विफल होने के लिये। शक्ति और विशेषाधिकारों की नयी दीवारें बनायी जाती है जब पुरानी दीवारें गिरा दी जाती है। अन्तिम लक्ष्य है परिवर्तित, और इससे भी अधिक रूपान्तरित मानव जो केवल एक कल्पना है। फिर भी समाजवाद की जीवन शक्ति इस संभावना से भयभीत नहीं है।

स्टीफेन डे समाजवाद के बारे में कहते हैं कि क्या समाजवाद एक आधुनिक काल्पनिक राज्य (Utopia) है जिसे व्यवहार में पाना असंभव है या फिर क्या यह वास्तव में परिवर्तन का एक कार्यक्रम है ? स्टीफेन डे सबसे पहले समाजवाद के लिये प्रजातंत्र को आवश्यक मानते हुये कहते हैं कि हमें पूँजीवादी प्रजातंत्र एवं पूर्व उदारवादी गतिशील प्रजातंत्र के मध्य एक मार्ग ढूँढ़ निकालना होगा। वह पूँजीवाद से समाजवाद एवं समाजवाद से पूँजीवाद की ओर जाने की प्रक्रिया को नकारते हुये कहते हैं कि परिवर्तन की प्रक्रिया राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र के सम्बन्धों के आसपास घूमती है। अतः यह बात सिद्ध करती है कि मार्क्स का वर्ग आधारित विश्लेषण अब प्रासंगिक नहीं है और आज श्रमिक वर्ग परिवर्तन के एक मात्र वाहक नहीं है। परिवर्तन के लिये स्टीफेन डे 'समुदाय' (Community) एवं नागरिकों (Citizens) की भूमिका पर बल देते हैं। मार्क्स के सिद्धान्तों के विपरीत वे कहते है कि अब विभेद को स्वीकारना होगा एवं वार्तालाप पर विश्वास रखना होगा। क्योंकि आज भी मानव एक बेहतर जीवन पद्धति के विकास की क्षमता रखता है।[78]

आज दुनिया में वित्तीय बाजार का वैश्वीकरण हो चुका है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक क्षेत्र का राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्र पर वर्चस्व हैं वामपंथियों के लिये ऐसे में अपनी आर्थिक एजेण्डा को लागू करना एक समस्या है। ऐसा प्रतीत होता है कि समाजवाद की भूमिका समाप्त हो चुकी है। क्योंकि समाजवादी विचारधारा पर विश्व के परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट है। पारम्परिक समाजवादी प्रजातंत्र सोवियत पद्धति के पतन एवं नव उदारवाद की प्रधानता को चुनौती देने में विफल रहा। अतः इस विचारधारा का आत्मपरीक्षण आवश्यक है। पूँजीवादी प्रजातंत्र भी आज असफल हो रहा है। स्वतंत्र बाजार पूँजीवाद में

---

77. Robert L. Heilbroner, Between Capitalism and Socialism, Chapter 5
78. Stephem Day - The Future of Socialism - A Modern Ůtopia or an Agenda for Change, P. 1

इसे समाप्ति की ओर ले जाने की क्षमता है।

वामपंथी विचारधारा को इन परिस्थितियों में एक विश्वसनीय एवं व्यवहारिक विकल्प रखना होगा। प्रजातंत्र के सच्चे आदर्श की पूर्णता के लिये एवं समाज के तन्तुओं को फिर से जोड़ने के लिये एक सही विकल्प की खोज समय की माँग है। इसके लिये नये 'समाजवादी पुरूष एवं स्त्री उत्पन्न नहीं करना होगा वरन् प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया द्वारा एक नये समाज का विकास करना होगा। आज के संकट से न तो स्वतंत्र बाजार के समर्थक और न ही पारम्परिक समाजवादी प्रजातंत्र के समर्थक कोई रास्ता निकाल सकते है।

स्टीफेन की परिकल्पना है पहले सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में एवं उसके बाद आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन लाना होगा। इस प्रकार के सुधार श्रमिक वर्ग की ओर से नहीं वरन् नागरिक समाज की ओर से आयेंगे। यह एक उत्तर उदारवादी गतिशील प्रजातंत्र हो सकता है जिसमें 'समुदाय आधारित शासन' होगा और 'नागरिकों की अधिकतम भागीदारी' होगी जो वर्तमान संकट की ओर जागरूक होकर समस्या के समाधान की ओर आगे बढ़ने का प्रयास करेंगे। इसके लिये वामपंथियों को सक्रिय होना होगा। आज की दुनिया में वामपंथी विचारों के पनपने के लिये जमीन उपजाऊ है और समय परिपक्व है और प्रजातंत्र एक लचीली अवधारणा है। परिवर्तन एक निरन्तर प्रक्रिया है। अतः न्याय, समानता और प्रजातंत्र के लिये संघर्ष जारी रहना चाहिये।[79]

समाजवाद के बारे में ब्रिटेन के प्रसिद्ध समीक्षक लार्ड डहरेन डर्फ के विचार उल्लेखनीय है जब वे कहते हैं कि पिछली सदियों में घटित क्रान्तियों के सामने निश्चित आदर्श रहे हैं यद्यपि उनमें से कुछ बाद में असफल या गलत सिद्ध हुये हैं। परन्तु सोवियत संघ या पूर्वी योरोप के देशों की क्रान्ति एक ऐसी क्रान्ति थी जिसके सामने न तो कोई ऐतिहासिक आदर्श था और न ही कोई क्रान्तिकारी सिद्धान्त। इसके अभाव में पूर्वी योरोप में घटित घटनाओं के लिये गलत अवधारणाओं एवं राजनैतिक दृष्टिकोणों का ही सहारा लिया जा रहा है।[80] इन घटनाओं को समाजवादी एवं पूँजीवादी इन दोनों पद्धतियों के मध्य एक संघर्ष के रूप में देखा जा रहा है।

परन्तु पूर्वी योरोप में जो कुछ घटित हुआ उसे दो पद्धतियों (पूँजीवाद एवं समाजवाद) के बीच एक संघर्ष के प्रकाश में देखना ठीक नहीं होगा। मुक्त समाज के एक महान समर्थक के रूप में उनका कथन है कि "केन्द्रीय एवं योरोप के देशों ने साम्यवादी पद्धति से इसलिये छुटकारा प्राप्त नहीं किया कि वे पूँजीवाद (जो भी यह है) को अपनाना चाहते हैं वरन् उन्होंने एक बन्द पद्धति से मुक्ति प्राप्त की – एक मुक्त समाज

79. Stephen Day - The Future of Socialism - A Modern Utopia or an Agenda for Change, P. 12
80. Ralph Dahrendorf, Quoted by Ileana Petras, Theoratical Aspects of Post-Communist Modernization, P. 2

के लिये। मुक्त समाज जिसके बारे में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि पद्धतियाँ अनेक हो सकती है परन्तु मुक्त समाज एक ही है।"[81]

इलीना पेट्रास के अनुसार डहरेन डार्फ के निष्कर्ष कई कारणों से उत्तम है। प्रथम तो यह कि मुक्त समाज की अवधारणा अपने आप में एक छोटी और अनिश्चित अवधारणा है। जिसे इस विशाल एवं ऐतिहासिक परिवर्तन का कारक कार्यक्रम नहीं माना जा सकता है। द्वितीय, वे किसी विशेष अवधारणा या पद्धति की बात को भी स्पष्ट अस्वीकार करते हैं।[82]

इस विषय में डहरेन डर्फ सुनिश्चित एवं स्पष्ट प्रतीत होते हैं जब वह कहते है कि "स्वतंत्रता की ओर मार्ग किसी एक पद्धति से दूसरी पद्धति की ओर नहीं ले जाता है। वरन् यह मार्ग असीमित संभावित भविष्य के उन्मुक्त परिदृश्य की ओर ले जाता है जहाँ एक दूसरे के मध्य प्रतिस्पर्द्धा हो। उनकी प्रतिस्पर्द्धा ही इतिहास को बनाती है।"[83] आगे वह स्पष्ट करते हैं कि यदि हम पूँजीवाद को एक पद्धति के रूप में लेते हैं तो इसके विरूद्ध संघर्ष उतना ही कठिन होगा जितना कि साम्यवाद के विरूद्ध। क्योंकि किसी एक पद्धति को स्वीकार कर लेने का अर्थ ही है अधीनता को स्वीकार कर लेना। यहाँ तक कि बाजार व्यवस्था की सामान्य पद्धति को स्वीकार कर लेना भी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में किसी अन्य विकल्प के सामने न होने से वह उदारवादी प्रजातंत्र को एक स्वीकार्य दर्शन एवं प्रतिमान मानते हैं। परन्तु इसकी सफलता तभी संभव है जब गम्भीर सामंजस्यता हो। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि पूर्व साम्यवादी देश किसी एक पूँजीवादी नमूने का अनुकरण न करें। किसी एक पद्धति को न अपनाकर हमें विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से भूल और सुधार की पद्धति के द्वारा कार्य करना होगा जिससे हम बिना रक्त बहाये समाज में परिवर्तन ला सके।

हमें सोवियत साम्यवाद के पतन से यह सीख लेनी होगी कि समय की माँग यही होती है कि भूत को भुलाकर भविष्य की ओर आगे बढ़ा जाये। जिन देशों ने भूत की भयावहता की परवाह की उन्नति नहीं कर पाये। 1945 के बाद जर्मनी और 1989 के बाद का पौलेण्ड ऐसे देशों के उदाहरण हैं जो भूत की चिन्ता किये बिना आगे बढ़े। पुराने साम्यवादी देश भी इसी प्रकार आगे बढ़े। पूर्वी योरोप के जो पुराने नेता राजनीति से विलग हो गये थे वे ही बाद में राजनीति में सामाजिक प्रजातंत्रवादी के रूप में उतरे। चूँकि परिस्थितियाँ बदल चुकी थी वे भी पूर्णतया बदल चुके थे।

डहरेन डर्फ उदारवादी प्रजातंत्र में संसदीय प्रजातंत्र पर विश्वास प्रकट करते हैं। पर इसके

---

81. वही, पृ. 3
82. Ileana Petras - Voica, Theoratical Aspects of Post-Communist Modernization, P. 3
83. Ralph Dahrendorf, Quoted by Ilena Petras, Theoratical Aspects of Post-Communist Modernization, P. 3

साथ प्रभावशाली प्रशासन पर बल देते हैं। नयी नीतियों और बाजार अर्थव्यवस्था को वास्तविक रूप में लागू करने के लिये प्रशासन की कुशलता और प्रभावशीलता जरूरी है। पूर्वी योरोप के देशों में यह एक बहुत बड़ी समस्या थी। वहाँ क्रान्ति के पीछे मुख्य कारण था प्रशासकीय सुधारों का अभाव।[84]

यह एक सामान्य विश्वास है कि तानाशाही से मुक्ति पाने का प्रभावशाली संस्थागत उपचार है निर्वाचन। निर्वाचन महत्वपूर्ण तो है पर समस्या का समाधान नहीं। यदि निर्वाचित प्रतिनिधि निराश करते हैं तो जिन सिद्धान्तों पर प्रजातंत्र और नागरिक स्वतंत्रतायें आधारित है उन पर से जनता का विश्वास उठ जायेगा। प्रजातंत्र का एक और मूल आधार है – कानून का शासन। पर जहाँ पहले तानाशाही थी उन देशों में यह अधूरा रहा है। इसकी स्थापना की प्रक्रिया भी कठिन है। नागरिकों के सामान्य अधिकारों की स्थापना के लिये यह महत्वपूर्ण है।[85]

तानाशाही से उत्पीड़ित किसी देश की जनता को अपने ही देश में एक अधिक अच्छी स्थिति पाने के पूर्व काफी बदतर स्थिति से गुजरना होता है, अनेक कष्ट सहने होते है। तभी डहरेन डर्फ कहते हैं "तानाशाही के पतन से आगे मार्ग एक अधिक उदारवादी आदर्श से प्रेरित होकर आँसुओं की घाटी से होकर आगे जाती है।"[86] निश्चित रूप से पूर्व योरोप के देशों की जनता को भी इस स्थिति का सामना करना पड़ा।

सोवियत संघ में साम्यवाद के अवसान के बाद लगभग पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और इस अवधि में रूस में समाजवाद से 'पूँजीवाद की ओर संक्रमण' के दौरान देश की आर्थिक स्थितियाँ तेजी से बदल रही है। साम्यवादी शासन के दौरान यहाँ समस्त आर्थिक निर्णय और सम्पत्ति राष्ट्रीय और सार्वजनिक स्वामित्व की थी। 'पूँजीवाद की ओर संक्रमण के दौरान सभी आधारभूत उद्योगों का निजीकरण हुआ, स्वतंत्र बाजार नीतियाँ लागू हुयी और अर्थव्यवस्था, समाज एवं जनता के सामान्य कल्याण के साधनों का पुनरूद्धार किया गया।

उत्तर साम्यवाद के इस संक्रमण को प्रायः लोग उदार प्रजातंत्र और पूँजीवाद की ओर संक्रमण ही मानते हैं। साम्यवाद के पतन के बाद संक्रमण काल पर परिवर्तन का दबाव है। परन्तु एक सफल एवं गारंटी देने वाला कोई परिवर्तन सामने नहीं है। अतः इन सभी देशों के समक्ष विकल्प की समस्या है। वैकल्पिक व्यवस्था को प्रत्येक देश को अपनी विशेष परिस्थिति को देखते हुये अपनानी होगी। इलिना प्रेट्रास के मतानुसार आधुनिक समय की केवल एक ही अपेक्षा है व्यवस्था का प्रजातन्त्रीकरण।[87]

---

84. Ralph Dahrendorf, After Dictatorship - Project Syndicate, P. 2, April, 2003
85. Ralph Dahrandorf, After Dictatorship - Project Syndicate, April, 2003
86. Ralph Dahrandorf, Reflections on the Revolution in Europe, 1990
87. Ileana Petras - Voicu - Theoratical Aspects of post - Communism Modernization

क्या साम्यवाद प्रासंगिक है ?

(Is Communism Relevant)

यदि साम्यवाद असफल और अवैज्ञानिक है, यदि साम्यवाद दार्शनिक मार्क्स द्वारा अपने चिन्तन की प्रयोगशाला में गढ़े गये काल्पनिक सिद्धान्त मात्र है, तो वह सोवियत रूस में कैसे अस्तित्व में आया और सात दशकों की अवधि तक कैसे जीवित रहा। स्वयं कार्ल मार्क्स ने 'मानवजाति की मुक्ति' की अपनी काल्पनिक योजनाओं की चर्चा हमेशा इस दृढ़ विश्वास के साथ की कि उनका दर्शन यदि इस सदी में उनके जीवनकाल में नहीं तो अगली सदी में उनके बाद अवश्य सही सिद्ध होगा। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में 1917 में ही रूस की सफल क्रान्ति से मार्क्स के सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध हो गयी।

उसी सोवियत संघ के विघटन के बाद रूस के तत्कालीन राजनेता एवं राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने अपने अमेरिका के दौरे में एक भाषण में कहा, "हमें अब साम्यवाद के बारे में बात नहीं करना चाहिये। साम्यवाद केवल एक फलसफा है, केवल एक आकाश–कुसुम की भाँति।"[88] यानि कि सर्वप्रथम साम्यवादी देश का वर्तमान अधिकारी व नेता अपने ही देश के इतिहास, शासन व्यवस्था व संस्कृति को पूर्णतया मिथक बता रहे है। उन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय दूरदर्शन वार्ता में यह भी कहा कि साम्यवाद 'एक खूबसूरत धारणा है जो कभी भी व्यवहार में लागू नहीं की जा सकती।' यह भी कि 'यह प्रयोग हमारे देश में हमारे लिये त्रासदी लाया है।'

इतिहास के अन्त की धारणा (Idea of End of History)

रूस में साम्यवाद के अन्त के साथ ही इस प्रकार की एक अवधारणा उभरकर आयी यह है 'इतिहास के अन्त' की धारणा। पश्चिमी बुद्धिजीवियों द्वारा प्रतिपादित धारणा यह है कि रूस में साम्यवाद के अन्त के साथ इतिहास का भी अन्त हो चुका है।

यहाँ हम साम्यवाद के पतन के सन्दर्भ में अमेरीकी राजनैतिक अर्थशास्त्री फ्रांसिस फुकुयामा के विचारों का संक्षेप में उल्लेख करना चाहेंगे। फ्रांसिस फुकुयामा का कहना है "हम जो भी देख रहे हैं केवल शीत युद्ध की समाप्ति नहीं है, या उत्तर युद्ध इतिहास का कोई विशेष समय है वरन् इतिहास की समाप्ति है। अर्थात् मनुष्य के वैचारिक विकास के बिन्दु का अन्त एवं मानव शासन के अन्तिम स्वरूप के रूप में पश्चिमी उदारवादी प्रजातंत्र का वैश्वीकरण है।"[89]

फुकुयामा का विशेष तर्क है कि उदार पूँजीवादी प्रजातंत्र ही मानव के राजनैतिक विकास के अन्तिम चरण का प्रतिनिधित्व करता है। इतिहास घटनाओं एवं सैद्धान्तिक संघर्षों के रूप में वास्तव में समाप्त

---

88. ~~Santiago Carrillo, Euro Communism and the State, P. 7~~
89. Francis Fukuyama, The End of History and the Last Man, 1992

हो गया है ऐसा तर्क देते हुये उनका कहना कि इतिहास सैद्धान्तिक विकास के अन्तिम उत्कर्ष पर पहुँच चुका है।

जब सभी जगह साम्यवाद पतन की ओर था फुकुयामा ने "आर्थिक एवं राजनैतिक उदारवाद के अबाधित विजय" का दावा किया। उन्होंने कहा उदारवादी प्रजातंत्र का यह एक निर्णायक विजय है और "यह आदर्श लम्बे समय तक भौतिक दुनिया को परिचालित करेगा।" क्योंकि स्वतंत्रता के पोषण के लिये उदारवादी प्रजातंत्र ही सर्वोत्तम सामाजिक एवं राजनैतिक पद्धति है। इससे ऊपर किसी अधिक अच्छे शासन की स्थापना नही होगी। फुकुयामा के अनुसार अन्य प्रकार के शासन राजतंत्र, साम्यवाद या फासीवाद असफल हुये हैं क्योंकि वे स्वतंत्रता के अपूर्ण वाहक थे। उदार प्रजातंत्र विजयी हुआ है जो मानव को अधिकतम सम्भाव्य स्वतंत्रता देता है।(90)

मानव सभी वस्तुओं के लिये मान्यता चाहता है, सबसे पहले अपने लिये। यह मानव व्यक्तित्व का वह अंश है जो अहंकार, क्रोध या लज्जा जैसी भावनाओं का मूल स्रोत है। जिसके लिये मानव की इच्छा असीम है और विवेक भी। यह मानव को दूसरों के ऊपर अपने को अधिकृत करता है। उदार प्रजातंत्र मानव की मूल इच्छाओं की पूर्ति में सफल होता है।(91)

परन्तु आज के युग में जहाँ पूँजीवाद एवं समाजवाद के विविध रूप विभिन्न देशों में स्थापित है। सैद्धान्तिक संघर्ष की हमेशा के लिये समाप्ति संभव नहीं है। "सैद्धान्तिक मतभेद एवं विवाद इतिहास का सार है .... वे भूतकाल में थे और भविष्य में भी रहेंगे।"(92)

रूस का उदाहरण हमारे सामने है। मार्क्सवाद को लेनिन ने मौलिक रूप में नहीं स्वीकारा उसे व्यवहारिक रूप देने के लिये उसमें परिवर्तन किये। पुनः लेनिन द्वारा स्वीकृत साम्यवादी दल के निरंकुश तंत्र को स्टालिन ने व्यक्तिगत निरंकुश तंत्र में बदला। उसके बाद खुश्चेव, कोसीगिन एवं बेझनेव द्वारा शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व के सिद्धान्त के समर्थन से लेकर गोर्वाचेव द्वारा 'पुननिर्माण' एवं 'खुलेपन' की नीति को लागू करने की गाथा क्या साम्यवादी जगत के ही भीतर सैद्धान्तिक संघर्ष की गाथा नहीं है ? इसी प्रकार रूसी क्रान्ति एवं चीनी क्रान्ति के सिद्धान्त भी पृथक रहे एवं दोनों साम्यवादी देशों में मतभेद स्थायी रूप से बने रहे। अतः इतिहास के अन्त की धारणा तर्क पूर्ण नहीं है।

कुछ लोगों के मतानुसार फुकुयामा वास्तव में इतिहास के अन्त का चिन्तन नहीं करते वरन् एक विकासशील प्रक्रिया पर विचार करते हैं जो दुनिया में स्वतंत्रता की आत्मानुभूति का प्रतिनिधित्व करता है। उनके मस्तिष्क में अन्त का अर्थ होता है एक प्रकार की अधिक पूर्णता न कि समाप्ति या अन्त।(93)

---

90. Francis Fukuyama, The End of History and the Last Man, 1992
91. Francis Fukuyama, The End of History and the Last Man, 1992
92. V. P. Dutt, Return of Socialism in East Europe, Indian Express, 30 December, 1995
93. Roger Kimball, Francis Fukuyama and the End of History, The New Criterion, Feb., 1992

फुकुयामा स्वीकार करते हैं कि "हम एक ऐसी दुनिया की कल्पना नहीं कर सकते हैं जो वर्तमान दुनिया से बिल्कुल पृथक हो और साथ ही बेहतर भी हो। अन्य पूर्ववर्ती कालों ने भी अपने को सर्वोत्तम माना। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि चूँकि यह एक विकल्प की खोज है। हमने अनुभव किया कि काश उदारवादी प्रजातंत्र से भी अधिक अच्छी स्थिति हो।"

फुकुयामा आगे लिखते है कि "मेरे परिकल्पना (Hypothesis) का खण्डन करने के लिये केवल यही कहना पर्याप्त नहीं है कि भविष्य के गर्भ में विशाल एवं युगान्तकारी घटनायें है। इसके लिये यह भी सिद्ध करना होगा कि ये घटनायें एक क्रमबद्ध चिन्तन एवं एक राजनैतिक एवं सामाजिक न्याय से प्रेरित होगी जो उदारवाद के स्थानापन्न होने का दावा करेगी।" यह तभी सम्भव है जब कोई दावा करे कि उसके पास राजनैतिक एवं सामाजिक न्याय का एक क्रमबद्ध चिन्तन है। अन्यथा फुकुयामा के मतानुसार विश्व में एक नवीन युग प्रारम्भ हो चुका है जिसमें उदार प्रजातंत्र की मान्यता स्थापित हुयी है और विश्व में इसका प्रभाव बढ़ेगा।

परन्तु प्रजातंत्रीय समाजवाद एक राजनैतिक आन्दोलन है और आज इसे गंभीरता से लेना होगा। एक राजनैतिक आन्दोलन के रूप में इसकी समस्याओं को पहचानना व समाधान के लिये प्रयास करना होगा। समाजवाद मानवीय आशा का प्रकटीकरण है और मानवीय क्षमता का आदर्शीकरण है। जब समाजवाद की आग का जलना बन्द हो जायेगा – इसका अर्थ होगा मानव ने उस आशा को निष्प्रभ मान लिया है और इस आदर्श को छोड़ दिया है।[94]

सोवियत साम्यवाद की सफलतायें (Successes of Soviet Communism)

"मार्क्सवाद के विज्ञान और मार्क्सवादी विचारधारा ने विश्व घटना के विकास को दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।"[95] रूसी क्रान्ति की सफलता का प्रभाव केवल सोवियत संघ तक ही सीमित नहीं रहा वरन् यह सम्पूर्ण विश्व में फैला। श्रमिक एकता के आन्दोलन एवं लेनिन के नारों ने विश्व के अन्य देशों के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलनों को भी एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया, उन्हें प्रेरित और उत्साहित किया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा।

रूस में साम्यवाद की स्थापना से वहाँ की जनता को जो नये मौलिक अधिकार मिले, काम करने का अधिकार, शिक्षा पाने का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, आवास का अधिकार, वृद्धावस्था या विवशता की अवस्था में सहायता पाने का अधिकार आदि जिन्हे न केवल विश्व के अन्य देशों ने आश्चर्यपूर्वक क्रियान्वित होते देखा वरन् विकसित एवं विकासशील पूँजीवादी देशों ने भी इनसे प्रेरणा ली और अपने देशों

---

94. Robert L. Heilbroner, Between Capitalism and Socialism, Chapter 5

95. लोकलहर, मार्क्सवाद की प्रासंगिकता पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, पृ.–1–2

में भी इन सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों की व्यवस्था की। अपने न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के माध्यम से सोवियत संघ ने अपनी राष्ट्रीय सत्ता को सुदृढ़ बनाया।

सोवियत संघ की करोड़ों श्रमजीवी जनता ने स्वेच्छा से उत्साहपूर्वक एक नवीन अर्थव्यवस्था के सिद्धान्तों, सार्वजनिक स्वामित्व, सहकारी उत्पादन को लागू करने के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। सोवियत संघ तीव्र गति से आर्थिक विकास के पथ पर बढ़ता रहा एवं उसकी तकनीकी एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्तर पर उसे एक महाशक्ति बना दिया।

इतना ही नहीं इस प्रगति एवं इन प्रयोगों के दौरान वहाँ के समाज में उच्चकोटि के साहित्य की रचना हुयी, संगीत और कला के क्षेत्र में नये–नये प्रतिमान बने, और संस्कृति जिस रूप में समृद्ध हुयी उसकी प्रति उदासीनता नहीं बरती जा सकती। वास्तव में सोवियत संघ की आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र की यह उन्नत छवि प्रतिद्वन्द्वी पूँजीवादी ध्रुव के लिये एक चमत्कारपूर्ण चुनौती थी।

लगभग 70 वर्षों तक सफलतापूर्वक लागू रहने वाले एवं विश्वभर में चर्चित सोवियत संघ की "यह पद्धति तीन तत्वों से बनी है जिन्हें तीन स्तम्भों के रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है।"[96] प्रथम यह संविधान द्वारा स्थापित शासन प्रजातांत्रिक है और उत्तरदायी भी। द्वितीय, वास्तविक शक्ति दल में निहित है। जो समस्त निर्णय लेने वाला है। इन दोनों परस्पर विरोधी तत्वों के साथ पद्धति में तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है कि इसका संचालन केवल भय पर आधारित नहीं वरन् विश्वास पर भी आधारित रहा। तभी इसे जन समर्थन मिला।

रेमण्ड एरोन ने इस पद्धति को सिद्धान्ततंत्र (Ideocracy) कहा जिसमें अन्तिम सत्ता, मानव या संस्थान या पद्धति में नहीं वरन् सिद्धान्त में निहित थी। सिद्धान्त के अनुसार इतिहास का विकास एक ऐसी स्थिति लायेगी जिसमें मनुष्य चरित्र के गुण निर्बाध पूर्णता को प्राप्त करेंगे, जिसमें शोषण, दमन और अभाव नहीं होगा। इसी सिद्धान्त पर विश्वास ने शासन पद्धति को सफल अस्तित्व में बनाये रखा।

दुनिया भर में साम्यवाद की औचित्यता सिद्ध हुयी और मार्क्स, एंगिल्स तथा लेनिन के सिद्धान्तों ने अपनी व्यवहारिकता सिद्ध की। ऐसा प्रतीत होने लगा कि एक आदर्श एवं लोक कल्याणकारी समाज की कल्पना को साम्यवाद ने वास्तविक रूप दिया है और पूँजीवाद एवं औद्योगिकरण की समस्त समस्याओं का हल इसमें निहित है।

साम्यवादी सोवियत संघ की इस उज्जवल और चमत्कारपूर्ण छवि को पिछली सदी ने धूमिल होते एवं अन्त में धूलि–धूसरित होते देखा। विश्व की यह समाजवादी क्रान्ति प्रथम असफल क्रान्ति नहीं थी। इससे पूर्व 1871 में पेरिस कम्यून भी असफल रहा जिसे कार्ल मार्क्स ने दुनिया का पहला महान जन

---

96. Ernest Gellnur, The Soviet Empire, Its nations Speak Out, Intro.

आन्दोलन कहा। इसे समाजवाद का पहला असफल प्रयोग माना जाता है। परन्तु यह प्रयोग एक अत्यन्त अल्पकालीन प्रयोग था जबकि सोवियत संघ का प्रयोग एक दीर्घकालीन और प्रारम्भिक रूप में अत्यन्त सफल प्रयोग था। जिसने मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक दृढ़ता को भी सिद्ध किया।

सोवियत भूमि साम्यवाद के अनुकूल नहीं
(Soviet Land not Suitable for Communism)

कुछ विचारकों के अनुसार सोवियत भूमि साम्यवाद के अनुकूल नहीं थी। जब रूस में साम्यवादी क्रान्ति सफल हुयी यह एक कम विकसित पूँजीवादी देश था। अर्थव्यवस्था सामन्ती या अर्द्ध सामन्ती थी जो अत्यन्त पिछड़ी हुयी थी। सोवियत संघ के सामने चुनौती दोहरी थी – पिछड़ेपन को समाप्त करके उत्पादन के स्तर में वृद्धि करना एवं जार वंश के कठोर दमनकारी निरंकुश तंत्र को भी समाप्त करना। प्रारम्भ में समाजवाद की सफलता की संभावनाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ। परन्तु "जो भी खामियाँ थी जन्म के साथ मिली निशानियाँ थी और जिन परिस्थितियों में पहले समाजवादी राज्य का जन्म हुआ था, उसकी विरासत का हिस्सा था।"[97]

"शुरू के दशकों में, सोवियत संघ को जबर्दस्त कठिनाइयों का मुकाबला करते हुये जो ऐतिहासिक उपलब्धियाँ हासिल हुयी थी उन्होंने, इस सच्चाई को नजरों से छुपा ही दिया था कि समाजवाद में संक्रमण एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया है।"[98] समाजवाद की सफलता के लिये प्रजातंत्र की भाँति दीर्घकालीन अनुभव की आवश्यकता होती जिसका रूस में सर्वथा अभाव था।

इस विषय में लेनिन ने प्रारम्भिक चेतावनी यह दी थी कि हमने अभी पूँजीवाद को समाप्त करने एवं समाजवाद की ओर आगे बढ़ने के लिये केवल प्रारम्भिक चरण को पूरा किया है। "हमें नहीं मालूम और हम नहीं जान सकते कि समाजवाद की ओर संक्रमण के कितने चरण होंगे।[99] लेनिन ने आगे यह भी स्पष्ट किया "............ देश जितना पिछड़ा होगा उस देश के लिये पुराने पूँजीवादी सम्बन्धों से समाजवादी सम्बन्धों में परिवर्तित होना उतना ही कठिन होगा।"[100]

तात्पर्य यह कि समाजवाद के संक्रमण के लिये रूस की परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थी और उन्हें धीरे–धीरे समाजवाद के अनुकूल परिवर्तित किया जाना आवश्यक था। किसी भी देश में वही व्यवस्था सफल हो सकती है जो उस देश के वातावरण के अनुकूल हो। इस विषय में नोबल पुरस्कार विजेता रूसी

---

97. प्रकाश करात, साम्राज्यवाद की सच्चाई और समाजवाद का भविष्य, लोकलहर, 2 नवम्बर, 1997

98. वही

99. Lenin, Collected Works, Volume 27, P. 31

100. वही, खंड 27, पृ. 89

साहित्यकार अलेक्जाण्डर सोल्झेनित्सिन का यहीं कहना था कि हमारे जीवन का कोई भी पक्ष क्यों न हो, वह हमारी परम्पराओं, हमारी समझ, हमारे रीति रिवाजों और हमारे माहौल से ही उभरना चाहिये।(101) यह बात समाजवाद एवं लोकतंत्र दोनों पर समान रूप से लागू होती है।

सोवियत संघ की प्राचीन परम्परा तानाशाही की ही थी न कि समाजवाद की या लोकतंत्र की। "समाजवाद लोकतंत्र की उच्चतम अवस्था है।' साम्यवाद लोकतंत्र का निषेध कभी नहीं है। सोवियत संघ में समाजवाद की स्थापना और विकास सामन्तवादी व्यवस्थाओं में हुये। अतः प्रारम्भ से ही वहाँ प्रजातांत्रिक स्वतंत्रता एवं अधिकारों के प्रति शंका की भावना रही। वहाँ एकता एवं अनुशासन के नाम पर नियंत्रण रहा और समानता भी नाम मात्र की रही। इसके अलावा रूस में श्रमिक वर्ग के शासन के नाम पर साम्यवादी दल की तानाशाही स्थापित हुयी। साम्यवादी दल पर दल के पोलिट ब्यूरो का एकाधिकार रहा और पोलिट ब्यूरो पर दल के महासचिव का। स्टालिन ने सामूहिक नेतृत्व को पूरी तरह नकारने की परम्परा डाली साथ ही नेतृत्व पूजा की परम्परा भी चल पड़ी। महत्वाकांक्षी नेतृत्व की तानाशाही ने साम्यवाद के मूल रूप को ही नष्ट कर दिया।

वास्तव में स्वतंत्रता और समानता ऐसे मूल्य हैं जिनकी स्थापना के लिये निरन्तर जन आन्दोलन आवश्यक है। जनता निस्तेज हुयी कि ये मूल्य भी समाप्त हुये। केवल स्वतंत्रता और समानता को संविधान के द्वारा घोषित कर देना या इन्हें संविधान में रख देना ही पर्याप्त नहीं होता। परन्तु रूस की तानाशाही परम्परा में उन्हें व्यवहार में जनता को उपलब्ध कराने के प्रति सत्तासीन वर्ग आशंकित रहा और सामान्य जनता निष्क्रिय रही।

सोवियत संघ में सैकड़ों वर्षों से दमित जनसमूह के मध्य वहाँ का छोटा सत्तासीन वर्ग अपने लिये एक स्वर्ग बनाने में लगा रहा। सत्तासीन इस वर्ग के लिये विलासिता निषिद्ध नहीं थी। वाल्टर बेंजामिन ने सत्ता और दल के इस सम्बन्ध को गलत ही वरन् खतरनाक भी माना। उन्होंने कहा था कि "यदि रूस में भी योरोप की तरह सत्ता और धन का सम्बन्ध कायम हुआ तो वहाँ देश या दल का नहीं तो समाजवाद का अवश्य ही अन्त हो जायेगा।"(102) उनका यह कथन सत्य सिद्ध हुआ।

साम्यवाद एवं लोकतंत्र (Communism and Decmocracy)

मार्क्स ने सर्वहारा क्रान्ति के बाद स्थापित सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र के लोकतंत्रीय होने दावा किया था क्योंकि उस समाज में केवल श्रमिक वर्ग होगा और सत्ता उसी वर्ग के हाथ में होगी। मार्क्स ने समानता के साथ स्वतंत्रता को भी समर्थन दिया। "जहाँ श्रमिकों के पास स्वतंत्रता नहीं है वहाँ प्रजातंत्र

---

101. जनसत्ता, 30 मई, 1994, पृ. 10

102. संकट तो है लेकिन, संकट के बावजूद; मैनेजर पाण्डेय, पृ.–12

भी नहीं है।"[103]

लेनिन पर कुछ विचारक यह आरोप लगाते हैं कि उसने सिद्धान्त में लोकतंत्र को समर्थन दिया पर व्यवहार में नहीं। क्रान्ति के बाद अल्पसंख्यक मेनशेविकों को साम्यवादी दल ने शामिल नहीं किया। कुछ विचारक लेनिन द्वारा साम्यवादी क्रान्ति के माध्यम से जार के अत्याचारी शासन को समाप्त किया जाना भी झूठ मानते हैं। जैसे कि तत्कालीन प्रधानमंत्री केरेन्सकी का कहना है कि यदि कम्युनिस्ट ने कुछ नष्ट किया है तो वह है रूस का नवजात लोकतंत्र। क्योंकि जारशाही तो 15 मार्च 1917 को ही समाप्त हो चुकी थी। जब जार निकोलस द्वितीय ने राजसिंहासन का परित्याग किया था। जारशाही के विरुद्ध इस संघर्ष में किसी भी बोल्शेविक ने भाग नहीं लिया था। लेनिन उस समय रूस में भी नहीं था। रूसी कम्युनिस्टों ने तो अक्टूबर 1917 की क्रान्ति निर्वाचित केरिन्सकी सरकार के विरुद्ध की थी। यद्यपि लेनिन ने पूँजीपतिओं के विरूद्ध संघर्ष में श्रमिक वर्ग के लिये लोकतंत्र की मान्यता दी पर उसने लोकतंत्र को एक लक्ष्य के रूप में नहीं स्वीकारा। उसने लोकतंत्र को केवल एक पड़ाव माना; सामन्तवाद से पूँजीवाद की ओर, पुनः पूँजीवाद से साम्यवाद की ओर जाने के लिये एक पड़ाव मात्र।

लेनिन के इस विचार के आधार पर गोर्वाचेव ने जो सुधार प्रारम्भ किये वे अधिक लोकतंत्रीय थे, लेकिन लेनिन द्वारा खींची गयी एक सीमा रेखा से बाहर थे। जबकि गोर्वाचेव ने 'पुनर्निमाण' और 'खुलेपन' के बारे में बोलते हुये यही कहा कि लेनिन के समाजवाद के आदर्श हमारे लिये प्रेरणा स्रोत है, राजनैतिक सूझबूझ के स्रोत है। उन्होंने लेनिन का उल्लेख करते हुये यह भी कहा कि लेनिन के अनुसार समाजवाद की स्थापना अनेक प्रयासों का परिणाम होगा और प्रत्येक प्रयास अपने आप में विशिष्ट होगा। तात्पर्य यह कि गोर्वाचेव के प्रयास भी अपने आप में विशिष्ट थे। गोर्वाचेव पर कुछ विचारक इसलिये यह आरोप लगाते हैं कि उन्होंने लेनिन के नाम पर लेनिनवाद का विरोध किया। उन्होंने सोवियत जनता को अधिक लोकतंत्र देना चाहा जिसने साम्यवादी समाज की सीमाओं का अतिक्रमण करके सोवियत संघ को पश्चिमी उदारवाद की ओर ले गया।

एक ओर गोर्वाचेव मार्क्सवाद पर विश्वास खोते गये और दूसरी ओर लेनिन की दुहाई देते रहे। वे अपनी बातों को कहते रहे, दोहराते रहे पर "उन्होंने कभी भी सोवियत जनता से सीधे संवाद कायम करने का कोई प्रयास नहीं किया। वे सोवियत संघ को बचाना चाहते थे तो उन्हीं शक्तियों के माध्यम से जिनका इससे विश्वास उठ चुका था। एक मौके पर भी उन्होंने सोवियत राष्ट्र को संबोधित नहीं किया।"[104]

---

103. Gramsci, Quoted by Subrata Mukherjee in Gramsci and Marxism, Essays in Marxist Theory and Practice, P. 158

104. सम्पादकीय, नव भारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1991

गोर्वाचेव समाजवाद के साथ लोकतंत्र को जोड़ना चाहते थे पर उन्होंने लोकतंत्रीय साधनों पर भी भरोसा नहीं किया।

वर्तमान हालत में विचारक अब इस बात पर बल देने लगे है कि समाजवाद की सफलता के लिये उसे लोकतंत्र के साथ जोड़ना आवश्यक है। स्वतंत्रता के लिये किसी भी संघर्ष में से न तो समाजवाद को पृथक किया जा सकता है और न ही लोकतंत्र को "लोकतंत्र ही समाजवाद के संकट का एकमात्र समाधान है। सच्चा लोकतंत्र कुछ नहीं वरन् समाजवाद है जैसे सच्चा समाजवाद लोकतंत्र का दूसरा नाम है।"(105)

अर्थात् जहाँ जनता की स्वतंत्रताओं को सुरक्षित रखना है वहाँ जनतंत्र को समाजवाद से पृथक नहीं करना चाहिये। क्योंकि समाजवादी व्यवस्था में यदि जनतंत्र का अभाव होगा तो समाजवाद का सच्चा रूप सुरक्षित नहीं रह पायेगा। "समाजवादी तजुर्बे में जनतंत्र का अभाव, जनतंत्र की संभावनाओं का विस्तार करने व उनका विकास करने में विफलता का नतीजा यह होगा कि समाजवाद ही विकृत व विरूपित हो जायेगा।"(106) अतः यदि आज समाजवाद को विकृत होने से बचाना है तो समाजवाद का लोकतंत्रीकरनण जरूरी है। डॉ. राम मनोहर लोहिया का कहना था कि "समाजवाद और मानवता के भविष्य के सम्बन्ध में नयी मूलभूत सोच उत्पन्न होगी और लोकतंत्र तथा मानव मूल्यों को समाजवाद का अनिवार्य तत्व बनाना होगा।"(107)

साम्यवाद एवं अधिनायकतंत्र (Communism & Dectatorship)

यह प्रश्न भी उठाया जाता है कि क्या साम्यवाद को अधिनायकतंत्र वाद के साथ जोड़ना जरूरी है। सोवियत संघ में साम्यवाद का प्रयोग तो यही सिद्ध करता है। वहाँ साम्यवाद जब तक अधिनायकतंत्र के साये में पोषित होता रहा, सुरक्षित बना रहा। अधिनायकतंत्र के ढ़ीला पड़ते ही वहाँ साम्यवाद पर संकट आ गया। सोवियत संघ में लेनिनवाद द्वारा दलीय निरकुंशतंत्र का समर्थन किया गया। इसी निरकुंश तंत्र का व्यक्तिगत एवं अतिवादी रूप स्टालिनवाद के अन्तर्गत दृष्टिगत हुआ। मार्क्स ने स्वयं भी सर्वहारा के शासन में निरंकुशता को जरूरी माना। "खालिस मार्क्सवादी तो उन सोवियत अधिनायकों की सब कार्यवाहियों का समर्थन करते रहे हैं। जिनके कारण अब सोवियत संघ बिखर गया है।"(108) दशकों तक दुनिया भर के साम्यवादी सोवियत व्यवस्था को ही आदर्श व्यवस्था के रूप में घोषित करते रहे हैं।"(109)

---

105. Vipin Pal Das, On A World Affairs.
106. प्रकाश करात, साम्राज्यवाद की सच्चाई और समाजवाद का भविष्य, लोकलहर, 2 नवम्बर, 1997
107. डा. राम मनोहर लोहिया, रूसी मुकद्दमे
108. जवाहर लाल कौल, एक खूबसूरत सपने का टूटना, जनसत्ता, 9 सितम्बर, 1991
109. वही

सोवियत संघ में साम्यवाद के प्रयोग को देखकर यह लगता है कि साम्यवाद निरकुंशतंत्रवाद का ही पर्याय है। जिसमें मानवीयता का कोई स्थान नहीं है। साम्यवाद के इस अमानवीय मुखौटे को आज बदलना होगा। आजकल एक नया प्रवाद प्रचलन में है 'मानवीय चेहरा वाला समाजवाद' बी. पी. दास के अनुसार, "यदि स्टालिनवाद को पूर्णतया समाप्त करना है तो इसके स्थान पर मानवीय चेहरे वाले समाजवाद को स्थापित करना होगा।"(110)

समाजवादी व्यवस्था में नागरिक स्वतंत्रता एवं अधिकारों की स्थापना कर, लोकतंत्र के साथ समाजवाद को जोड़कर ही 'मानवीय चेहरे वाले समाजवाद' को पाया जा सकता है। पूँजीवाद भूतकाल के समस्त संकटों से उबरता रहा केवल इसीलिये कि यह लोकतंत्र के साथ जुड़ा रहा।

डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त के आधार पर यह भी तर्क रखा जाता है कि 'बलशाली को ही जीवित रहने का अधिकार है' यह तो एक प्राकृतिक नियम है। नदी में बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खाकर ही जीवित रहती है। अतः मानव समाज में भी भैंस उसी की होगी जिसके पास लाठी है। तो फिर एक छोटा बलशाली वर्ग अगर विशाल निर्बल जनसमूह पर तानाशाही चलाता है तो यह तो प्राकृतिक न्याय है। पर जोनियम प्रकृति के विवेकहीन पशु और जीव पर लागू होता है वह क्या विवेकशील मानव पर उसी रूप लागू होना चाहिये। एक बुद्धिमान, चिन्तनशील और विवेकी मानव स्वतंत्रता और समानता का पक्षपाती होगा न कि मात्स्य न्याय का। अतः इस तर्क के आधार पर निरकुंश तंत्र को उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

एक तर्क और यह दिया जाता है कि आज की विकसित सभ्यता में भी एक सामान्य व्यक्ति आहार, निद्रा, भय और मैथुन से ही परिचालित होता जो पाशविक प्रवृत्तियाँ हैं। यदि एक भूखे आदमी से आजादी और रोटी दोनों में से किसी एक को चुनने के लिये कहा जाये तो वह रोटी ही चुनेगा। स्वतंत्रता और समानता के मानवीय मूल्यों के प्रति चेतनता तो उसमें बाद में आती हैं, सामान्य व्यक्ति की पहली आवश्यकता तो रोटी ही है। तभी सोवियत संघ में सात दशकों तक साम्यवादी अधिनायकतंत्र सफलतापूर्वक चलता रहा। वहाँ के प्रगतिशील बुद्धिजीवी देश निकाले की सजा पाते रहे।

निर्मल वर्मा ने ठीक ही कहा है, "स्टालिन ने एक समय लेखकों–कवियों को 'आत्मा के इंजीनियर' की उपाधि से विभूषित किया था। कैसे थे ये इंजीनियर और किस तपे हुये इस्पात में उन्होंने अपनी आत्मा को ढाला, आज यदि इसका थोड़ा भी सिंहावलोकन करे तो हमें संभवतः बीसवीं शती की सबसे अधिक विस्मयकारी, विडम्बनापूर्ण सच्चाई का सामना करना पड़ेगा कि जिस शताब्दी में तर्क, बुद्धि और विज्ञान का चरमोत्कर्ष हुआ था, ठीक उसी समय आत्मविवेक और नैतिक चेतना का किस हद तक ह्रास हो

---

110. Vipin Pal Das, The World Affairs.

सकता है।"[111]

सोवियत संघ में पहली गलती लेनिन ने की। उसने मार्क्स के सिद्धान्तों में संशोधन किये, दल में केन्द्रवाद चलाया, सर्वहारा तानाशाही को दल की तानाशाही में बदल दिया। भूल स्टालिन ने की, व्यक्तिगत तानाशाही, दमन और आतंकवाद की नीति चलाकर, भूल गोर्वाचेव ने की साम्यवादी दल को ही अवैध घोषित करके शायद वह सोवियत संघ में तानाशाही का जड़ दल को ही मान बैठे थे। भूलों के सिलसिले ने साम्यवाद के मौलिक स्वरूप को ही नष्ट नही किया वरन् उसे समाप्ति पर ला दिया।

"एक तरह से साम्यवाद के सोवियत संस्करण ने समाजवाद की उस लम्बी सम्पदा को तिरोहित कर दिया जो उसे रूसो, तॉलस्तॉय, प्रिंस क्रोपेटकिन और गान्धी जैसी मनीषियों से मिली थी।"[112] वहाँ साम्यवाद के साये में निरंकुश तन्त्र की जड़े मजबूत होती रही और पूरा विश्व साम्यवाद की छवि निरंकुश तंत्र के साथ जोड़कर ही देखती रही।

इस प्रकार सोवियत संघ में साम्यवाद का पतन सत्तर साल के लम्बे निरंकुश तंत्र के इतिहास का परिणाम है। इस दौरान मार्क्सवाद को विभिन्न विचारधारात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ा साथ ही नये–नये प्रयोगों से जूझना पड़ा। साम्यवाद को निरंकुश तंत्र के साथ जोड़ा जाना ही इसकी प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है।

समाजवाद का नया मॉडल (New Model of Socialism)

"मानव जीवन के लिये निकृष्ट कोटि का समाजवाद भी उत्कृष्ट कोटि के पूँजीवाद से अधिक श्रेयस्कर है।" जॉर्ज लूकाच के इस विचार के बावजूद बीसवीं सदी के प्रारम्भ में पूँजीवाद को एक कल्याणकारी व्यवस्था के रूप में देखने वालों की संख्या पर्याप्त थी। विश्व के एक बड़े भाग में पूँजीवाद दृढ़ हो रहा था। एक नया सिद्धान्त सामने आया था कि पूँजीवाद और समाजवाद एक बिन्दु पर मिल सकते हैं। किन्तु सदी के उत्तरार्द्ध में पूँजीवाद की मानवीयता की छवि धूमिल पड़ने लगी। फिर भी पश्चिमी पूँजीवादी देशों की उन्नति और उनकी भौतिक समृद्धि विकासशील देशों के लिये चित्ताकर्षक थी। ये देश उस भौतिक समृद्धि से दूर तक प्रभावित थे। इन देशों के मध्यम वर्ग का विशाल समर्थन पूँजीवाद को मिला और मध्यम वर्ग को उपभोग की सम्पूर्ण आधुनिकतायें प्राप्त हुयी।

वास्तव में आज पूँजीवाद केवल एक अर्थव्यवस्था या उत्पादन वितरण की प्रणाली नहीं रही है। वरन् यह एक सांस्कृतिक आदर्श बन गया है। पर पूँजीवादी देशों के साथ ही विकासशील देशों में जन असन्तोष विविध आन्दोलनों के रूप में उभर रहा है। नारीवादी आन्दोलन, मानवाधिकारों का आन्दोलन,

---

111. निर्मल वर्मा, समाजवाद का स्वप्न और दुःस्वप्न, नव भारत टाइम्स, 4 जनवरी, 1992

112. वही

पर्यावरण प्रदूषण मुक्ति अभियान आदि तेज होते जा रहे हैं। उपभोक्तावाद की विकृतियों से जनता का परिचय हो रहा है। इन स्थितियों में समाजवाद की ओर आशापूर्ण दृष्टि डाली जा रही है।

साम्यवादी सत्ताओं की विफलता के बावजूद आज भी तीसरी दुनिया के देशों का समाजवाद की ओर झुकाव है। पर यदि उनमें पूँजीवाद के प्रति असंतोष है तो साम्यवाद की निरंकुशता के प्रति भय भी है। अतः इन देशों में जनता जबकि एक अधिक अच्छे जीवन स्तर की प्राप्ति के लिये प्रयासरत है। उन्हें समाजवाद के रूसी तानाशाही मॉडेल से हटकर समाजवाद के नवीनीकरण का प्रयास करना चाहिये। सोवियत साम्यवादी मॉडेल में साम्यवादी क्रान्ति की सफलता के बाद वहाँ जो तीव्रगति से चहुँमुखी विकास हुआ, श्रमजीवी जनता ने एकजुटता दिखायी और देश के लिये युद्ध स्तर पर परिश्रम की सम्पूर्ण शक्ति लगा दी इससे भी समाजवाद के प्रति झुकाव रखने वाले देशों को प्रेरणा लेनी चाहिये।

आज आवश्यकता है सोवियत संघ के साम्यवादी प्रयोग से सीख लेने की, उनके विघटन के कारणों की गहराई में न जाकर समाजवाद की राह पर आगे बढ़ने के लिये उचित एवं तर्क संगत आधार तैयार करने की। "मार्क्सवादी सिद्धान्त की यह कमजोरी रही है कि मौजूदा समाजवाद तथा एक नये समाज के विकास का अध्ययन करने में सृजनात्मक चिन्तन कहीं कम विकसित बना रहा है।"[113] अतः मार्क्सवादी सिद्धान्त एवं व्यवहार को भी सुदृढ़ बनाने के लिये कई चरणों में से होकर समाजवाद के एक नये स्वरूप के निर्माण पर विचार करना होगा। श्री प्रकाश कारात ने इसके लिये कुछ निश्चित बिन्दु बताये हैं :-

प्रथम : समाजवादी जनतंत्र जिसमें राजनीतिक प्रक्रिया एंव आर्थिक प्रबन्धन में जनता की भागीदारी हो।

द्वितीय : शासन एवं दल के मध्य एक औचित्यता का सम्बन्ध स्थापित हो।

तृतीय : अर्थव्यवस्था के प्रबन्धन में लचीलापन हो तथा सम्पत्ति के स्वामित्व अनेक रूपों में लागू हो।

जैसा कि लेनिन का कथन था कम विकसित पूँजीवादी देशों में समाजवाद की ओर संक्रमण अधिक कठिन होगा। अतः इन देशों में समाजवाद की ओर की प्रक्रिया जटिल और लम्बी होगी। परन्तु समाजवाद के नवीनीकरण के प्रयास में या नये मॉडल की खोज में किसी एक निश्चित मॉडल पर दृढ़ नहीं रहा जा सकता। सिद्धान्तों में इस प्रकार का लचीलापन हो कि समाजवाद की स्थापना के सम्पूर्ण दौर में एक विविधतापूर्ण प्रक्रिया रहेगी और किसी देश की परम्परा, परिस्थिति और आवोहवा के अनुसार समाजवाद के मॉडल में भी विविधता होगी।

यह मॉडल आवश्यक रूप से समाजवादी जनतंत्र का ही होगा। इस समाजवादी व्यवस्था में

---

113. प्रकाश कारात, साम्राज्यवाद की सच्चाई समाजवाद का भविष्य, लोकलहर, 2 नवम्बर, 1997

विकास की ओर बढ़ने में जनता की सक्रिय भूमिका होनी चाहिये। साथ ही जरूरी है कि जन सामान्य में राजनैतिक चेतना जागृत हो तभी जनता अपनी भूमिका के प्रति जागृत होगी जो बदली हुयी परिस्थिति के साथ परिवर्तनीय होगी। यह उच्च राजनैतिक जागृति के बिना संभव नहीं है। इससे हर क्षेत्र में जनता की राज्य पर निर्भर रहने की अभ्यस्तता भी कम होगी। "एक वैकल्पिक मॉडल के कठिन काम को अंजाम देने के लिये जरूरी होगा कि राजनीतिक और आर्थिक विकास के तमाम चरणों में सक्रिय हिस्सेदारी के जरिये, राजनीतिक चेतना को बराबर ऊपर उठाय जाये और उसका निरन्तर नवीनीकरण किया जाये।"(114)

इस नवीन आदर्श राज्य में समाजवाद को जनतंत्र से जोड़ने पर बल दिया जाना स्वाभाविक है। इसके बिना समाजवाद का स्वरूप विकृत होने की संभावना होगी जैसा सोवियत संघ में हुआ। दल एवं सत्ता के मध्य सम्पर्क संतुलित हो; दल या दल के कुछ लोगों में सत्ता केन्द्रित न हो, शासन में बहुलवाद को महत्व दिया जाये। तभी समाजवाद की प्रासंगिकता बनी रह सकती है।

साम्यवाद का भविष्य

(Future of Communism)

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में तेजी से घटित घटनाओं के परिणामस्वरूप सोवियत संघ अस्तित्व विहीन हो गया। अमेरिका के राष्ट्रपति बुश ने गर्वोक्ति की कि समाजवाद का दौर समाप्त हो गया है। लोकतंत्र पर आस्था रखने वाले लोगों ने राहत की साँस ली। केवल रूस ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की राजनीति ने नयी करवटें ली। साम्यवाद और समाजवाद के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लगाया जाने लगा और इतिहास के अन्त की धारणा का प्रचार किया गया पर समाजवाद के आदर्श आज भी मानव को झकझोर रहे हैं क्योंकि समाजवाद के भविष्य की कोख में अभी बहुत कुछ बाकी है। इस आशा से रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने 1918 में कहा था –

"यह नामुमकिन नहीं है कि एक राष्ट्र के रूप में वह (रूस) विफल हो जाये। लेकिन अगर सच्चे आदर्शों का झण्डा अपने हाथों में लेकर यह विफल भी हो जाता है, तब उसकी विफलता भी भोर के तारे की तरह छिप जायेगी, एक नये युग का सूर्योदय लाने के लिये।"

व्यवस्था का विघटन (Failure of A System)

सोवियत संघ में साम्यवाद के पतन के बारे में मार्क्सवाद पर आस्था रखने वालों का आज भी यही कहना है कि यह विचारधारा नहीं वरन् एक व्यवस्था के प्रयोग की असफलता है। "मार्क्सवाद की तारीख सोवियत यूनियन और दूसरी कम्युनिस्ट पार्टियों और सरकारों की तारीख से बहुत पुरानी और बहुत

---

114. वही

बड़ी तारीख है। यह तारीख इन सरकारों के टूटने के बाद भी जारी है।" मार्क्सवाद का यह महत्व तब तक खत्म नहीं हो सकता जब तक कि साम्राज्यवाद खत्म नहीं होता।[115] "यह विघटन एक पूरी विचारधारा (मार्क्सवाद) का विघटन नहीं, बल्कि उसके एक ढाँचे का विघटन है। समता की जो विचारधारा मार्क्सवाद के मूल में है वह विघटित नहीं होगी।"[116]

मार्क्सवाद एक कोरा फलसफा नहीं है वरन् एक विज्ञान है। मार्क्सवादी विचारधारा आज भी अजेय है, प्रासंगिक है कारगर है। यह विघटन या "उनका विकल्प समाजवाद को अस्वीकृति नहीं वरन् मार्क्सवाद के वर्तमान विकृत स्वरूप को अस्वीकृति है।"[117]

प्रमुख भारतीय मार्क्सवादी विचारक ज्योति बसु का कहना है कि बरसों की गलतियों और आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में जरूरी सुधारकारी कदम उठाने में विफलता का परिणाम था सोवियत ढाँचे का विघटन। "मार्क्सवाद एक विज्ञान है, कोई जड़मतवाद नहीं, यह रचनात्मक है और कार्रवाई के लिये मार्ग–दर्शक।"[118]

अन्य मार्क्सवादी विचारक के शब्दों में "मार्क्सवादी विचारधारा ने विश्व घटना विकास को दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और आज भी कर रही है।"[119] अतः "मार्क्सवादी यूटोपिया की अपील, रूस में उसकी स्पष्ट और अनिवार्य विफलता के बाद भी, दुनिया के अनेक भागों में बनी रहेगी।"[120]

कुछ विचारकों का यहाँ तक कहना है कि रूस में वर्तमान आर्थिक एवं राजनैतिक अव्यवस्था उसको पुनः साम्यवाद की ओर ले जायेगी। "आधुनिक पूँजीवाद की शक्ति, क्रान्तिकारी ताकतों की आवश्यम्भावी प्रगति को परिपक्व होने से रोक नहीं सकती। इसमें देरी हो सकती है .... लेकिन क्रान्ति का आना तय है।"[121]

यह केवल व्यवस्था की असफलता है क्योंकि "साम्यवाद आज भी जीवित है और सक्रिय है।"[122] रूस में उत्थान एवं पतन के बाद पुनः उत्थान की सम्पूर्ण संभावना है।

---

115. एजाज अहमद, आज के जमाने में मार्क्सवाद का महत्व, पृ. 11–13
116. मृणाल पाण्डे, सदी के अन्त में सपने का टूटना, जनसत्ता, 11 सितम्बर, 1991
117. Subrata Mukherjee, Marxism : A Reappraisal, Essays in Marxist Theory and Practice, P. 186
118. ज्योति बसु, मार्क्सवाद पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, लोकलहर, 9 मई, 1993, पृ. 1
119. हरकिशन सिंह सुरजीत, घटी नहीं है मार्क्सवादी की प्रासंगिकता, लोकलहर, 2 मई, 1993, पृ. 1
120. सच्चिदानन्द सिंह, यूटोपिया, प्रति यूटोपिया और शेष प्रश्न, जनसत्ता, दिसम्बर 1991
121. पी. रामचन्द्रन, महान अक्टूबर क्रान्ति के बुनियादी कारक, लोकलहर, 2 नवम्बर, 1997, पृ. 7
122. V. P. Dutt, Return of Socialsim in East Europe, Indian Express, 30 Dec., 1995

विचारधारा की असफलता (Failure of An Ideology)

पश्चिमी विचारकों द्वारा व्यक्त मत बिल्कुल इसके विपरीत है। उनका कथन है कि मार्क्सवाद पूर्णतया अवैज्ञानिक और अविकसित विचारधारा सिद्ध हो चुकी है। स्वतंत्र बाजार और प्रजातंत्र की अवधारणाओं के टक्कर से यह अन्तिम रूप से विलुप्त हो चुकी है।

जैसा कि प्रोफेसर रणधीर सिंह ने लिखा है कि "यह केवल एक व्यवस्था का विघटन नहीं है; बल्कि वह पूँजीवाद से बेहतर समाज बनाने के लिये एक सामाजिक प्रयोग, उस प्रयोग के पीछे क्रियाशील व्यवहार और उस व्यवहार के प्रेरक विचारों की पराजय है।"(123) इसलिये यह विघटन समाजवाद और मार्क्सवाद की असफलता है। यह केवल एक असफल प्रयोग या ढाँचे का टूटना नहीं है वरन् एक सुखद समाज के निर्माण के एक खूबसूरत सपने का भी टूटना है।

"कार्लमार्क्स ने स्वयं एक बार कहा था कि वह मार्क्सवादी नहीं है। इसका कुछ अभिप्राय तो यह था कि वह अपने सामाजिक दर्शन को सैद्धान्तिक दृष्टि से अपूर्ण समझता था।"(124) वास्तव में किसी भी मानव कृति में अपूर्णता का होना स्वाभाविक है। विशेषकर तब जबकि कोई सिद्धान्त या विचारधारा हो और वह भी मानव समाज के विकास से सम्बन्धित।

मार्क्सवादी भले ही इस बात का दावा करें कि मार्क्सवाद में कोई कमी नहीं है। पर सोवियत संघ में साम्यवाद की यात्रा में उन्हें जिन विभिन्न चुनौतियों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उन्हें देखते हुये यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि सिद्धान्तों में ही नहीं सिद्धान्तों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया में भी अनेक त्रुटियाँ रही। प्रक्रिया की अस्पष्टता और दुरूहता भी विचारगत त्रुटियों की परिणति है।

समाजवादी समीक्षक रेतामार का कहना है कि "जहाँ तक समाजवादी व्यवस्थाओं के विघटन का सवाल है .... निश्चय ही यह समाजवाद की अब तक की सबसे बड़ी पराजय है।"(125) उनका यह भी कहना है कि पूँजीवाद की स्थापना और विकास में भी लम्बा समय लगा है। 'रूस में समाजवादी प्रयोग लम्बे समय से अनेक तरह की कठिनाइयों का सामना कर रहा था।' किसी देश के अतीत या भविष्य पर कोई सवाल न उठाकर वह वर्तमान के बारे में सवाल उठाते है कि "क्या विभिन्न समाजवादी देशों की व्यवस्थाओं ने अपनी जनता को सचमुच आत्मनिर्णय का अधिकार दिया था ? इन देशों में घृणा और बर्बरता फैल रही है क्या उसे हम स्वीकार कर लें ? आत्मनिर्णय का अधिकार न देना भी समाजवाद का पराभव ही तो है।

---

123. संकट के बावजूद, मैनेजर पाण्डेय, पृ. 12

124. सेबाइन, राजनीति दर्शन का इतिहास, पृ.–748

125. रेतामार, ऐसे ही समय में हमें जीना है, संकट के बावजूद, मैनेजर पाण्डेय, पृ.–95

आज मार्क्सवाद के सामने सबसे बड़ा संकट है, केवल रूस या योरोप के देशों में समाजवाद के विघटन का संकट नहीं वरन् आज मार्क्सवाद के सामने सबसे बडी चुनौती है जनता को स्वतंत्रता की गैरण्टी देने की; उससे भी अधिक स्वतंत्रता की जो उन्हें सामन्तवादी समाज में प्राप्त थी या पूँजीवादी समाज में प्राप्त है। जनता की ऊँची आकांक्षाओं एवं गहराते संकट के मध्य एक सन्तुलित रास्ता बनाना आसान नहीं है।

व्यवस्था और विचारधारा की विफलता – दोनों एक दूसरे का कारक

(Failure of both A System and Ideology)

यह निष्कर्ष निकालना उचित प्रतीत होता है कि साम्यवादी व्यवस्था की असफलता और विचारधारा की विफलता दोनों एक दूसरे का कारक है। मार्क्सवाद के अन्तर्गत मानवीय सभ्यता के ऐतिहासिक विकास के जिस मार्ग को निर्धारित किया गया था उनका सीधा सादा अनुगमन बीसवीं या इक्कीसवीं शताब्दी में संभव नहीं प्रतीत होता है। पूँजीवादी शक्ति के विकास एवं वैज्ञानिक व तकनीकी आविष्कारों के कारण समय एवं परिस्थितियों में बहुत अन्तर आ चुका है। सामान्यतया किसी राजनैतिक सिद्धान्त को तब तक महत्वपूर्ण नहीं माना जाता जब तक उस पर एक मजबूत राज्य व्यवस्था आधारित न हो और यदि वह राज्य व्यवस्था विघटित हो जाये तो इसे सिद्धान्त की असफलता ही मानी जाती है। "इस तरह देखा जाये तो मार्क्सवाद की अलग कोई तारीख नहीं रह जाती, बल्कि सोवियत यूनियन की तारीख के अन्दर घुल जाती है।" परन्तु सोवियत संघ के अस्तित्व को ही मार्क्सवाद के महत्व की कसौटी मान लेना अनुचित है।

उन्नीसवीं शती के सामाजिक विकास के विश्लेषण द्वारा जो भविष्यवाणी की गयी थी या जो संश्लेषण (Synthesis) निकाला गया था बीसवीं एवं इक्कीसवीं शती का विश्व उससे बिल्कुल पृथक रूप से सामने आया है। आज सुधार के मार्ग में होने वाले परिवर्तनों को सीमित नहीं किया जा सकता है। आज व्यक्ति के रूप में मानव का विकास ज्यादा महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक विकास के दौर से गुजरते हुये प्राचीन समाजवाद ने आज एक संकटपूर्ण अवस्था में प्रवेश किया है। जिसमें "समाजवाद का मानवीयकरण एवं प्रजातंत्रीकरण एक पूर्ण अनिवार्यता बन गयी है।"[126]

रेतामार का कहना है "अगर मार्क्सवाद वही है जो केवल मार्क्स की रचनाओं में मौजूद है। तो केवल मार्क्स ही मार्क्सवादी होंगे, लेकिन उन्होंने तो कहा था वे मार्क्सवादी नहीं है।"[127] सभी मानवतावादी

---

126. Pantin and E. Plimark, The Ideas of Karl Marx at a Turning Point, Soviet Studies in Philosophy, Summer, 1991, P. 64

127. रेतामार, ऐसे ही समय में हमें जीना है, संकट के बावजूद," मैनेजर पाण्डेय, पृ. 97

एवं उदारवादी विचारकों का यही मत है कि मार्क्सवाद या साम्यवाद को एक निश्चित अर्थ के सीमित दायरे में बाँध लेना आज विवेक सम्मत नहीं होगा। अन्यथा मार्क्सवाद स्थायी रूप से संकट में पड़ा हुआ माना जायेगा। "मार्क्स और एंगिल्स ने ज्ञान के क्षेत्र में जो बुनियादी योगदान किया है, उसे मार्क्सवाद न भी कहा जाये तो कोई हर्ज नहीं हैं उन्होंने अपने विचारों के विकास का दरवाजा बन्द नहीं किया था।" .... "मार्क्सवाद को बन्द शास्त्र बनाने का काम जड़ स्टालिनवादियों ने किया।"(128)

"भारतीय मार्क्सवादी भी निरन्तर मार्क्सवादी सिद्धान्तों के कैद बने रहे जिसका सामयिक विश्व से कोई सम्बन्ध नहीं है।"(129) वास्तव में मार्क्स ने साम्यवाद का अर्थ विस्तृत रूप में लिया था। "मार्क्स ने साम्यवाद को 'इस शब्द के अन्तिम निष्कर्ष के रूप में" नहीं लिया था वरन् मानवता के एक अन्तहीन आन्दोलन के रूप में, व्यक्ति के सार्वभौमिक विकास की संभावना के रूप में लिया।"(130)

अतः विश्व की बदली हुयी परिस्थितियों में हमें मार्क्सवाद की पुनर्स्थापना करनी होगी। "हम मार्क्स की परिभाषाओं का विशालतम अर्थ में प्रयोग करें–इसके 'पूर्व इतिहास' से सच्चे 'इतिहास' की ओर।" निश्चित रूप से आज मार्क्सवाद को नये सिद्धान्तों और नई राजनीति की जरूरत है। "आज मार्क्सवाद को किस तरह के सिद्धान्तों और कैसी राजनीति की जरूरत है यह आज के जमाने का सबसे कठिन और पेचीदा सवाल है और इसको हल करना किसी एक व्यक्ति या चन्द लोगों के बस का काम नहीं है बल्कि यह सवाल काफी लम्बे अरसे में जाकर, तरह–तरह के संघर्षों से गुजर कर ही तय होगा।"(131)

मार्क्सवाद का मुख्य लक्ष्य शोषण से मुक्ति और समानता की स्थापना की आवश्यकता से आज भी कोई मत विभेद नहीं प्रस्तुत कर सकता। अतः आज समय सबसे अनुकूल है साम्यवाद पर यथार्थ के धरातल पर गम्भीर चर्चा शुरू करने के लिये। क्योंकि आज के विकसित एवं पश्चिमी देश जिस ओर जाने के लिये उतावले है उनका लक्ष्य संदिग्ध है। "समाजवाद में, इक्कीसवीं सदी की देहलीज पर, समाज को अधिकतर स्वतंत्रता और समानता की ओर अग्रसारित करने की रचनात्मक शक्ति है।"(132)

जब समाजवाद पर इक्कीसवीं सदी में चर्चा हो तो 'समाज कल्याण' एवं 'मानवीय समाज' के निर्माण में वैचारिक योगदान देने वाले नोबल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के विचार स्वयं

---

128. वही
129. Subrata Mukherjee, Marxism in Contanporary World : An Overview, Essays in Marxist Theory and Practice, P. 19
130. Pantin and E. Plimark, The Ideas of Karl Marx at a Turning Point, Soviet Studies in Philosophy, P. 67
131. एजाज अहमद, आज के जमाने में मार्क्सवाद का महत्व, पृ. 19
132. Prakash Karat, The Prospecto, Seminar, 373-September, 1990, P.-25

ही सामने आ जाते हैं। अमर्त्य सेन के विचार मार्क्स के विचारों से समानता रखते हैं। मार्क्स ने जनता के अधिकारों की प्राप्ति के लिये जनसंघर्ष पर बल दिया। अमर्त्य सेन ने जनता के समानता के अधिकार के लिये सरकारी प्रयासों पर बल दिया। मार्क्स ने अपने युग में जनदायित्व को महत्त्व दिया; सेन ने आज की बदली हुयी परिस्थितियों में सरकारी दायित्व पर जोर दिया। दोनों ने ही समानता के अधिकार की स्थापना, सामाजिक अभावों की समाप्ति, मानव के बुनियादी जरूरतों की पूर्ति द्वारा मानव जीवन को बेहतर बनाने का लक्ष्य सामने रखा।

एक विशेष तथ्य यह कि अमर्त्य सेन ने 'चीनी राजनैतिक नेतृत्व की प्रतिबद्धता' को महत्त्व दिया। ''चीनी जनता के जीवन स्तर में सुधार के प्रति इस प्रतिबद्धता में वे 'माओवादी एवं मार्क्सवादी विचारों एवं आदर्शों की एक महत्वपूर्ण भूमिका' मानते हैं।''[133] अमर्त्य सेन का दर्शन और चिन्तन भी आज के युग में मार्क्सवाद की प्रासंगिकता को ही सिद्ध करते हैं।

बीसवीं सदी के इतिहास का मूल्यांकन करते हुये इटली के इतिहासकार लिओ वेलिआनी ने कहा था कि ''हमारी सदी यह साबित करती है कि न्याय और समानता के आदर्शों की विजय हमेशा अल्पजीवी होती है, और यह भी कि अगर हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर सकें तो नयी शुरूआत की संभावना हमेशा बनी रहती है, इसलिये अत्यन्त कठिन समय में भी निराश होने की जरूरत नहीं है।''[134]

फिर भी आज साम्यवाद के विघटन से दुनिया को सबक लेना होगा। ''यह बहुत महत्वपूर्ण है कि दुनिया ने न केवल 'रूसी नाटक' को उत्सुकता से देखा वरन् इससे कुछ सीख भी लिये।''[135] शक्ति का नियंत्रण केवल एक या कुछ व्यक्ति के हाथों में होना प्रायः खतरनाक होता है। चाहे वे कितना ही ईमानदार क्यों न हों। देश में नये सुधार लागू करने के लिये पहले जनता को तैयार करना आवश्यक है। अन्यथा सुधार असफल रहते है। सुधार या परिवर्तन के लिये दूरदृष्टि भी आवश्यक है और साथ ही जरूरी है परिस्थितियों के साथ कदम मिलाकर चलना।

जबकि कुछ विचारकों के विकल्पों का कोई अस्तित्व नहीं दिखाई देता कुछ विचारक समाजवाद को ही एकमात्र विकल्प मानते हैं।'' सीताराम येचुरी का कथन है, 'टीना' (There Is No Alternative, TINA) के तर्क का साम्यवादी जबाव है 'सीता' (Socialism Is The Alternative, SITA)''[136]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि परिस्थितियाँ ही मनुष्य की आवश्यकताओं को तय करती

---

133. रामसुजान अमर, भारत की अर्थव्यवस्था और अमर्त्य सेन, दैनिक जागरण, 2 नवम्बर, 1998

134. संकट तो है लेकिन, संकट के बावजूद, मैनेजर पाण्डेय, पृ.–26

135. Borris Kagarlitsky, The Dialectic of Change, Preface, X

136. सीताराम येचुरी, और यह साम्यवादी शिखर, सहारा समय, 19 जुलाई, 2003

है जो कि परिवर्तनशील होती है। मनुष्य की आवश्यकतायें ही किसी वस्तु या विचारधारा की अच्छाइयों एवं बुराइयों को निर्धारित करती है। कोई व्यवस्था चाहे वह साम्यवादी हो या पूँजीवादी दो देशों में बिल्कुल एक समान नहीं हो सकती है न ही उनका कोई स्थिर स्वरूप हो सकता है। अतः किसी व्यवस्था की सफलता या विफलता के बारे में हम कोई एक निर्णायक मत भी जाहिर नहीं कर सकते। "समाजवाद और पूँजीवाद दोनों बदल रहे हैं। आधुनिक अन्तरिक्ष युग एवं अणु युग में किसी स्थिर विचारधारा या चिन्तन का कोई स्थान नहीं है। उन्हें एक दूसरे के अनुभव से सीखना चाहिये।"[137]

पूँजीवाद एवं समाजवाद के बदलती प्रकृति

(Changing Nature of Capitalism & Socialism)

अमेरीका के प्रथम राष्ट्रपति थॉमस जेफरसन एवं उनके समय में अमेरीकी स्वतंत्रता के सभी उद्‌बोधक स्वतंत्र बाजार या पूँजीवादी पद्धति के समर्थक थे। इसी कारण अमेरीका की 'स्वतंत्रता की उद्‌घोषणा' में कहा गया है कि "सभी मानव प्रकृति से समान रूप से मुक्त एवं स्वाधीन है।" उद्‌घोषणा में समान रूप से स्वाधीन होने का अर्थ है सबके लिये समान स्वतंत्रता का अधिकार जिसका पोषक पूँजीवादी पद्धति है।

समाजवाद भी एक ऐसी पद्धति है जो समानता के साथ स्वतंत्रता एवं मानवीय अधिकार को मान्यता देती है, अन्याय, अत्याचार और शोषण के उन्मूलन के लक्ष्य पर आधारित साम्यवादी समाज भी स्वाधीनता का पोषक होता है। इस समानता के बावजूद व्यवहार में यह दोनों पद्धतियाँ दो पृथक विचारध ारा और व्यवस्था के रूप में सामने आयी।

मार्क्स ने एवं उसके परवर्ती लेखकों ने पूँजीवाद एवं समाजवाद इन दोनों परस्पर विरोधी एवं सर्वथा भिन्न अवधारणाओं को एक साथ रखने का प्रयास किया। समय के साथ इन दोनों अवधारणाओं में अनेक परिवर्तन आये हैं। इनके बदले हुये रूप के आधार पर मूरे ने इन दोनों विरोधी शब्दों को "स्वतंत्र बाजार पूँजीवाद" एवं "राज्य पूँजीवाद" कहकर अभिहित किया।[138] मूरे के अनुसार प्रथम व्यवस्था एक शान्तिपूर्ण स्वैच्छिक विनिमय की है जबकि दूसरी व्यवस्था हिंसापूर्ण स्वामित्व हरण की है।

स्वतंत्र बाजार पूँजीवाद मानव इतिहास में एक महान क्रान्तिकारी आन्दोलन के रूप में अवतरित हुआ। यह प्राचीन संस्थान राज्यवाद के विपरीत था। इसके आगमन के पूर्व संसार की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था तानाशाहों, आततायियों एवं एकाधिकार द्वारा नियंत्रित थी। पश्चिमी योरोप में औद्योगिक

---

137. T. N. Kaul, From Stalin to Gorvachev, P. 257

138. Murrary N. Rothbard : Future of Peace and Capitalism, P. 1, The Mises Review, August 3, 2004

क्रान्ति के माध्यम से यह अंकुरित हुआ और धीरे–धीरे 'स्वतंत्र बाजार' के रूप में यह अपने सम्पूर्ण रूप में प्रकट हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के कारण बाजार में रचनात्मक शक्ति एवं उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुयी।

पूँजीवादी पद्धति एवं औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप बाजार में भारी मात्रा में उत्पादक शक्तियों का आगमन हुआ जिस उद्‌गम ने उस व्यापारिक पद्धति के विरूद्ध क्रान्ति कर दी जो दुनिया में सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी में प्रचलित थी। दोनों में अन्तर यह था कि पहले अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था वाणिज्य और अब यह उद्योग है। दोनों में अनेक समानतायें भी हैं क्योंकि दोनों की ही प्रवृत्ति एकाधिपत्य की है, दोनों में ही शासन एवं उद्योग की भागीदारी है, दोनों ही सैन्यवाद की एक व्यापक पद्धति हैं। जो अन्ततोगत्वा युद्ध और साम्राज्यवाद की ओर मानव संसार को ले जाती है। पर औद्योगिक क्रान्ति के आगमन से पूँजीवाद को बल मिला और समाजवाद दुर्बल हुआ।

सोवियत संघ में 1917 में साम्यवादी क्रान्ति की सफलता के बाद लेनिन ने 1920 में 'युद्धस्तरीय साम्यवाद' (War Communism) की घोषणा की। यह पूर्व साम्यवाद की ओर महत्वपूर्ण कदम था। एक ऐसी अर्थव्यवस्था लागू हुयी जिसमें न तो पूँजी होती है और न ही मूल्य पद्धति। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार श्रम करता है और उत्पादित वस्तुओं को सामान्य ढेर में रख देता है और पुनः ढ़ेर से अपनी आवश्यकता के अनुसार ले लेता है। बाद में लेनिन ने अनुभव किया कि यह पद्धति सफल नहीं रही अतः उसने जल्दी ही नयी आर्थिक नीति लागू की जिसके तहत देश में औद्योगिकरण प्रारम्भ हुआ। स्टालिन के शासन काल में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से औद्योगीकरण का विशाल पैमाने पर विस्तार हुआ। इससे उत्पादन में तेजी आयी और सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था समाजवाद से अर्द्धस्वतंत्र बाजार पद्धति की ओर मुड़ने लगी।

इस सोवियत प्रयोग से लूडविग वन माइसेस ने 1920 में ही यह निष्कर्ष निकाला कि कृषि पद्धति तो किसी भी व्यवस्था में चल सकती है पर समाजवाद में औद्योगिक पद्धति नहीं चल सकती। क्योंकि औद्योगिक पद्धति के लिये बाजार चाहिये, लाभ हानि का परीक्षण चाहिये। इसके लिये पूँजीगत लागत एवं मूल्य पद्धति भी आवश्यक है। जिसका समाजवाद में अभाव होता है। औद्योगिक पद्धति को अव्यवस्थित रूप में भी नहीं चलाया जा सकता अतः समाजवादी पद्धति औद्योगिक पद्धति को चलाने योग्य नहीं है। जब कि पद्धति चाहे कोई भी क्यों न हो विकास के लिये औद्योगिक पद्धति की ऊर्जा आवश्यक है। साथ ही विकास के लिये प्रतिस्पर्द्धा एवं स्वतंत्र बाजार भी आवश्यक है। यही कारण है कि औद्योगीकरण के कारण समाजवादी देशों में महान परिवर्तन आया एवं वे समाजवाद से स्वतंत्र बाजार पद्धति की ओर मुड़े। रूस सहित पश्चिमी योरोप के देशों में आज स्वतंत्र बाजार पद्धति स्थापित हो चुकी है। चीन भी धीरे–धीरे इस दिशा में आगे बढ़ रहा है।

"अतः कुछ विचारकों के अनुसार पूँजीवाद और समाजवाद अब एक दूसरे के विकल्प नहीं रह गये हैं। उनका रूप भले ही कुछ भी क्यों न हो, दोनों समाज को उन्हीं दबावों, निषेधों और मानदण्डों के मुताबिक गढ़ना चाहते हैं जो औद्योगिक व्यवस्था ने पिछली तीन शताब्दियों में अपने विकास के दौरान हमारी दुनिया पर थोपे हैं।"(139)

इस प्रकार विगत शताब्दी में दुनिया में स्वतंत्र बाजार के समर्थकों के लिये उल्लेखनीय विकास हुये हैं। पश्चिमी योरोप के देशों ने समाजवाद का प्रयोग किया और असफल रहे विशेष रूप से तब जब इन देशों में अर्थव्यवस्था का औद्योगिकरण हुआ। इन देशों में अर्थव्यवस्था में विकेन्द्रीकरण लागू हो रहा है। यहाँ शक्तिशाली शासन एवं नौकरशाही पर आक्रमण हुये, व्यक्तिगत जीवन में शासन के हस्तक्षेप का विरोध हुआ, शासन द्वारा संचालित शिक्षा पद्धति का अन्त हुआ, सैन्यवाद, युद्ध एवं षड़यंत्र पर प्रहार हुये और स्वतंत्र बाजार की स्थापना हुयी। मूरे के अनुसार पूर्वी योरोप में स्वतंत्र बाजार पूँजीवाद का भविष्य उत्तम है। वहाँ इसकी सफलता निश्चित है।

योरोप में औद्योगिक क्रान्ति का सम्पूर्ण दुनिया के शासन एवं अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा। सोवियत संघ एवं पूर्वी योरोप के देश भी इससे अछूते नहीं रह सके। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव भी इसमें शामिल थे। इसके परिणाम स्वरूप एक ओर समाजवादी पद्धति अपने मूल रूप से दूर होती गयी और दूसरी ओर पूँजीवादी व्यवस्था एक अधिक विकसित पद्धति के रूप में सामने आयी। विकसित औद्योगिक पद्धति में श्रमिकों को रोजगार के नये अवसर प्राप्त हुये, उनकी जीवन दशा में सुधार आया, धनी और निर्धन के मध्य अन्तर कम होने लगा। नागरिकों की स्वतंत्रता के अधिकार की स्थापना हुई। एक बिन्दु पर पहुँचकर वामपंथी और दक्षिणपंथी का अन्तर धूमिल सा होने लगा। सच्चे प्रजातंत्र की स्थापना में दोनों पद्धतियाँ परस्पर एक दूसरे की पूरक प्रतीत हुयी।

विश्व के विचारक और समीक्षक भी इन परिवर्तनों की स्पष्ट व्याख्या या कारण प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे। क्योंकि समाजवादी और पूँजीवादी पद्धति अनेक पड़ावों को पार करते हुये अपने मूल स्वरूप से दूर जा रही थी, इतनी दूर जिसकी कल्पना मार्क्स या एंजिल्स ने भी कभी नहीं की थी। पूँजीवाद एवं साम्यवाद के मध्य विवाद आज भी समाप्ति पर नहीं है। वास्तव में वैचारिक संघर्ष बढ़ता ही जा रहा है।(140) विषय विशेषज्ञ, अर्थशास्त्री पूँजीवाद एवं समाजवाद के गुणों एवं अवगुणों के पक्ष में अनेक तर्क और व्याख्यायें प्रस्तुत कर रहे हैं। पर आज तक किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका है।

---

139. सच्चिदानन्द सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, पृ.–19

140. James Petras - Capitalism Versus Socialism : The Great Debate Revisited, P.1

वैश्वीकरण एवं नव अमेरिकनवाद की चुनौतियाँ

(Challenges of Globalisation and Neo-Americanism)

1848 में कार्ल मार्क्स ने पूँजीवाद की विशेषताओं का वर्णन करते हुये कम्युनिस्ट मेनिफेस्टों में कहा था–"अपने उत्पादों के लिये बाजार की तलाश बुर्जुआ को पूरे भूमंडल में दौड़ाती है। इसे सब जगह अपना घोंसला बनाना है, इसे हर जगह बसना है, इसे सर्वत्र अपना सम्बन्ध फैलाना है।"[141] आज डेढ़ सौ वर्ष उपरान्त कार्लमार्क्स का पूँजीवाद के बारे में यह कथन सही चरितार्थ हो रहा है। पूँजीवाद के विकास के प्रारम्भिक दौर में स्वतंत्र बाजार की परिधि सीमित थी जो अब एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के दौरान विश्वव्यापी बन चुकी है।

पश्चिम के विकसित औद्योगिक एवं पूँजीवादी देशों से होते हुये इसने अपनी परिधि में पूर्वी योरोप एवं रूस को भी शामिल कर लिया है। पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रान्ति के बाद उत्पादन की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुयी तब इन्हें अपने बाजार को अपने देश से बाहर जाकर विस्तृत पैमाने पर अन्य देशों में भी फैलाने की आवश्यकता महसूस हुयी। विस्तारीकरण की इस नीति का नेता था अमेरीका जिसकी पूँजीवादी नीति का लक्ष्य था सम्पूर्ण संसार में अपना वर्चस्व स्थापित करना। पूँजीवाद को राष्ट्रीय सीमा से बाहर ले जाने की अभिलाषा पहले रूस एवं उसके बाद चीन की नीति से बाधित होती रही है। "ये समाजवादी होने के दावे और अपने साम्राज्यवाद विरोधी नारों के कारण दुनिया भर में पूँजीवादी साम्राज्यवादी देशों के लिये चुनौती बन गये थे।" परन्तु बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में सोवियत संघ के पतन के बाद रूस एवं पूर्वी योरोप के देश भी इसकी परिधि में आ चुके है। सोवियत संघ के विघटन के बाद 15 नये स्वतंत्र देशों का उदय हुआ तो सम्पूर्ण योरोप में साम्यवादी अर्थव्यवस्था ने अन्तिम साँसें ली। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में राज्य द्वारा नियंत्रित केन्द्रीकृत योजनागत विकास के स्थान पर एक ऐसी बाजारी अर्थव्यवस्था को अपनाया गया जो उपभोक्ताओं की माँग और पूर्ति से नियंत्रित होती थी। आर्थिक नीतियों में एक दूसरे के विपरीत अर्थव्यवस्था वाले पूर्वी जर्मनी एवं पश्चिमी जर्मनी का एकीकरण हो गया। चीन ने भी एक बड़ी सीमा तक पूँजीवादी बाजार व्यवस्था को स्वीकार कर लिया। अतः दुनिया में एक ही ध्रुव का वर्चस्व दिखाई पड़ रहा है। जिसका नेतृत्व अमेरीका के हाथों में है। अमेरीका के नेतृत्व में विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व व्यापार संगठन ने आर्थिक क्षेत्र में तृतीय विश्व के देशों पर भी इस नयी नीति को अपनाने पर दबाव डाला है। इस नयी नीति का आकर्षक नामकरण किया गया है उदारीकरण (Liberalization), निजीकरण (Privatisation) तथा वैश्वीकरण (Globalisation) की नीति जिसे संक्षेप में LPG कहा जाता है।

---

141. Manifesto of the Communist Party, P. 45

वैश्वीकरण एक पूँजीवादी प्रक्रिया है। यह सोवियत संघ के पतन से आरम्भ हुआ। व्यवहार में इस नयी वैश्वीकरण की नीति का अर्थ है विश्व के विभिन्न देशों द्वारा अपनायी जाने वाली वह आर्थिक नीति जिसमें उत्पादन के साधनों एवं श्रम के, पूँजी एवं तकनीक के तथा कच्चे माल एवं उत्पादन नीति के विचारों के आदान प्रदान में किसी प्रकार की कानूनी बाधा न हो। तात्पर्य यह कि इन सबके स्वतंत्र आवागमन के लिये सम्पूर्ण विश्व एक इकाई के समान हो। वैश्वीकरण के अन्तर्गत एक राज्य शेष विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ अपने को मुक्त भाव से जोड़ने का प्रयास करता है। जहाँ राष्ट्र राज्य की सीमाओं का कोई महत्व नहीं रह जाता है। मार्क्स ने कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में पूँजीवादी प्रक्रिया की इस स्थिति की कल्पना करते हुये कहा था "वाणिज्य की स्वतंत्रता की ओर विश्व बाजार की ओर उत्पादन की पद्धतियों एवं जीवन की स्थितियों की अनुकूलता में एकरूपता की ओर पूँजीपतियों के विकास के कारण राष्ट्रीय विभिन्नता एवं लोगों के मध्य प्रतिरोध दिन पर दिन समाप्त हो रहे हैं।"[142]

मार्क्स इस प्रक्रिया के अगले चरण के बारे में कहता है कि जब समस्त देशों में सर्वहारा वर्ग की सर्वोच्चता होगी, ये परिवर्तन और अधिक तीव्र होंगे। प्रमुख सभ्य देशों के द्वारा संयुक्त कार्यवाही (United Action) सर्वहारा वर्ग की जागृति के लिये प्रथम शर्तों में से एक होगी।[143] परन्तु सर्वहारा वर्ग की सर्वोच्चता की स्थापना के बिना ही वैश्वीकरण की प्रक्रिया में ये परिवर्तन तीव्र होते जा रहे हैं। मार्क्स की भविष्यवाणियाँ कुछ लोगों को सत्य प्रतीत हो रही हैं। परन्तु आज के परिवर्तन में कारक तत्व श्रमजीवी वर्ग का नेतृत्व नहीं वरन् विश्व के प्रमुख विकसित देशों का नेतृत्व है।

विश्व में उभरती हुयी नयी व्यवस्था ने पूँजीवाद की प्रकृति के बारे में मार्क्सवादिओं के सामने अनेक चुनौतियाँ प्रस्तुत की है। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या पूँजीवाद अपने विकास के एक अधिक उच्च स्तर में प्रवेश कर रहा है ? वैश्वीकरण के उग्र समर्थक इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक देते हैं।[144] उनका तर्क है कि विशाल विनिमयकारी कम्पनियों के माध्यम से राज्यों की सीमाओं पर विजय पा ली गयी है। जो पूँजीवादी विकास के लिये एक नया ऐतिहासिक काल खोल देगा। विश्व अर्थव्यवस्था में हुये नये परिवर्तनों से विश्व के शासक वर्ग में एक आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ है।

इससे एक और नयी स्थिति सामने आयी है कि श्रमिक वर्ग दुनिया में एक बिल्कुल नयी परिस्थिति का सामना कर रहे है। वह है श्रमिक बाजार की स्वतंत्रता। परिणामस्वरूप आशा की जा रही है कि धनी एवं निर्धन वर्ग के मध्य असमानता दूर होगी। श्रमिक बाजार की स्वतंत्रता समानता का स्थापक

---

142. Manifesto of the Communist Party, P. 70

143. वही, पृ. 71

144. Tony Saunols : The Challenge of Globalisation, P. 1, The future of Socialism, C.W.I., 1996

सिद्ध होगी। क्योंकि वैश्वीकरण को अपनाकर तृतीय विश्व में व्याप्त निर्धनता, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा जैसी गम्भीर समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। वैश्वीकरण के सहारे पूँजी निर्माण की समस्या से ग्रसित विकासशील एवं पिछड़े देशों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से निवेश बढ़ाया जा सकता है। नये निवेश से राष्ट्रीय आय तथा रोजगार में वृद्धि होगी।[145]

भारत जैसे विकासशील देशों के उच्च प्रशिक्षित श्रम बल को विकसित एवं विकासशील देशों में विशाल मात्रा में रोजगार की संभावना प्राप्त हो सकती है। जैसे भारत के प्रोफेसर, वैज्ञानिक, डाक्टर, इन्जीनियर आदि भारी संख्या में अमेरीका, ब्रिटेन, कनाडा आदि देशों में कार्यरत है। इससे कुछ विचारकों के अनुसार विकासशील देशों को 'प्रतिभा पलायन' की समस्या का भी सामना करना पड़ सकता है।

विकासशील एवं पिछड़े हुये देश जो अभी प्रौद्योगिकी के मामले में पिछड़े हुये हैं वैश्वीकरण के माध्यम से दुनिया की आधुनिकतम वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग करके अपनी उत्पादन शक्ति को बढ़ा सकते हैं और अपनी निर्यातों को भी बढ़ा सकते हैं। जैसा कि सिंगापुर, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, मलयेशिया आदि देशों ने किया है। इस कारण उनकी निर्यात बढ़ी है और विदेशी पूँजी भी। अतः इन देशों की अर्थव्यवस्था को 'करिश्माई अर्थव्यवस्था' (Miracle Economy) कहा गया है।

वैश्वीकरण के माध्यम से विकासशील देश विदेशी कम्पनियों के साथ समझौता करके अपने देश की जनता को, राजमार्ग, रेल, हवाई अड्डे, बन्दरगाह आदि में आधुनिकतम सुविधायें उपलब्ध करा सकते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे किसी विषय के बारे में नवीनतम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार वैश्वीकरण के कारण विश्व व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। विशेषकर विश्व अर्थव्यवस्था पहले से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय हो गयी है। पूँजी के प्रवाह एवं विश्व व्यापार के विकास ने नयी ऊँचाइयाँ छू ली है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विस्तार के साथ उत्पादन का भी अन्तर्राष्ट्रीयकरण हुआ है। यह प्रक्रिया केवल पूँजीवादी देशों में ही नहीं वरन् अन्य उभरते हुये देशों को भी शामिल कर रही है।[146]

पिछले एक दशक में दुनिया को असाधारण रूप में अपनी पकड़ में ले लेने वाले वैश्वीकरण के प्रति अनेक आशंकायें भी प्रकट की जा रही है। Week पत्रिका के सम्पादकीय में यह शंका प्रकट की गयी कि नयी प्रतियोगी विश्व अर्थव्यवस्था का उदय एक निर्दयी व्यवस्था के रूप में हो रहा है। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद नयी पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं का एकीकरण हो रहा है और कुछ सीमा तक विकासशील देशों का भी। इससे औद्योगिक पूँजीवादी देशों का आर्थिक एवं सामाजिक ध्रुवीकरण हो रहा है।

---

145. डा. श्याम सुन्दर सिंह चौहान, वैश्वीकरण का सामाजिक स्वरूप, प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर, 2004

146. Tony Saunols : The Challenge of Globalisation, P. 1, The future of Socialism, C.W.I., 1996

अतः आज वैश्वीकरण की वास्तविकता है "पूँजीवाद की तात्कालिक एकछत्रता का उद्‌घोष" और पूँजीवादी एकछत्रता का अर्थ है अमेरीका की राजनैतिक और आर्थिक प्रभुता। अमेरीका ने एशिया एवं योरोप के नवोदित देशों में न केवल अपना विशाल बाजार बना लिया है, यहाँ भारी मात्रा में पूँजी का निवेश भी किया है। साथ ही यहाँ के देशों को विवश किया है अपनी मर्जी एवं सुविधा के अनुकूल अपनी आर्थिक नीति बनाने के लिये। अब वैश्वीकरण के नाम पर औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था को एवं अमेरीकन उपभोक्तावादी संस्कृति को दुनिया के उन सभी देशों में भी लादने की कोशिश की जा रही है। जो अभी तक गैर पूँजीवादी व्यवस्था के अधीन थी। पूँजीवाद का विकास अनियंत्रित रूप में हो रहा है जिससे क्षेत्रीय असमानतायें उभरकर आ रही है। बेरोजगारी पैर पसार रही है। चीन जहाँ पहले बेरोजगारी का नामोनिशान नहीं था वहाँ पर अब लगभग दस करोड़ लोग बेरोजगार हैं।

विकासशील देशों की राजनैतिक एवं आर्थिक नीति में दखलन्दाजी या उन्हें किसी विशेष नीति को लागू करने के लिये मजबूर करना अमेरीका की भूमिका केवल यहीं तक सीमित नहीं है वरन् आज सैनिक दृष्टि से भी अमेरीका संसार में सर्वोच्च शक्तिशाली है। शस्त्रों के संग्रह के होड़ में प्रतिद्वन्द्वी सोवियत संघ के विलुप्त हो जाने के बाद रूस ने अपनी सैनिक शक्ति को कम करने की निरन्तर घोषणा की किन्तु अमेरीका इस मामले में पीछे नहीं हटा। एक ओर वारसा पैक्ट के समाप्ति की घोषणा की गयी पर दूसरी ओर नाटो अधिक शक्ति संचय में लगा रहा। योरोप के अधिकांश देश नाटो के सदस्य है। और रूस सहित एशिया के देशों में अब नाटो के विरोध करने का साहस नहीं है।

वैश्वीकरण के द्वारा साम्राज्यवादी शक्ति पुनः पुराने उपनिवेशों पर अधिपात्य स्थापित करने का प्रयास कर रही हैं। अनेक विचारक वैश्वीकरण को उन्नीसवीं शताब्दी के उपनिवेशवाद का ही ताजा संस्करण मान रहे है। जिस प्रकार अठारहवीं सदी में योरोपीय देशों की व्यापारिक कम्पनियों ने तीसरी दुनिया के देशों में व्यापारिक अधिकार के साथ राजनैतिक सत्ता पर भी अधिकार स्थापित कर लिया था उसी प्रकार आज अमेरीका और योरोपीय देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ तृतीय विश्व के देशों में प्रवेश करके आर्थिक शक्ति पर अधिकार कर रही है। इससे इस बात का खतरा उत्पन्न हो गया है कि इन विकासशील देशों की आर्थिक नीति के बारे में निर्णय लेने की शक्ति विकसित पूँजीवादी देशों के हाथों में चली जायेगी।

विकासशील देशों में बढ़ती हुयी निर्धनता भी चिन्ता का विषय है। "वैश्वीकरण की वर्तमान प्रणाली समुदायों में असमानता की समस्या से लड़ने में विफल रही है।" ऐसा वैश्वीकरण के आलोचक प्रोफेसर नोआम चोमस्की का कहना है। वैश्वीकरण ने सामान्य जनता पर धनिकों का वर्चस्व स्थापित करने में सहयोग दिया है। इन देशों की अर्थव्यवस्था बाह्य हस्तक्षेप के प्रति विवश और दुर्बल होती जा रही है। इन देशों में जो असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है। इससे ये आर्थिक संकट का शिकार हो सकते हैं। क्योंकि आज जनहितकारी शासन नहीं वरन् धनी और व्यापारी वर्ग द्वारा शासन निर्देशित हो रहा है।

विश्व की इस असंतुलित एवं अन्यायपूर्ण अर्थव्यवस्था में जहाँ विकासशील एवं अविकसित देश अपने अधिकारों एवं समानता के लिये एकजुट होकर संघर्ष कर रहे हैं वहीं इन परिस्थितियों में समानता पर आधारित समाजवादी विश्व व्यवस्था का महत्व निश्चित रूप से सामने आ रहा है। पर उसके समक्ष वैश्वीकरण के साथ समन्वय की चुनौती विद्यमान है।

राज्य की बदलती हुयी प्रकृति

(Changing Nature of the State)

आज विश्व अर्थव्यवस्था की सबसे आश्चर्यजनक विशेषता है विश्व बाजार का बढ़ता हुआ दबाव। यदि हम अमेरीका की भूमिका को पृथक करके भी देखे तो आज किसी देश के लिये यह असंभव हो गया है कि विश्व बाजार की एवं अधिक उदार राजनैतिक प्रक्रियाओं की उपेक्षा करे जो दुनिया में घटित हो रही है। इसके साथ ही राजनैतिक संस्थाओं का भारी विखण्डन हो रहा है। आज विश्व व्यापार ही किसी देश की राजनीतिक नीतियों को निर्धारित करती है। कोई देश इसके प्रभाव से आज बचने में सक्षम नहीं है। राजनैतिक संस्थाओं के अवमूल्यन से जनता की प्रभुसत्ता एवं संसदीय लोकतंत्र के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह लगाये जा रहे हैं।

दुनिया में लोकतंत्रीय राज्यों का इतिहास लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया एवं राजनीति ने लोकतंत्रीय राज्यों की प्रकृति को एक विस्तृत सीमा तक बदल दिया है। योरोप में सत्रहवीं सदी में विकसित लोकतांत्रिक राज्यों का आधार था जनता की प्रभुसत्ता का विचार या अवधारणा। यही अवधारणा आधुनिक लोकतंत्रीय राज्य का भी आधार बना। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दुनिया के विभिन्न देशों में चलाये गये राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलनों ने राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की अवधारणा को जन्म दिया परन्तु वैश्वीकरण की राजनीति ने जनता की प्रभुसत्ता एवं राष्ट्रीय प्रभुसत्ता दोनों को ही नकारने का प्रयास किया है। जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय राज्य की प्रकृति एवं उसकी नीति एक नये रूप में सामने आयी है।

जब औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय राज्य के कार्यों और दायित्वों में विस्तार हुआ। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत यह अनुभव किया गया कि समाज में व्यापारी वर्ग के बढ़ते हुये प्रभुत्व को देखते हुये जनता एवं उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के लिये राज्य का हस्तक्षेप करना आवश्यक है। जनप्रतिनिधि समस्त विशाल उद्योगों को सरकारी नियंत्रण में लाने के लिये राज्य पर दबाव डालने लगे। इन माँगों को लेकर पूँजीवादी देशों में समाजवादी आन्दोलन चलाये जाने लगे। जिसका परिणाम था एक नयी अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था का अस्तित्व में आना। राष्ट्रीय राज्य की भूमिका एवं औद्योगिक शक्ति की भूमिका के मध्य एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया जाता रहा। इस काल में किसी राष्ट्र की शक्ति

के विकास की प्रतीक उस राष्ट्र को औद्योगिक शक्ति के विकास को ही माना गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद औद्योगिक विकास, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सैनिक शक्ति संचय करने की प्रतियोगिता में साम्यवादी सोवियत संघ एवं पूँजीवादी अमेरिका एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बन गये। परन्तु जहाँ आर्थिक संकट से त्रस्त सोवियत संघ में समाजवादी व्यवस्था लड़खड़ाने लगी अमेरीका उन्मुक्त बाजार व्यवस्था का लाभ उठाकर दुनिया में सर्वोच्च आर्थिक एवं सैनिक शक्ति बन गया। सोवियत संघ में साम्यवाद के पतन के बाद तो ''अमेरिका अपनी आर्थिक और सैन्य शक्ति के बल पर संसार के चौधरी के रूप में उभरा।''[147]

वैश्वीकरण के इस युग में अमेरीका की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में विशाल आर्थिक शक्ति संचित हुयी। इन कम्पनियों के उत्पादन और बाजार का क्षेत्र अत्यधिक विशाल है। ''इनमें कई कम्पनियों की आय तो दुनिया के अधिकांश देशों की राष्ट्रीय आय से अधिक है।''[148] ये कम्पनियाँ अन्य देशों में पूँजी निवेश उस देश के राष्ट्रीय हित की उपेक्षा करते हुये करती है। इन देशों की सरकारों को वे अपने व्यापारिक हितों के अनुकूल नीतियाँ बनाने के लिये प्रभावित करती है। और कभी–कभी बाध्य भी करती है। इस स्थिति में इन राष्ट्रीय राज्यों की सरकारों एवं जनता के हाथों में यह अधिकार भी नहीं रह जाता है कि वे अपनी आर्थिक नीति को बदल दें। इस प्रकार साम्यवादी रूस के पतन के बाद तेज होती वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण राज्यों का स्वरूप एवं उनके कार्य भी बदलते जा रहे है और सामान्य जनता के हाथों से प्रभुसत्ता बाहर निकलती जा रही है।

एक आदर्श शासन का सम्बन्ध अधिकतम जनता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से होता है। इसकी नीतियों का लक्ष्य जनता की निर्धनता, असमानता एवं शोषण को दूर करना तथा शासन की शक्ति का विकेन्द्रीयकरण एवं लोकतंत्रीकरण होना चाहिये। पर आज शासन नयी उदारवादी नीति से सम्बन्धित हो गया है जिसका समर्थन विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यापार संगठन कर रहे हैं।[149] शासन के स्वरूप का सार है राज्य का पीछे हटना एवं उसका अवमूल्यन। बाजार उन्मुख पद्धति को स्वीकार करने वाले शासन को एक आदर्श शासन नहीं माना जा सकता है। शासन के इस स्वरूप में राज्य का स्थान बाजारी शक्तियाँ ले लेती है। जबकि किसी देश में एक अच्छे शासन के लिये राज्य की नीतियाँ ही उत्तरदायी होती है। एक उत्तरदायी, प्रजातंत्रीय एवं विकेन्द्रीयकृत शासन ही जन कल्याण की स्थापना में और वंचितों को अधिकार देने में सक्षम होता है।

परन्तु वैश्वीकरण के कारण आज दुनिया के अधिकांश विकासशील देशों में वैश्विक शक्ति एवं

147. सच्चिदानन्द सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, पृ.–110

148. वही, पृ.–111

149. Manas Behra, Globalisation and Governance in India, South Asia Politics, July 2004, P.-35

राष्ट्रीय शक्ति समकक्ष हो गयी है। इन देशों ने शासन की प्रमुख नीति के रूप में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण को स्वीकार कर लिया है जो वैश्वीकरण का आधार है। पर ये नीतियाँ आदर्श शासन का विकल्प नहीं प्रस्तुत कर सकती है। वास्तव में एक अच्छे शासन में उत्पादन का क्षेत्र बाजार की शक्ति के पास होना चाहिये और सामाजिक क्षेत्र राज्य के पास। पर अधिकांश विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था नव–उदारवादी व्यवस्था के प्रभाव में आ गयी है। इसके लिये नयी नीतियाँ बनायी जा रही है, नयी संस्थायें स्थापित हो रही है, पुराने नियम कानूनों में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किये जा रहे हैं। भारत में भी 1991 से नयी उदारवादी आर्थिक नीति अपनायी गयी, निवेश मंत्रालय की स्थापना की गयी एवं अर्थव्यवस्था का नया प्रशासनिक रूप सामने आया।

वैश्वीकरण के अनुरूप राज्य के स्वरूप, उसके कार्य एवं नीतियों में इतने परिवर्तनों के बावजूद इन देशों में न तो उत्पादन में वांछित वृद्धि दृष्टिगोचर हो रही न ही बेरोजगारी की समाप्ति, इसी प्रकार निर्धनता में भी कमी नहीं आ रही और न ही आर्थिक असमानता में। आधुनिकतम वैज्ञानिक सुविधायें प्राप्त कर लेने के बावजूद मानवीय विकास असंतुलित है। वैश्वीकरण के प्रभाव से मानव का सामाजिक जीवन भी घनिष्ठ रूप से जुड़ चुका है। जनता का जीवन स्तर, रोजगार, रहन सहन एवं संस्कृति पर वैश्वीकरण का जो प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है उससे अनेक विचारक किसी देश की सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं के लिये वैश्वीकरण को एक खतरे के रूप में देख रहे है।

पहले शासन की नेतृत्व शक्ति पर शासक वर्ग का वर्चस्व था चाहे वह निरंकुश राजतंत्र ही क्यों न हो। साम्यवादी शासक के युग में सोवियत संघ में यह वर्चस्व साम्यवादी दल के पास था। साम्यवाद के पतन के बाद एवं वैश्वीकरण के आज के युग में यह वर्चस्व व्यापारिक एवं आर्थिक शक्ति को हस्तान्तरित हो चुकी है। इसने प्रजातंत्र के लिये विपरीत परिस्थितियाँ उत्पन्न की है और राज्य की प्रकृति को ही बदल दिया है। विश्व में चारों ओर अर्थव्यवस्थाओं के बढ़ते हुये एकीकरण के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में आमूल परिवर्तन आया है। विश्व व्यवस्था में विशाल पूँजीवादी शक्तियों का वर्चस्व बढ़ रहा है।

फिर भी इन स्थितियों में राज्य की बदलती हुई प्रकृति जनहित के लिये चिन्तनीय है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को जन आकांक्षाओं के अनुरूप एवं समाजोन्मुखी बनाया जाना आवश्यक है। इसके लिये वैश्वीकरण में शामिल देश लोकतंत्र की स्थापना को एक आवश्यक शर्त के रूप में स्वीकारें। साथ ही बेरोजगारी की समस्या पर विशेष ध्यान दें। श्रमिकों के लिये बेहतर अवसर सृजित करें। यह भी आवश्यक है कि बाजार और राज्य के मध्य एक आवश्यक संतुलन की स्थापना का प्रयास किया जाये क्योंकि देश के आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।[150]

---

150. वैश्वीकरण की सामाजिक विधाओं पर विश्व आयोग की रिपोर्ट, फरवरी, 2004 में प्रकाशित

विश्व व्यवस्था में पूँजीवाद के वर्चस्व की स्थापना के साथ ही राज्य व्यवस्था की बदलती हुई प्रकृति के कारण दुनिया के अधिसंख्यक देशों की जनता का जीवन स्तर प्रभावित हो रहा है। धनी एवं निर्धन के जीवन स्तर के मध्य अन्तर बढ़ रहा है। जनता की निर्धनता को कम करने के लिये और असमानता की समाप्ति के लिये समाजवादी व्यवस्था की प्रासंगिकता फिर से सिद्ध हो रही है।

उपसंहार

(Conclusion)

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में यह स्पष्ट हो चुका है कि केवल राजनीति एक देश की जनता को सुखी और समृद्ध नहीं बना सकती है। इसमें अर्थ नीति का भी सही प्रयोग होना चाहिये। जैसा कि लुडविग वान माइसेस का कहना है कि अर्थशास्त्र समाज की आधारभूत समस्याओं को दूर करने का प्रयास करता है। यह प्रत्येक से सम्बन्धित होता है और सभी से। यह प्रत्येक नागरिक का प्रमुख रूप से और सही रूप में अध्ययन करता है। अतः राजनीति एवं अर्थनीति में एक संतुलित सम्बन्ध होना चाहिये।

पूँजीवादी व्यवस्था में अर्थ नीति एवं व्यापार की प्रधानता होने के कारण राज्य की स्थिति कम प्रभावशाली होती जा रही है। एक पश्चातगामी राज्य किसी विशाल जनसंख्या की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में परिवर्तन नहीं ला सकती ठीक इसी प्रकार केवल व्यापारिक शक्ति जनता की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती। सभी प्रकार के पूँजीवादी राज्यों में व्यापार पद्धति की प्रधानता होती है।

सभी समाजवादी राज्यों में भी एक समान संस्थात्मक एवं वैचारिक तत्व उसी प्रकार काम कर रहा है जैसे कि पूँजीवादी राज्यों में व्यापार पद्धति। समाजवादी राज्यों का यह तत्व है किसी न किसी रूप में केन्द्रीकृत नियोजन का लागू होना। व्यवहार में सभी पूँजीवादी देशों में भी किसी न किसी प्रकार का नियोजन होता है और सभी समाजवादी देशों में किसी न किसी प्रकार का व्यापार। अतः समाजवाद एवं पूँजीवाद दोनों ही एक भ्रम उत्पन्न करने वाली पंचमेल पद्धति प्रतीत होती है।[151] समाजवाद का एक तत्व जो पूँजीवाद से उसको बिल्कुल पृथक करता है वह है शासन एवं अर्थ नीति को निर्देशित करने वाला समाजवादी आदर्श जिसके अनुसार समाज का पुर्ननिर्माण होता है। यही समाजवादी विचार का सार है। समाजवाद में विकास एक बिल्कुल नये समाज के निर्माण की ओर होता है जिसका आधार है स्वतंत्रता, सहयोग एवं सामुदायिक भ्रातृत्व।[152]

परन्तु जब हम समाजवाद के भविष्य पर विचार करते हैं तो एक कठिन समस्या का सामना

---

151. Robert L. Heilbroner, Between Capitalism and Socialism, Chapter-5

152. वही

करते हैं। क्योंकि समाजवाद के लक्ष्य की घोषणा में एवं व्यवहार में समाजवाद की प्राप्ति के प्रयास में महान अन्तर सामने आता है। अभी तक विश्व में समाजवादी देशों में स्थापित समाजवाद के रूप एक समान नहीं रहे हैं। जबकि समाजवादी तंत्र की विशेषतायें ही इसके भविष्य का निर्धारण करती है। दुनिया के अत्यन्त पिछड़े हुये एवं अविकसित देशों में समाजवाद ने एक तीव्र परिवर्तन की शक्ति के रूप में सफलतायें प्राप्त की है। इन देशों की निराशाजनक स्थिति का हल है जनता को उत्पादन कार्य में लगाना। युद्धस्तरीय नियोजन के द्वारा क्रान्तिकारी समाजवाद को लक्ष्य बनाना और इसके द्वारा समाज में आर्थिक परिवर्तन लाना। पर यह भी आवश्यक है कि राज्य सर्वाधिकारवादी न बन जाये।

दूसरी ओर दुनिया के सर्वाधिक उन्नत एवं समृद्ध देशों में सामाजिक परिवर्तन के एक वाहक या आदर्श के रूप में समाजवाद की स्थापना संभव है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक इस्तवान मेज़ारोज़ ने भविष्यवाणी की थी कि संयुक्त राज्य अमेरीका अगला देश होगा जहाँ समाजवाद की स्थापना होगी। वहाँ वास्तव में ठोस तकनीकी एवं राजनैतिक आधार पर समाजवाद स्थापित होगा। यह समाजवादी अमेरीका निश्चित रूप से अमेरीकी साम्राज्यवाद को नकारने वाला होगा। परन्तु मेजारोज के कथन के विरूद्ध 1917 में सोवियत संघ में क्रान्ति की सफलता के बाद जिन देशों में साम्यवाद की स्थापना हुयी तो अधिकांश तथा तीसरी दुनिया के पिछड़े हुये देश हैं।

हेल ब्रोनर का भी कहना है कि समाजवाद दुनिया के प्रमुख देशों में एक आर्थिक पद्धति के रूप में स्थापित होगा। यहाँ तक कि योरोप और अमेरीका में भी यह एक ऐसे समाज की स्थापना करेगा जिसके सामने समाजवाद के आलोचक पूँजीवाद का मूल्यांकन करेंगे।[153] यद्यपि ये भविष्यवाणियाँ सफल सिद्ध नहीं हुयी तथापि अमेरीका में पूँजीवादी स्वतंत्र बाजार पद्धति लड़खड़ा रही है। मिश्रित पद्धति टूटन की ओर है। अमेरीका में आज कल्याणकारी राज्य है पर यह निर्धनों पर कर लगाकर धनियों को देता है। अविकसित देशों में अमेरीकी निवेश अमेरीकी निगमों को सुविधायें देता है न कि गरीब देशों की सहायता करता है। अमेरीकी अर्थव्यवस्था के सामने नयी समस्यायें आ रही है। मुद्रास्फीति का संकट, भुगतान का संकट, स्वर्ण निर्गम संकट आदि।[154] इन संकटों को सुलझा पाना कठिन है। अतः यहाँ भविष्य में समाजवाद के पनपने की संभावना है। सुदूर भविष्य में ये भविष्यवाणियाँ सच भी हो सकती है।

परन्तु कुछ विचारक यह मत प्रकट करते है कि समाजवाद के सिद्धान्त एवं अनुभव व्यवहार में बताते हैं कि एक सर्वश्रेष्ठ राज्य की संभावना की कल्पना अति होगी। अतः हम किसी एक पद्धति का विशेष रूप से उल्लेख नहीं कर सकते फिर भी हम किसी ऐसे राज्य की कल्पना कर सकते हैं जिसमें कार्य करने वाली संस्थाओं का सामाजिक स्वामित्व हो; सुनियोजित अर्थव्यवस्था हो, निर्णय केन्द्रीकृत हो पर कार्य करने

---

153. Robert L. Heilbroner, Between Capitalism and Socialism, Chapter-5
154. Murray N. Rothbard, Future of Peace and Capitalism, P. 6

वाली संस्थायें विकेन्द्रीकृत हो।[155] समाजवादी आदर्श पर आधारित विकेन्द्रीकृत पद्धति के इस राज्य की सफलता की संभावना है। प्रजातंत्रीय समाजवाद के बारे में समीक्षक यह भी कहते हुये पाये जाते हैं कि बहुमत द्वारा नियंत्रित यह पद्धति सफल नहीं हो सकती। इसके स्थान पर विवेक–बुद्धि एवं निष्ठा द्वारा निर्देशित कुलीन तंत्रीय समाजवाद अधिक सफल होगा पर ऐसे शासन के निरंकुश बनाने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। जैसा कि सोवियत प्रयोग में हुआ।

सोवियत संघ ने साम्यवादी व्यवस्था में जो प्रगति की उसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता। वहाँ मार्क्स की कल्पना का वर्गहीन समाज भले ही साकार न हो पाया हो, भले ही दुनिया भर के मजदूर जागृत होकर एकताबद्ध न हो पाये, अनेक चुनौतियों का सामना करते हुये रूस की तरह साम्यवादी आन्दोलन असफल हो जाये और पूँजीवाद की ओर मुड़ जाये फिर भी मार्क्स ने जिस समानता के सिद्धान्त की वकालत की है। उसका महत्व तब तक है जब तक कि इस दुनिया में असमानता और शोषण विद्यमान है।

डार्विन के शक्तिशाली के अस्तित्व में बने रहने का सिद्धान्त अब पुराना हो चुका है। मानव प्रकृति अन्य प्राणी से अलग बुद्धि एवं विवेक सम्पन्न है। अतः मानव शोषण और असमानता का सदैव विरोध करेगा चाहे वह जन्मजात ही क्यों न हो। उसके स्वप्न का आदर्श समाज सदैव वही होगा जो स्वतंत्रता, समानता और सम्पन्नता पर आधारित हो। जिसके लिये मानव सदैव प्रयत्नरत रहेगा।

समाजवाद के पास 87 वर्ष का पुराना अनुभव है। आज हम सोवियत संघ के प्रयोग का सर्वेक्षण कर सकते हैं, चीन में चल रहे प्रयोग का अध्ययन कर सकते हैं। भूतकालीन एवं वर्तमान कालीन समाजवाद की असंगतियों एवं अपूर्णताओं से भविष्य के लिये एक पूर्ण समाजवाद की कल्पना कर सकते हैं। इस सदी के विकास ने मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद की वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता को जोरदार ढंग से प्रदर्शित किया है। साम्यवादी क्यूबा ने उल्लेखनीय प्रगति की है। लैटिन अमेरीका के देशों में ब्राजील, वेनेजुएला, चीली, उरुग्ये, पैरागुये आदि देशों के शक्तिशाली जन आन्दोलनों ने अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद को मृदु बनने के लिये बाध्य किया है। यह वैश्वीकरण विरोधी उल्लेखनीय विकास है।[156]

योरोप के अनेक देशों में भी उदारवादी आर्थिक नीति के विरूद्ध श्रमिक वर्ग का विरोध दृष्टिगोचर हो रहा है। 2002 में इटली में राष्ट्रव्यापी हड़ताल इसका उदाहरण है। कृषक वर्ग में WTO के आक्रमण का विरोध है। तीसरी दुनिया के देशों में भी इन नीतियों के विरूद्ध श्रमिक वर्ग आन्दोलन कर रहे हैं। इन देशों में सामाजिक एवं राजनैतिक समूहों द्वारा भी वैश्वीकरण विरोधी आन्दोलन चलाये जा रहे हैं। विश्व सामाजिक मंच की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ये गतिविधियाँ सन्देश दे रही है कि समाजवाद ही

---

155. C. P. Chandra Shekhar, Economics as Ideology and Experience, Frontline, 12 March, 1999
156. Sitaram Yechuri - Future is Socialism, People's Democracy, Nov. 10, 2002

वह मार्ग है जो शोषण की पद्धति को समाप्त करेगा।[157]

परन्तु हमें मार्क्स की इस चेतावनी को भी ध्यान में रखना होगा कि विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियाँ में पूँजीवाद की कोख से जन्म लेने वाले समाजवाद में पूँजीवाद के जन्मजात चिन्ह भी रह जाते हैं। अतः समाज में उच्चकोटि का विकेन्द्रीयकरण होना चाहिये और इसका साम्यवाद के दृष्टिकोण से सामंजस्यता भी होनी चाहिये। समाजवाद या साम्यवाद में आज भी पूँजीवाद को नकारने की संभावना है। विचारकों के अनुसार यह समाजवाद ही है जिसे दुनिया में सामन्ती एवं पूँजीवादी देशों में जनता की स्वतंत्रता की जिम्मेदारी लेनी है जबकि पूँजीवाद स्वयं ही अपने अन्त के लिये वैज्ञानिक एवं तकनीकी आधार प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर जनता की जागृति और वैज्ञानिक तीव्र विकास एक अधिक प्रजातंत्रवादी एवं कम नौकरशाही समाजवादी व्यवस्था के लिये अधिक संभावनायें उत्पन्न करती है।

सी. टी. कूरियन के मतानुसार जैसा कि हमने देखा है। समाजवादी प्रयोग अन्तरिक्ष में प्रथम उड़ान के समान है। इन प्रयोगों ने निश्चित रूप से नयी संभावनायें दिखायी है। परन्तु यह भी निश्चित है कि गलतियाँ हुयी है और पतन भी पर साथ ही अनेक सफलतायें भी हाथ लगी है। सफलतायें अगले कदम को सरल बना देती है। गलतियाँ और यहाँ तक कि पतन अन्त के सूचक नहीं है, न ही ये आगे की संभावनाओं को नकारते हैं।[158]

अतः समाजवाद को अभी सफलता तक पहुँचने के लिये लम्बा मार्ग तय करना है, अनेक समस्याओं से जूझना है। समानतावादी समाज की स्थापना के लक्ष्य की पूर्ति के साथ ही साथ आधुनिक युग की औद्योगीकरण की पद्धति एवं अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति के साथ भी सामंजस्यता स्थापित करना होगा। यह आज साम्यवाद और समाजवाद के सामने एक बड़ी चुनौती है।

आज भी दर्शन शास्त्र के इतिहास में त्रिमूर्ति के रूप में प्लेटो, हीगल एवं मार्क्स की गणना होती है। यह कहना भी सटीक है कि "डार्विन और फ्रायड सहित कार्ल मार्क्स उस त्रिमूर्ति के अंग हैं, जिसने आधुनिक विचार और जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया है।"[159] मार्क्सवाद के भविष्य के बारे में ज्याँ पाल सार्त्र का मत सही प्रतीत होता है कि एक दर्शन के रूप में मार्क्सवाद का महत्व तब तक खत्म नहीं होगा, जब तक उन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर विजय न प्राप्त कर ली जाये, जिनसे मार्क्सवाद पैदा हुआ था।

---

157. वही

158. C. T. Kurian, The Collapse of Socialist Economics, March 13-26, 1999

159. गणेश मंत्री, कार्ल मार्क्स : पिछड़े हुये देशों में कितना प्रासंगिक, धर्मयुग, 4 मई 1986

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(References)

मूलस्रोत (Basic Source)

1. A short History of the CPSU : USSR, 1976
2. Mikhail Gorbachev : Perestroika, Collins, N. Delhi
3. Karl Marx : Das Kapital (पूँजी, प्रगति प्रकाशन, मास्को 1987)
4. Karl Marx & F. Engels : Manifesto of the Communist Party, Progress Publishers, Moscow, 1946
5. Karl Marx & F. Engels : The Germen Ideology, Oxford University Press, 1977
6. Lenin, V. I. : Collected Works I to XI Volumes
7. Marx & Engels : Correspondence, 1846-1895
8. David Mc Lellan : Karl Marx, The Life and Thought, Macmillan, London, 1974
9. Marx and Engels : Early Writings. Trans. & Edit. by T. B. Bottomore, Mc Graw-Hill Book Company, 1963
10. Avineri, Shlomo : The Social and Political Thought of Karl Marx, Cambridge University Press, Cambridge, 1968
11. Graham, Keith : Karl Marx Our Contemporary, University of Toronto Press, 1992
12. Wood, Allen : Karl Marx, Routledge & Legan Paul, 1981

प्राथमिक स्रोत (Primary Source)

पुस्तकें (Books)

1. Rex A Wade : Russian Search for Peace, Feb., Oct. 1917 Standford Uni. Press California, 1969
2. E. A. Rees : State Control in Soviet Russia, Macmillion Press Ltd. London
3. Albert Nirarokor : An Illustrated History of the great October Socialist Revolution, Progress Pub.- 1987

4. Jame Burbank : Intelligensia and Revolution Oxford Uni. Press, N.Y.
5. Do : The Great October Socialist Revolution Pragati Publication, 1977
6. Anthony D'agostino : Soviet Succession Struggles, Allen and Unwin, London
7. Hannes Adomeit : Soviet Risk taking and Cisis Behaviour, Allen & Unwin London, 1982
8. St. Antony's : Soviet Policy for the 1980, Macmillion Series
9. Donald W Treadgold : Twenty Century Russia, Rand McNally College Publishing Com. 1976
10. Dr. Subrata Mukherjee : Essays on Marxist theory & practice, Sanskriti Publication Madras, 1991
11. T. N. Kaul : Stalin to Gorbachev, Lancer International, 1991
12. Ernest Gellner : The Soviet Empire Its Nations speakout Hardwood Academic Pub. 1989
13. : Developed Socialism Theory and practice, Pragati Pub. Moscow
14. Marlin McCaulay : The Soviet Union after Breznev, Hanmyman Educational Books, London
15. Ron McKay : Letters to Gorbachev, Michael Joseph, London, 91
16. Boris Kagarlitsky : The Dialectic of change, Verso London, 1990
17. David W Lowell : From Marx to Lenin, Cambridge University Press, 84
18. N. S. Saxena, K. Nath : How Russia's past shaped the USSR, New friends colony, 1982
19. Raymond Polin : Marxian Foundations on Communism, Henry Regnlry company, Chapter, 1962
20. Olle Tronquist : What is wrong with Marxism, Manohar, 1991
21. Henry Lissagaray Translated by Eleanor Marx : History of Paris Commune of 1871, New York Publications, 1976
22. Peter Singer : Marx, Oxford University Press 1980
23. Stuart Schram : Mao-Tse-Tung, Pengun Books, 1974
24. C. L. Wayper : Political Thought, The English University Press Ltd. London, 1964
25. Prakash Karat : A World to Win, Lelfword Books, N. Delhi, 1999
26. Randheer Singh : Five Lectures in Marxism Mode, Ajanta Publications, New Delhi, 1993
27. Various Inputs : World Book Encyclopaedias, World Book, Inc, 1984
28. George H Hampch : The Theory of Communism, Peter Owen, London

29. L. G. Churchward : Soviet Socialism, Rontiledge & Kegan Pual, London
30. Randheer Singh : Of Maxism and Indian Politics, Ajanta Publications, N. Delhi, 1990
31. J. K. Galbraith : Capitalism, Communism and Coexistance, Stanilan Meshikov
32. Jai Prakash Narayan : A Picture of Sarvodaya Social Order, Akhil Bharat Sewa Sangh, Tanjaur, 1955
33. George H. Sabine : A History of Political Theory, Oxford and IBH Publishing Comp. 1973
34. Bertell Oleman : Alienation, Marx's conception of Man in Capitalist Society, Cambridge University Press, 1971
35. Mihaly Vajde : In state and Socialism; Political Essays Allison and Bustry, 1981
36. Francis W. Coker : Recent Political Thought, Appleton-Century-Crofts INC, New York, 1934
37. Brown Archie : The Gorvachev Factor, Oxford University Press, 1996
38. Swain Geoffrey & Swain Nigel : Eeastern Europe Since 1945, St Martin Press, 1993
39. William H. Chamberla in : Soviet Russia, A living Record and A History, 1930
40. Henry Lissagaray : History of the Paris commune of 1871, New Park Publication, 1976
41. Hosking Geoffrey : A History of the Soviet Union, Fontana Press, 1992
42. Kehoe, AM : Makers of 20th Century Europe, Mentor Publications Ltd., 1988
43. Sakwa, Richard : Gorbachev and his Reforms 1985-1990, Philip Allen, 1990
44. Various Inputs : Chronicle of the 20th Century Quotations, Guinness Publising Ltd., 1996
45. Funk and Wagralls : Gorbachve, Mikhail Sergeyevich; Russia, United Soviet Socialist Republic; Yeltsin, Boris Nikolayevich; communism, common Wealth of Independent States Microsoft Encarta, 1997
46. Communism, The Colombia Dictionary of Quotations : Columbia University Press, 1996
47. E. Wright, A Leisne and E. Sober : Reconstructing Marxism, Verso Publications

48.	Roger Simon	:	Gramsci's Political Thought, T. R. Puslications
49.	Haridev Sharma	:	Fifty years of Socialis Movement in India, Samata Era Publications, N. Delhi
50.	Charles Bettelheim	:	Class struggle's in the USSR, T. R. Publications, Madras
51.	B. R. Bapuji	:	Conception of Social class in Marx, T. R. Pub. Pvt. Ltd., Madras, 1993
52.	T. N. Kaul	:	Furture of Common Wealth of Independent states : Will it survives ? Vikas, Pub, N. D. 1993
53.	Brzezinski, Zbigniew	:	The Grand Future : The Birth and Death of Communism in the Twentieth Century
54.	Conner, Walter D.	:	Socialism's Dilemmas : State and Society in the Soviet Block, Columbia University Press, New York, 1988
55.	Ghose, Ajay	:	Marxism and Indian Reality, Patriot, New Delhi, 1989
56.	Naytor, Thomas H.	:	The Gorbachev Strategy : opening the cbsco Society Lexington, M. A., 1988
57.	Patra, Saral	:	Socialist World : Trends and Perspetives, Sterling, New Delhi, 1989
58.	Rower, H. S. and Wolf clorles	:	The Future of the Soviet Empire, Macmillan, London, 1988
59.	Thom, Francoise	:	The Gorbachev phenomenon, Printer Publications, New York, 1989
60.	Zinmermann, Heinz	:	The Decline of the World Communist Movement, Bonder Co. Westvind Press, 1987
61.	Wilson, F. L.	:	European Politics Today : The Democratic Experience, Prentice Hall, New Jerresy 1990.
62.	Miller, R.F. & Miller J.H. & Rigby T.H.	:	Gorbachev at the Helm, Croom, Helm, 1987
63.	Bipin Pal Das	:	On World Affiars, Layer's Book Stall, Calcutta
64.	Friedniel Engels	:	Capital : A Critique of Political Economy 3 Vols. Chicago and London 1909-1913
65.	Boudin, Louis B;	:	Theoretical System of Karl Marx, Chicago, 1907
66.	Laski, Herold, J.	:	Karl Marx; An Essay, London, 1922
67.	Laski, Herold, J.	:	Communism, New York and London, 1927
68.	Russell, Bertrand	:	Bolshevism : Pratice and Theory, New York, 1920
69.	Hellquit, Norn's	:	From Marx to Lenin, New York, 1921
70.	Robert L Heilbroner	:	Between Capitalism and Socialism Random House, 1970

71.	John E Roemer	:	A future of Socialism, Harvard University Press, London 1994
72.	Cynthia and Shahnaz Rouse	:	Situating Globalization, Zuruk, Egypt
73.	Francis Fukuyama	:	The End of History and the Last Man, Penguin, 1992
74.	Budge & Mckay	:	Developing Democracy, Sage Publications, 1994
75.	Diamond and Plattner	:	Capitalism, Socialism and Democracy Revisited, The John Hopkins University Press, London, 1993
76.	Keane John	:	Democracy and the Idea of left in Socialism and Democracy, Mclellan and Sayers, 1991
77.	Conover & Searing	:	Democracy, Citizanship and study of Political Socialisation, Budge & Mckay, 1994
78.	Michael Harrington	:	Socialism past and future, Pluto Press, UK, 1993
79.	Mclellan & Sayers	:	Socialism and Democarcy, Macmillan, UK, 1991
80.	Pradip Bose	:	Communism & Communist system, Bedams Book Pvt. Ltd., New Delhi, 1995
81.	Michel Chossudovsky	:	War and Globalization
82.	Jhon Ralston Saul	:	Democracy and Globlisation, January, 1999
83.	Katherine Ainger	:	Global Resistance
84.	Waterman, Peter	:	Global Visions, New Times, 16 Oct. 1993
85.	Ralph Dahrendorf	:	After 1989 - Moral, Revolution and Civil Society, N.Y., St. Martin's Press, Oxford, 1997
1.		:	सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी : इतिहास के चरण, सोवियत भूमि पुस्तिका, 1985
2.	ग्रिगरी वोदो लाज़ोव	:	मार्क्स के क्रान्तिकारी विचार इतिहास मात्र नहीं, सो. भूमि पुस्तिका, 1988
3.		:	समस्याओं पर विचार और निर्णय करने की नयी प्रणाली, सोवियत भूमि पुस्तिका, 1988
4.	हरपाल बराड़	:	सोवियत संघ का पतन, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000
5.	मस्तराम कपूर	:	साम्यवादी विश्व का विघटन और समाजवाद का भविष्य, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 1998
6.	सेबाइन, जी. एच.	:	राजनीति दर्शन का इतिहास (भाग–2) एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, 1964
7.	वेपर, सी. एल.	:	राजदर्शन का स्वाध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद

8. डा. प्रभुदत्त शर्मा : आधुनिक राजनैतिक चिन्तन का इतिहास, कालेज बुक डिपो, जयपुर, 1969

9. डॉ. वी. पी. वर्मा : आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–3, 2000

10. मैनेजर पाण्डेय : संकट के बावजूद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली–2, 2002

11. वी. अदोरात्स्की : द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, राहुल फाउन्डेशन गोमती नगर, लखनऊ–10

12. लेनी वुल्फ : क्रान्ति का विभाजन, परिकल्पना, लखनऊ

13. ज्ञान सिंह संधु : राजनीति सिद्धान्त, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

14. जे. सी. जौहरी : समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि., नयी दिल्ली, 1998

15. एस. पी. वर्मा : आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, विकास पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1994

16. राम विलास शर्मा : मार्क्स और पिछड़े हुये समाज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 1986

17. राम विलास शर्मा : भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली

18. एम. एन. राय : साम्यवाद के पार, फिलिप स्ट्रैट, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1987

19. डा. सुभाष कश्यप विश्वप्रकाश गुप्त : राजनीति कोश हिन्दी, माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1998

20. : लेनिन हमारे जीवन में, प्रगति प्रकाशन, मास्को

21. ओ. पी. गावा : राजनीति चिन्तन की रूपरेखा मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 1996

22. लेनिन आई. वी. : वामपंथी कम्युनिज्म एक वचकाना मर्ज, इन्टरनेशनल पब्लिशर्स

23. फ्रेडरिक एंगेल्स : डयूटरिंग मत खण्डन, इन्टरनेशनल पब्लिशर्स

25. लेनिन आई. वी. : सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्सकी, इन्टरनेशनल पब्लिशर्स

26. कार्ल मार्क्स : फ्रांस में गृहयुद्ध, इन्टरनेशनल पब्लिशर्स

27. फ्रेडरिक एंगेल्स : प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता

28. लेनिन वी. आई. : नया समय और नये मुखौटे में नयी गलतियाँ 'स्वर्ण का महत्व आज और समाजवाद की पूर्ण विजय के बाद'

29. लेनिन आई. वी. : क्या करें ? इन्टरनेशनल पब्लिशर्स

30. लेनिन वी. आई. : भौतिकवाद और इन्द्रियानुभविक आलोचना, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली

31. हेराल्ड, जेलास्की : कम्यूनिस्ट घोषणापत्र, ग्रन्थ शिल्पी प्रा. लि. दिल्ली

32. लेनिन वी. आई. : साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की उच्चतम अवस्था, ग्रन्थ प्रा. लि. दिल्ली

33. मार्क्स एवं एंगिल्स : कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, ग्रन्थ शिल्पी प्रा. लि. दिल्ली

34. प्लेरवानोव, जी. वी. : मार्क्सवाद की मूल समस्यायें, ग्रन्थ शिल्पी प्रा. लि., दिल्ली

35. कृष्णकान्त मिश्र : समाजवादी चिन्तन का इतिहास, ग्रन्थ शिल्पी प्रा. लि., दिल्ली

36. सच्चिदानन्द सिन्हा : भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ वाणी, प्रकाशन, नई दिल्ली 2003

37. डॉ. गौरीनाथ रस्तोगी : मार्क्सवाद : उत्थान और पतन, कौशल प्रेस, राजेन्द्र नगर, लखनऊ–4

38. एजाज अहमद : आज के जमाने में मार्क्सवाद का महत्व, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1996

द्वितीयक स्रोत (Secondary Source)

लेख (Articles)

1. Millen (Robert P) : Theoratical and Ideological Issues of Reform in Socialist Systems : Some Yogo. and Soviet examples. Soviet Studies 41 (3) Jul 89; 430-48

2. Bhattacharya (Sunil) : Communism Democracy and Freedom, Radical Humanist 53 (7) Oct. 89; 13-17

3. Frank (Peter) : Perestroika in Crisis, World today 45 (11) Nov. 89, 185-87

4. Brown (Archie) : Political Change in the Soviet Union, World Policy journal 613; Summer 89; 469-502

5. Suny (Ronald Grigor) : Nationalist and Ethnic Unrest in the Soviet Union : Wolrd Policy Journals 6 (3), Summer 89, 513-23

6. Goldman (Marshall I) : Future of Soviet Economic Reform, Current History 88 (540) Oct. 89; 329-32

7. LTH (Lars T) : Transition Era in Soviet Politics. Current History, 88 (540) Oct. 89, 333-36

8. Sallnow (John) : What Price pereotroika ? Geographical Magazine 62 (1) Jan. 90, 10-15

9. Molsoyev (N) : My Ideas about a New Image of Socialism, Social Sciences 20 (4) 1989; 8-22

10. Chakravarty (Sumit) : USSR : A Historic Step, Main stream 28 (17) Feb. 17, 90; 6

11. Aron (Leon) : What Glasnost has Destroyed : Commentaries 8865, Nov. 89, 30-34

12. : Glasnost and Soviet Culture Problems of Communism 38 (6) Nov.-Dec. 89, 40-50

13. Mote (Maye) : Electing the USSR congress of people's deputies : Problems of Communism 38 (6) Nov.-Dec. 89, 51-60

14. Vanaik (Achin) : End of An Era : Turmoil in USSR and Eastern Europe : Economic and Political Weekly 25 (6) Feb. 10, 90, 345

15. Grorbachev Reforms : Russian Reviews 48 (3) Jul. 89, 235-326

16. Editorial : Democratic reform in the Gorbachev era : 1986-89 Russian Reviews 48 (3) Jul. 89, 235, 1970

17. Remington (Thomas) : Socialist Pluralism of Opinions : Glasnost and Policy Making under Gorbachev, R. Review 4813, Jul. 89, 271

18. Editiorial : Gignatic tasks ahead of Gorbachev, Link 32 (33) Mar. 25, 90; 29

19. Modak (AK) : Gorbachevian Policy of Openness, Indian Quarterly 45 (1) Jan., March 89, 46-70

20. Soviet Union : Five Years of Perestroika, World Focus (124) Apr. 90, 3-25

21. Ed. : Gorbachev has few options, Link 32 (47) Jul. 1, 90, 23-25

22. Das (Sitanshu) : Turmoil in USSR Link 32 (49) Jul. 15, 90, 4-7

23. Shah Raju : Anti Democratic Offensive at CPSU Congress, Link 32 (49) Jul. 15, 90, 8-10

24. Prestroika debate : Revolution Betryed or Renewed, Main stream 28 (38) July. 14, 90, 29-30

25. Rutland Peter : Gauging Glassnost Soviet Studies and the Gorbachev Phenomenan; International Affairs (London) 66 (1) Jan. 90, 37-42

26. Bialer Seweryn : Passing of the Soviet Order : Survival, 32 (2) Mar., Apr. 90, 107-20

27. Ray Krishnindu and Sundaram (Ravi) : Socialism at the end of the century : Reflection of an Epoch Passed, Economic and political weekly 25 (29) Jul. 21, 1595-97

28. Lenin Moshe : Gorbachev's era of new thinking, journal of International Affairs 42 (2) spring 87, 267-477 (Series)

29. Perestroika : A new Historical Stage, Journal of International Affairs 42 (2) spring 89, 299-316

30. Gooding (John) : Gorbachev and Democracy, Soviet Studies 42 (2) Apr. 90, 195-232

31. Brokin Vladimir : Revolution from Below, Informal Political Associations in Russia 1988-89, Soviet studies 42 (2), Apr. 90, 233-58

32. Wilhelm (John Howard) : Crisis and Collapse : What are the Issues ? Soviet Studies 42 (2), Apr. 90, 317-28

33. Mitra Ashok : Perestroika and After, Seminar (373) Sep. 90, 14-17

34. Ghosh S. N. : Towards a Synthesis, Seminar (373), Sep. 90, 31-7

35. Bogomolov (Olgt) : Origins of change in Soviet Union. Adelpi Papers (247) Winter 89-90, 16-28

36. Korinov V : Difficent Road to Stability of Socialism : Theory and practice 7 (204) Jul. 90, 68-70

37. Khan, Mizanur Rahman : Changes in Soviet Union and Eastern Europe : Sources and Nature; Bliss Journals 11 (2) Apr. 90, 36-38

38. Ed. : Socialism can not be DIKTAT : Problems of peace and Socialism 33 (4), 36-38

39. Ed. : Passing of old ideas as new thinking problems of peace and Socialism 33 (4), Apr. 90, 91-93

40. Frank (Peter) : End of Prestroika, World Today 46 (5), May 90, 87-89

41. Lieven Dominic : Crisis in the Soviet Union. The Historical Perspections; World Today 46 (5), May 90, 90-93

42. Pipes Richard : Gorbachev's Russia Break down or Crackdown ? Commentary.:·89 (3) Mar. 90, 13-25

43. Narain Shankar : Paradoxes of Perestroke, Monthly Public Opinion Survey 35 (8-9) May-June, 19-20

44. Zivanor Sava : Russia and USSR in the 20th century : Review of International Affairs 41 (965), June 20, 90, 10-13

45. Socialist Idea : A survival Tebt : Problems of peace and socialism (5-6) May-June 90, 6-36

46. Gupta Rakesh : Perestroika - Transition with Participation : International Studies 27 (1), Jan-March 90, 1-16

47. Hubber Robbert I : Gorbachev's First Five Years, Part Debates; Current Echoes and the Intellectual Challenge for Soviet Studies Items : 44 (2-3) Jan.-Sep. 90, 25-30

48. Cartledge Bryan : Second Russian Revolution, International Relations 10 (1) May 90, 1-12

49. Diwan Romesh and Desai Suresh : Perestroika and Gandhian Economics, International Journal of Social Economics 17 (3), 1990, 4-17

50. Bloice Carl : Soviet Union Tomorrow - The Problem at the Base; Political Affairs : 69 (5), May 90, 8-11

51. Zivanov Sava : Polarization of Political Foress in the USSR : Review of International Affairs 41 (968-9), 5-20 Aug. 90, 22-24

52. Bgaun Aurel and Day Richard B : Gorbachevian Contradictions Problems of Communism 39 (3), May-June 90, 36-50

53. Smart Christopher : Gorbachev's Lenin : The Myth in service to Peristroika : Studies in Comparative Communism 23 (1) spring 90, 5-22

54. Pravda Alex : Stumbling towards Soviet Democracy : European Affairs 4 Mar 90, 46-50

55. : Perestroika and the Future of Socialism Part-I, Monthly Review 41 (10), Mar 90, 1-13

56. Sherman (Howard J) : Second Soviet Revolution or the Transition from Statism to Socialism : Monthly Review 41 (10) Mar. 90, 14-22

57. : Perestroika and the Future of Socialism Part-II monthly review 41 (11) Apr. 90, 1-17

58. Shulman Marshall : Can Change be Sustained ? Adelphi papers (247) Winter 89-90, 29-40

59. Ananthu (TS) : Other siade of Pereotroika, Gandhi Marg 12 (1) Apr.-Jun. 90, 83-90

60.	LTH (Larst)	:	Soviet Politics - Break down or Renewal : Current History 98 (549), Oct. 9, 309-12
61.	Remyantsev Oleg	:	Authoriterian or Modernization and the Social Democratic Alternative : Social Research 57 (2), Summer 90, 493-529
62.	Zwaryez (Roman)	:	Critical Relaxation of Gorbachev's Reform Programme from the Perspictive of National Liberation Struggle : Ukranian Review 28 (2), Summer 90, 3-15
63.	Brezezinski Zbigniev	:	Decline or Rise ? Socialism in the 21 century debated: World Marxist Review 33 (4), Apr. 90, 6-18
64.	F W Pseuid	:	Soviet Union-Towards Political Reconciliation, Frontier 23 (46), 29 June, 91, 7-9
65.	Leo Rita Di	:	Soviet Union - 1985-90, after Communist Rule the Deluge: Soviet studies 43 (9) 1991, 429-50
66.	Jayaskar	:	Is Gorbachev becoming Authoritarian ? Mainstream 29 (12) 12 Jan. 91, 6
67.	Bashiriyeh (Hossun)	:	Totaritarian, Pluralism and Political Development in the Soviet Union : A Review of the Phases of the Russian Revolution (Iranain Journal of International Affairs) 2 (2-3) Summer fall 90, 277-88
68.	Bogomolor O	:	Changing Image of Socialism : Social Sciences, Quarterly Review : 21 (3) 1990, 84-94
69.	Gorbachev M	:	On with Perestroika Socialism : Theory and Practice, Sep. 90, 4-10
70.	Brown A	:	Soviet Politics in the 1980, S. Slavonic and East European Review; 68 (4) Oct. 90, 725-30
71.	Blaler Seweryn	:	Passing of the Soviet Order : Survival : 32 (2) Mar.-Apr. 90, 107-20
72.	Gorbachev Vs Yeltsin	:	Two Soviet views : Mainstream : 29 (28) 4 May, 91, 31-33
73.	Wielk Hans George	:	Soviet Union in Transision II Studia Diplomatic 44 (1) 1991, 59-68
74.		:	Draft Trealy of Union of Sovereign states : Link 34 (18) 15 Dec. 91, 31-34
75.	Baev (Pawel)	:	Inside and Out side of the New Political Thinkings, Bulletin of Peace Proposals 22 (3) Sep. 91, 265-70

76. Maudsley Evan : 1990 Central Commttee of CPSU on Perestroika : Soviet Studies 43 (5) 1991, 897-912

77. Bince Valerie : Soviet Union under Gorbachev : Ending Stalinism and Ending the Cold War : International Journal : 46 (2) spring 1971 22041

78. Gonsalves Eric : Lessons from the Soviet Revolution : Mainstream : Annual Number 1991, 26 Oct. 91, 83-84

79. Narayan KR : Soviet Changes : Multi-Dimensional Impact (Main stream : Annual Number, 1991, 26 Oct. 91, 67-70)

80. Mathur Girish : Coup has Lessons for All of Us, Link 34 (3), Sep. 91, 12-13

81. Shah Rajiv : Anti Communist Blitz in the Soviet Union : Link : 341 (3) Sep. 91, 5-7

82. Karaganor (S) : Will the Soviet Union Over come itself : New Times (13) 2-8, Apr. 91, 22-24

83. Borovik Arlyom : Waiting for Democracy Foreign Policy : (84) Fall 1991, 51-60

84. Action Edward : Imperial Russia : Marxism a la Carte : History Today 41 Aug. 91, 43-46

85. Service Robert : Soviet Marxism's Obitnary ? History Today 41 Oct. 91, 45-47

86. : Freedom of Socialist choise : A Round table Soviet Sociology : 30 (4) Jul.-Aug. 91, 26-52

87. Kothari Rajni : Soviet Developments in Wider Perspective : Main stream: Annual number 1991, 26 Oct. 9, 71-44

88. Suny Ronald : Incomplete Revolution : National Movements and the Collopse of Soviet Empire : New Left Review 189, Oct.-Sep. 91, 111-26

89. Narendra Singh : Russian Tragedy : Neither Socialist nor Capitalist, Frontier 34 (17), 7 Dec. 91, 4-10

90. : Soviet Union : Current History 90 (58) Oct. 91, 305-44

91. Limaye, Madhu : Indian response to Soviet developments : Main stream 29 (45) 31 Aug. 91, 11-31

92. Pantin (1) and Plimak (E) : Ideas of Karl Marx at a Turing Point in Human Civilization: Soviet studies in Philosophy 30 (1) summer 1991, 4269

93. Bukousky (Uladimin) : What to do about Soviet Collapse (Commentaties) 92 (3), Sept. 91, 19-24

94. Kothari Raj Kumar : Soviet Policy Making : A More towards Deideologisation; Radical Humanist, 55 (9) Dec. 91, 17-23

95. Ramachandran P. : Ideology-How the CPSU leaders abandoned Marxism, Marxists-9 (3-4) Jul.-Dec. 91, 22-31

96. Snirnov (W) : Democratization in the USSR its Domestic Global Aspects : Social Sciences Quarterly Reviews 22 (2), 1991, 89-100

97. Strelisow Matatia : New Soviet Economy : European Affairs 5 (6) Dec., 91, 48-49

98. Filatolhu Igro V : Privatisation in the USSR : Economic and Social Problem, Communist Economics and Economic Transformation 3 (4) 1991; 481-98

99. : Economic Reform in the Eyes of Public Opinion : Soviet Reviews 67 (4) No-Dec. 91, 24-40

100. Bialer Seweyn : Death of Soviet Communism : Foreign Affairs winter 1991-92, 166-81

101. Shaunmism Tatiana : August Coup As I saw it : World Affairs (3) Dec. 91, 17-20

102. Joravsky David : Russian Psychology : A Critical History - Studies in Soviet Thoughts 42 (2) Sep. 91, 15989

103. Moscow August, 91 : The Coup de Grace : Problems of Communism (40) Nov.-Dec. 91, 1-62

104. Miller Sticpher : Soviet Coup and the Benefits of Break Down : Orbis 36 (1) winter 91, 69-80

105. Gill Graeme : Sources of Political Reform in Soviet Union, Studies in Comparative Communism 24 (3), Sep. 91, 235-58

106. Bukousky (Vladims) : What to do with Soviet Collapse : Commentarym 92 (3), Sep.-91, 19-24

107. Demise of USSR : World focus 12 (9-10) Sep.-Oct. 91, 3-47

108. Maitra Sunil : Some Aspects of the Historical Experience of Socialism in the Soviet Union : Marxism 9 (3-4) July, Dec.91

109. Karat Prakash : Gorvachovian Reforms Dismantling of Communist Party Marxist 9 (3-4) Jul. Dec. 91, 52-71

110. A. D. Choudhari : Marx on Indian Village Polity, Hindustan focus, 14.10.96

111. A. S. Abraham : Democracy in Russia Times of India 16.07.95

112. Praful Bidwai : Russia is Transition, Times of India, 17.06.94

113. V. P. Dutt : Return of Socialism in East Europe, Indian Express 30.12.95

114. Prakash Karat : Socialism in cricis - The Prospect Seminar, Sep. 1990

115. R. L. Nigam : MN Roy and Russian Revolution, Radical Humanist Feb. 1992

116. V. M. Tarkunde : Why Communism failed in the Soviet Union, Radical humanist, June 1992

117. Bhattacharya Sunil : Democracy, Socialism and the Soviet Union, Radical Humanist, July, 91, 17-22

118. Bharat Wariavwalla : The Revolution, Socialism in Crisis Seminar 373, September, 1990

119. Ralph Dahrendorf : Govt. without Opposition, Project Syndicate Nov. 2002

120. Ralph Dahrendorf : After Dictator ship, Project Syndicate April 2003

121. Ralph Dahrendorf : Democracy Disconnected, Project Syndicate May 2003

122. Ralph Dahrendorf : Terror Versus Liberty, Project Syndicate May 2004

123. Murray N. Rothbard : A Future of Peace and Capitalism Modern Political Economy, August, 2003, 2004

124. Stephen Day : A Future of Socialism : A Modern Utopia or an Agenda for change, The Mises Institute Monthly

125. Llewellyn H. Rockwell : The Future of Socialism, The Free Market (The Miss Institute Monthly), August 2000

126. C. T. Kurian : The Collapse of Socialist Econocmics, Front Line, 13-26 March 1999

127. Jacub Karpinski : The ABCs of Democracy, Cuba Democracy Pamphlets, IDEE, 1994

128. Jame Steward : The European Union and the Future of Socialism People's weekly world, 22 May 1995

129. Robert L. Heilbroner : Reflections on the Future of Socialism, Chapter 5 Between Captitalism and Socialism, Random House

130. Tony Saunols : World Line : The Challenge of Globlization Reproduced by -CWI, 1991

131. David Gordon : A New Socialism, The Miss Institute Monthly, August 10, 2004

132. Sitaram Yechury : Future is Socialism, People's Democracy No. 10, 2002

133. Wendy Robertson : Capitalism Versus Socialism : What would Marx say today, Green Left Weekly, 1999

134. James Petras : Capitalism Versus Socialism; The Great Debate Revisited, March 2004

135. Ileana Petras Voica : Theoratical Aspects of Post Communist - Modernization, University Babes, Romania
136. Manas Behera : Globalization and Governance in India, South Asia Politics, July 2004
137. Ashwini K. Ray : Post Cold War Internatioal Relations : Limits of Scholarly Discourse, Man & Development, December 1994
138. Ignacio Ramonet : World without Direction
139. Anne Beasant : A Future of Socialism, Theosophical Publising House, Chennai
140. Roger Kimball : The New Criterion & the End of History Vol. 10 No. 6, Feb, 1992
141. Robin Hahnel : Review by (A future of Socialism) Par Econ
142. Comments at a Seminar in Hydrabad : Socialism is Necessary Jan, 2003, AIFTU
143. Rao, T.N. : Re-reading Das Capital, The Illustrated Weekely of India, September 14, 1975

लेख (Articles)

1. गणेश मंत्री : कार्ल मार्क्स : पिछड़े हुये देशों में कितना प्रासंगिक, धर्मयुग साप्ताहिक, 4.5.1986
2. राय सिंह : सोवियत बिखराव का गंभीर अध्ययन होना चाहिये, जनसत्ता, 13.09.1991
3. ए. के. राय : देंग के युग में भी माओ प्रासंगिक हैं, जनसत्ता, 14.01.1994
4. गिरिजेश पंत : नई विश्व व्यवस्था में लाचार तीसरी दुनिया, जनसत्ता, 9.1.97
5. राय सिंह : भारत को तोड़ने का मार्क्सवादी सूत्र, जनसत्ता, 25.7.91
6. हरिशंकर व्यास : लाल साये में उभरते देशी कठीले, जनसत्ता, 25.11.86
7. अवधेश कुमार : अब चीन पर नजर है, नव भारत टाइम्स, न. दि. 28.11.91
8. माणिक महाचार्य : एक ध्रुवीय विश्व में जीना सीखना होगा, जनसत्ता, 28.4.92
9. मानिनी चैटर्जी : गहराता और अपना दायर फैलाता एशियाई आर्थिक संकट, लोकलहर, 30.8.98
10. अज्ञात : जापान की कम्युनिस्ट पार्टी की महत्वपूर्ण जीत, लोकलहर, 2.8.98

11. अनिल विश्वास : बंगाल में वाम मोर्चा के इक्कीस वर्ष यानी किस्सा जनता की सरकार का अनुभव रचे जाने का, लोकलहर, 28.06.98

12. सुनील मैत्र : समाजवाद की लड़ाई जारी है, लोकलहर, 3.10.93

13. बनवारी : एक कथानायक कार्ल मार्क्स, जनसत्ता, 29.12.83

14. गिरिराज किशोर : न गांधी खलनायक थे, न मार्क्स, जनसत्ता, 4.4.94

15. चेलप्पा अय्यर : भ्रामक विवेचन का शिकार मार्क्सवादी दर्शन, जनसत्ता, 8.2.89

16. जवाहरलाल कौल : कुछ मिथक टूटे और कुछ संभावनाए जगीं, जनसत्ता, 27.8.91

17. सीताराम येचुरी : सोवियत संघ की 1991 के अगस्त की घटनायें, लोकलहर, 6.9.92

18. नन्द किशोर आचार्य : दोनों चेहरे एक ही समस्या के है, नव भारत टाइम्स, लखनऊ 5.10.91

19. राजकिशोर : गोर्वाचेव से क्यों डरना चाहिये, नव भारत टाइम्स, 30.12.91

20. जवाहरलाल कौल : रूस में अधिनायकवाद का खतरा, जनसत्ता, 26.12.90

21. गिरीश मिश्र : लोकतंत्र को नया आकार, नव भारत टाइम्स, 6.1.92, 23.12.91

22. बनवारी : दुनिया में आज भी होड़ तो जातीय ही है, जनसत्ता, 12.2.92

23. राय सिंह : दफन हो गया है सोवियत साम्राज्य, जनसत्ता, 27.12.91

24. नन्द किशोर आचार्य : साम्यवादी व्यवस्था का विकल्प पूँजीवाद नहीं, जनसत्ता, 21.11.90

25. डॉ. ओम नागपाल : साम्यवादी देशों में समाजवादियों की क्रूर नियति, धर्म युग, 8.11.81

26. डॉ. राम विलास शर्मा : मार्क्सवाद, ऋग्वेद और हिन्दी समाज, जनसत्ता, 18.10.92

27. सम्पादकीय : रूस : एक दौर का अन्त, दूसरे का प्रारम्भ, आज, 12.10.93

28. हरिशंकर व्यास : इक्कीसवीं सदी की संभावना यूरोप साम्यवाद, जनसत्ता, 25.6.91

29. राम सुजान अमर : भारत की अर्थव्यवस्था और अमर्त्य सेन, नव भारत टाइम्स, 2.11.98

30. डॉ. एम. एल. वर्मा : अमर्त्य सेन का आर्थिक चिंतन, दैनिक जागरण, 5.11.98

31. अभय कुमार दुबे : तीसरी दुनिया का भी मार्क्सवादी सपना है, जनसत्ता, 1989

32. प्रकाश करात : साम्राज्यवादी की सच्चाई और समाजवाद का भविष्य, लोकलहर, 2.11.97

33. पी. रामचन्द्रन : अक्टूबर क्रान्ति के बुनियादी कारक : तब और अब, लोकलहर, 2.11.97

34. सच्चिदानन्द सिंह : यूटोपिया, प्रतियूटोपिया और शेष प्रश्न, नव भारत टाइम्स, 2.2.91

35. सम्पादकीय : सोवियत संघ का अवसान, नव भारत टाइम्स, 23.12.91

36. बनवारी : लोकतंत्र बनाम साम्यवाद, जनसत्ता, 29.5.1989

37. बनवारी : गोर्वाचेव जानते है कि मार्क्सवाद सिर्फ औजार है, जनसत्ता, 23.4.1988

38. सूर्यकान्त बाली : अब वाम को भारतीय परिभाषा दीजिये, नव भारत टाइम्स, 23.10.91

39. निर्मल वर्मा : समाजवाद का स्वप्न .... और दुःस्वप्न, नव भारत टाइम्स, 4.1.92

40. परिचर्चा : सदी के अंत में एक सपने का टूटना, जनसत्ता, 1.9.91

41. हरकिशन सिंह सुरजीत : कम्युनिस्ट आन्दोलन एक बार फिर उभार पर होगा, लोकलहर, 29.8.1993

42. जवाहरलाल कौल : एक खूबसूरत सपने का टूटना, जनसत्ता, 9.9.91

43. राजकिशोर : समाजवाद का भविष्य, जनसत्ता, 3.11.98

44. सीताराम येचुरी : और यह साम्यवादी शिखर, सहारा समय, 19.7.2003

45. अमर्त्य सेन : पश्चिम और गैर–पश्चिम के रिश्ते का सवाल, लोकलहर, 6.12.1998

46. गणेश मंत्री : भारतीय मार्क्सवाद का हठयोग, नव भारत टाइम्स, 26.10.1991

47. सुभाष धूलिया : यथास्थिति का विश्ववाद, नव भारत टाइम्स, 8.11.91

48. एजाज अहमद : आज पहले से भी ज्यादा प्रासंगिक है, कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, लोकलहर, 12.7.98

49. गणेश मंत्री : कार्ल मार्क्स : पिछड़े हुये देशों में कितना प्रासंगिक, धर्मयुग, 4.5.1986

50. बलवीर पुंज : एक कॉमरेड का कबूलनामा, दैनिक जागरण, 1.4.2003
51. मिखाईल गोर्बाचेव : समाजवाद में अपने नवीकरण की क्षमता है, विदेशिका, अप्रैल, मई, जून, 1989
52. मोहित सेन : पेरेस्रोइका तथा विश्व कम्यूनिस्ट आन्दोलन विदेशिका, अप्रैल, मई, जून, 1989
53. मन्मनाथ गुप्त : गोर्बाचेव क्रान्ति, विदेशिका, अप्रैल, मई, जून, 1989
54. डॉ. श्याम सुन्दर सिंह चौहान : वैश्वीकरण का सामाजिक स्वरूप, प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर 2004
55. डा. के. के. शर्मा : वैश्वीकरण एवं मानवाधिकार प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त 2004

पत्रिकायें (Magazines)

1. जनमत समकालीन, पटना
2. लोकलहर, कलकत्ता
3. सामयिक वार्ता, नई दिल्ली
4. सहारा समय, लखनऊ
5. प्रगति मंजूषा, इलाहाबाद
6. विदेशिका, लखनऊ
7. समकालीन सोच, गाजीपुर
8. धर्मयुग, बम्बई
9. India Today, New Delhi
10. Frontiac, Madras
11. Out Look, New Delhi
12. Seminar, New Delhi
13. World Focus, New Delhi
14. Mainstream, New Delhi
15. The Competition Master, Chandigarh
16. Soviet studies, Madras
17. Link, New Dehli

News Paper

1. Time of India, Delhi
2. Hindustan Times, Delhi

3. Indian Express, Delhi
4. Stateman, Delhi
5. Hindu, Madras
6. Northern India Patrika, Calcutta

समाचार पत्र

1. नवभारत टाइम्स, लखनऊ
2. जनसत्ता, दिल्ली
3. दैनिक जागरण, कानपुर
4. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ
5. दैनिक आज, कानपुर
6. हिन्दुस्तान, दिल्ली
7. अमर उजाला, कानपुर

Internet Web Page

1. **"History - The Fall of Communism in Russia"**

   www.cyberessays.com/history/105.htm

2. **"Communism and East Eerope"**

   www.joisessays.com/history/14.shtml

3. **"Everything About Russia (History Section)"**

   www.russia.net

4. **"CNN Interactive (Russian Archive)**

   www.cnn.com

5. **"Paris Commune (1871)"**

   www.Marxists.org/glossary/orgs/p/a.htm

6. **The Real Reason for the Fall of Communism"**

   www.advocatesinternational.org/site/gv3.htm

7. **"The Collapse of the USSR"**

   www.bartlety.com/59/10/collapseofeo.html

8. **"The Collapse of Communism"**

   www.org.au/dsp/collapse/101k

9. **"The Collapse of Communism"**

www.liberty.tru.org/11n/collapse.communism.html

10. **"Communism"**

www.leftbook.com

www.questia.com

www.communism.com

www.marxists.com

www.communism.com/–53k

11. **"Museum of Communism"**

www.gmu/edu/dept/economics/beplan/museum/musframe/htm

12. **"Principles of Communism"**

marxists.org/archieve/marx/works/1847/11/print-com.htm

13. **Capitalism Versus Socialism**

www.libertionthaught.com/smalltexts/capitation.htm
www.mises.org/fullstory.aspx.control
www.rebelion.org/petras/english/040304capitalism.htm
www.greenleft.org.au/back/1999/350/350p26e.htm
www.mises.org/mmmp/mmmp/3.asp-52k
www.indymedia.in/newswire.phpstory-32k eslaserde/capitalism socialism versus html-17k
www.global research.ea/articles/pet406B.html-19k
www.liberitarian thought.com/small texts/capitalism.html-14k
www.canediandimension.mb.ea/extra/d0416 jpe.htm-18k

14. **Socialism**

www.socialism.com/14k 31 Aug 2004
www.fordham.edu/hasll/mod/mods book 33.html
www.marxists org/archive/marx/works/1880/soe-ulop/sk socialism.org/27k
Home.vienet.net.au/dmem/17k
www.democratic socialiste.net/annuaire.html/10k

15. **Future of Socialism**

www.theosophieal.ca/future socialism.htm-50
www.mises.org/freemarket detail.asp control.25k
www.mises.org/mises review-detail.asp control.31k
www.india policy.org/debate/Notes/heilbrones.html-60k
eses.umich.edu/ershalizi/reviews/futurefor socialism/24k
Socialist alternative.org/literature/ffs/1k
www.hup.harvard.edu/catalog/Roeput.html-7k
www.eszmelet.tripod.com/ango12/dayang2html-61k
pd. cpim.org/2002/nov10/11102.002_Nov7_sty.htm-33k

www.hartford.mp.com/archieves/60/2002.html-9k

16. **Globlization**

www.globlization guide.org/-16k
www.globleresearch.ca/101k
www.ifg.org/-20k
www.world exploitation.com/75k
www.tue.org.wk/globalisatio/-1k
www.ids.ac.uk/ids/global/17k
www.gapresearch.org./8k
www.eldis.org/globalisation/-36k
journoz.com/global/-7k
Pilger.carlton.com/globlisation-41k

✦✦✦